शिवराज-विजयः

(ऐतिहासिक उपन्यासः)

द्वितीयो विरामः

(आपञ्चमाद् अष्टमनिश्वासात्मकः)

॥ श्रीहरिः ॥

धर्मनियन्त्रिताया भारतीयराजनीतेस्तत्प्रसङ्गेन भारतीयसंस्कृतेः शौर्य्यवीर्य्याध्यवसायादिलोकोपयुक्तकल्याणगुणगणानाञ्च शिवराजविजयकाव्ये शोभनं सङ्कलनमतीवोपयोगि चैतस्मिन् विषमेऽनेहसि ।

करपात्रस्वामिनः

प्रणेता—

महाकवि-श्रीमदम्बिकादत्त-व्यासः

॥ श्रीः ॥

महाकवि-श्रीमदम्बिकादत्त-व्यास-विरचितः

शिवराज विजयः

(ऐतिहासिक उपन्यासः)

●

द्वितीयो विरामः

(आपञ्चमाद् अष्टमनिश्वासात्मकः)

●

व्याकरण-साहित्य-मीमांसाद्याचार्येण

(स्व०) पं० श्रीरामजीपाण्डेयशास्त्रिणा

विरचितया वैजयन्त्या

काशिकहिन्दूविश्वविद्यालय–स्थित-कलासङ्कायस्य दर्शन-विभागे प्राध्यापकेन

श्रीकेदारनाथमिश्रेण

प्रणीतेन राष्ट्रभाषानुवादेन च विभूषितः

●

सम्पादकीय

अपने पाठकों के हाथ में शिवराजविजय का यह संस्करण रखते हुए हमें बड़े सन्तोष और हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस संस्करण के प्रारम्भ में शिवराजविजय के लेखक पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का एक अनति-विस्तृत प्रामाणिक जीवनवृत्त प्रस्तुत किया गया है, जो स्वयं उन्हीं के द्वारा उपनिबद्ध विवरणों पर प्रतिष्ठित है; तथा स्वयं अम्बिकादत्त व्यास द्वारा लिखित गद्यकाव्य-मीमांसा नामक पुस्तक से संकलित अंशों को अविकल रूप में उद्धृत कर भूमिका के रूप में गद्यकाव्य-मीमांसा शीर्षक से प्रकाशित किया गया है, जिससे उनके गद्यकाव्य एवं उपन्यास सम्बन्धी विचारों को पाठकों के सम्मुख व्यवस्थित रूप से उपस्थापित किया जा सके। मूल ग्रंथ के कलेवर में मूल संस्कृत के नीचे वैजयन्ती (संस्कृत) टीका और उसके नीचे मूलानुसारी हिन्दी अनुवाद दिया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत संस्करण शिवराजविजय के अब तक के सभी संस्करणों से अधिक उपयोगी और संग्राह्य बन गया है।

शिवराजविजय के इस द्वितीय विराम का अनुवाद मेरी धर्मपत्नी श्रीमती स्नेहलता मिश्र, एम०ए० ने मुझे निरन्तर प्रेरणा और सक्रिय सहयोग देकर पूरा कराया हैं। इसके लिये वे हमारे धन्यवाद की पात्र हैं। इस कार्य में मेरे मित्र श्री रामायण द्विवेदी, साहित्याचार्य और श्री अनन्तप्रसाद मिश्र, एम० ए० ने विविध रूपों में मेरी सहायता की है। इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं। हिन्दी अनुवाद के एक अंश की मुद्रण प्रति (प्रेस-कॉपी) मेरे

प्रिय शिष्य ब्रह्मचारी ओंकारानन्द वेदान्ताचार्य ने तैयार की हैं और प्रूफ संशोधन का कार्य मेरे सुहृद् श्रीरामचन्द्र पाण्डेय ज्योतिषाचार्य और श्रीजितेन्द्रयाचार्य ने किया है। हम इन सभी शुभाकांक्षियों के प्रति आभार प्रकट करते हैं।

इस संग्राह्य संस्करण के साथ ही शिवराजविजय के प्रथम और तृतीय विरामों को संस्कृत टीका और हिन्दी अनुवाद सहित अलग-अलग छाप कर, सम्पूर्ण शिवराजविजय को एक जिल्द में संस्कृत टीका और हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित कर तथा केवल हिन्दी अनुवाद को स्वतन्त्र रूप से हिन्दी शिवराजविजय के नाम से प्रकाशित कर श्री कृष्णकुमार व्यास ने विविध संस्करणों में इस ग्रन्थरत्न को प्रस्तुत कर विद्याव्यसनियों का जो कल्याण किया है, उसके लिये उन्हें धन्यवाद देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं।

भारतीय दर्शन एवं धर्म विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
३१—७—१९६९

विदुषामाश्रवः—
केदारनाथ मिश्रः

प्रस्तुत तृतीय संस्करण पूर्ववत् ही प्रकाशित हुआ है।

डाक्टर भगवान्दास

शान्तिसदन, सिगरा,
(बनारस कैण्ट)

तिथि १३ आश्विन २००३ वि०

श्री अम्बिकादत्तव्यासजी का "शिवराज-विजय" नाम का गद्यकाव्य, बहुत वर्ष हुए, मैंने आद्योपान्त पढ़ा—कुछ वर्षों के पीछे पुनः आद्योपान्त पढ़ा—इधर उसका पाँचवाँ संस्करण निकला—इस नये संस्करण की एक प्रति में इस काव्य को तीसरी वार पढ़ रहा हूँ—प्रत्येक आवृत्ति में आनन्द अधिक आया—

संस्कृत के पण्डित-मण्डली में प्रायः तीन गद्यकाव्यों की चर्चा अधिक होती रही है, सुबन्धु की 'वासवदत्ता', वाण की 'कादम्बरी', दण्डी का 'दशकुमारचरित'—दण्डी का गद्यकाव्य तो निश्चयेन, अन्य दोनों की अपेक्षा से अच्छा कहा जा सकता है,—यद्यपि 'अ-लौकिक' असम्भाव्य-सी घटनाएँ उसमें कई बेर आई हैं, तथापि भाषा, ओजस्विनी होती हुई भी कुछ अर्थ रखती है, और राजनीति, लोकचातुरी, ललितकला आदि विषयक ज्ञान भी उसमें रक्खा है—पर 'वासवदत्ता' और 'कादम्बरी' के शब्दों की अरण्यानी में तो वेचारा अर्थपथिक सर्वथा भूल भटक कर खो जाता है; उसका पता ही नहीं लगता कविता के गुणों में प्रसाद गुण एक मुख्य गुण है; वह इन दो काव्याभासों में मिलता नहीं—

विपरीत इसके, शिवराजविजय में, भाषा उत्तमोत्तम, ओजस्विनी भी, अर्थपूर्ण भी, सुवोध्य भी; यथास्थान, यथावसर, उद्दाम भी, कोमल भी। नवो रस भी इसमें वहुत औचिती और दक्षता से रक्खे हैं; वीररस, जिसका अर्वाचीन, संस्कृत-साहित्य में प्रायः अभाव ही है, वह इस ग्रन्थ में प्रधान है; शृङ्गार भी है, और सर्वथा सात्त्विक, सुश्लील, कोमल, प्रीति रूप; कहीं भी अश्लीलता आने नहीं पाई है; युद्धों के प्रसंग में रौद्र, भयानक, वीभत्स का और वीर के सम्बन्ध में अद्भुत का, रूप वहुत पर्याप्त मात्रा में दिखा दिया है। राजनीति और चार-चातुर्य और रणकौशल का भी निरूपण वहुत सुन्दर है। सर्वोपरि गुण इसका यह है कि विषय ऐतिहासिक, अधिकांश वास्तविक है, कपोल-कल्पित नहीं; और देशभक्ति, जन्म-भूमि-भक्ति, प्रजा की राज-भक्ति, राजा की प्रजा भक्ति, दोनों की धर्म-भक्ति, और भारतीय राष्ट्रीय-भाव से भरा है; जिन भावों का अर्वाचीन संस्कृत ग्रन्थों में सर्वथा अभाव है।

मैं जान नहीं सकता कि क्यों पण्डित मण्डली में अश्लीलता-पूर्ण, 'हठाद् आकृष्ट-पद-पूर्ण' माघ, किरात आदि काव्यों की इतनी महिमा है; और इस रत्नभूत ग्रन्थ से ईर्ष्या नहीं तो विमुखता है। इसका जितना अधिक प्रचार हो उतना अच्छा है—

—भगवान्दास

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास

विहारभूषण, भारतभूषण, भारतरत्न, भारतभास्कर, घटिकाशतक, शतावधान, धर्माचार्य, महामहोपदेशक, सुकवि, साहित्याचार्य ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

पं० अम्बिकादत्त व्यास साहित्याचार्य

"अपने विषय का भला-बुरा लेख कदाचित् इतिहास विद्या की किसी अंश में सहायता करे यह समझ···नागरीप्रचारिणी के सभ्यगण के प्रोत्साहन से प्रोत्साहित हो··ग्रन्थकारों का स्ववृत्त न लिखना विद्वज्जन मात्र की दृष्टि में ऊनता है, इस भाव से भावित हो*" श्री अम्बिकादत्त व्यास ने 'संक्षिप्त निज वृत्तान्त' शीर्षक से अपनी आत्मकथा लिखी थी, जो उनके 'विहारी विहार' ग्रंथ में परिशिष्ट के रूप में छपी थी। उसी आत्मकथा को उपजीव्य बनाकर हम यहाँ उनका एक संक्षिप्त किन्तु प्रामाणिक जीवन-वृत्त प्रस्तुत कर रहे हैं।

राजस्थान के 'रावतजी की धूला' नामक ग्राम से सकुटुम्ब आकर काशी में बस गये आदि गौड, पराशरगोत्रीय त्रिप्रवर यजुर्वेदाध्यायी भींडावंशावतंस पण्डित राजाराम शास्त्री के ज्येष्ठ पुत्र श्री दुर्गादत्तजी अपने समय के कवि-मण्डल में दत्तकवि के नाम से सुप्रसिद्ध थे। उनकी ससुराल जयपुर में सिलावटों के मुहल्ले में थी। वहीं चैत्रशुक्ल अष्टमी वि० सं० १९१५ को उनके द्वितीय पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम अम्बिकादत्त रखा गया। बालक अम्बिकादत्त में कविता करने की प्रतिभा जन्मजात थी, और शिक्षित भाई बहिनों का अनुकूल वातावरण पाकर वह विकसित होने लगी। फलतः दस वर्ष के अल्प वय में ही उन्होंने प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, समस्यापूर्ति और 'सरस्वतींयन्त्र' काव्य का अच्छा अभ्यास कर लिया। वे स्वयं लिखते हैं:

"१० वर्ष के वय में मैं हिन्दी भाषा में कुछ कुछ कविता करने लग गया था, परन्तु मेरी कविता को जो सुनता था वह कहता था कि इनकी बनाई कविता नहीं है, पिताजीं से बनवाई है। जब कुछ लोग मेरी अवहेलना करते थे और मैं उदास होता था, तब मेरे पिताजी यह श्लोक कहते थे:

---

* संक्षिप्त निजवृत्तान्त—पृष्ठ १।

"कमलिनि मलिनीकरोषि चेतः
किमिति बकैरवहेलितानभिज्ञैः।
परिणतमकरन्दमार्मिकास्ते
जगति भवन्तु चिरायुषो मिलिन्दाः॥"*

'प्रस्तार दीपक' और 'शिवविवाह' नामक हिन्दी ग्रंथों की रचना उन्होंने क्रमशः दस और वारह वर्ष के वय में आरम्भ की थी, किन्तु वे इन्हें पूरा नहीं कर सके।

वि०सं० १९२६ में वे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि की सभाओं में कविता-पाठ, समस्यापूर्ति आदि करने लगे थे। 'कवि वचन सुधा' के प्रकाशन के साथ ही वि० सं० १९२७ में इनकी कविताओं का प्रकाशन भी प्रारम्भ हो गया।

इसी समय उन्होंने काशिराज द्वारा स्थापित धर्मसभा की परीक्षा में साहित्य में पुरस्कार प्राप्त किया। पुरस्कार ग्रहण करते समय वालक अम्विकादत्त ने काशिराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह और उनके पण्डित श्री ताराचरण भट्टाचार्य तर्करत्न के प्रश्नों का श्लोकवद्ध उत्तर देकर उन्हें मुग्ध कर लिया। गणेश शतक (संस्कृतकाव्य) उनकी इसी समय की रचना है।

वारहवर्षीय अम्विकादत्त को 'सरस्वतीयन्त्र' कविता करते देखकर और उनकी कुछ अन्य कविताएँ सुनकर एक वृद्ध तैलङ्ग अष्टावधान ने कहा था: 'सुकविरेष:' और तभी भारतेन्दु ने उन्हे एक प्रशंसा-पत्र देते हुए 'काशी कवितावर्द्धिनी सभा' की ओर से 'सुकवि' उपाधि प्रदान की थी।

वालक अम्विकादत्त कविता करने के साथ ही साथ पहले घर में और फिर मन्दिरों आदि में एकादशी, हरतालिका, भागवत आदि की कथा भी कहा करते थे। इससे उनकी झिझक दूर हो गई और उनमें वाग्मिता तथा सभाचातुरी भी आ गई।

तेरह वर्ष के अल्प वय में ही अम्विकादत्त का विवाह हो गया। वि०सं० १९३२ में सत्रहवर्षीय अम्विकादत्त ने काशी के गवर्नमेंट संस्कृत

---

* संक्षिप्त निजवृत्तान्त—पृष्ठ २।

कालेज में ऐंग्लो-संस्कृत विभाग में नाम लिखाया, और सं० १९३४ में उत्तम वर्ग तक की पढ़ाई समाप्त की। सं० १९३४ में ऐंग्लो संस्कृत विभाग के तोड़ दिये जाने पर उनकी अंग्रेजी शिक्षा स्वाध्याय तक ही सीमित रह गई। इसी बीच उन्होंने बँगला भाषा भी सीखी।

वि०सं० १९३७ में गवर्नमेंट संस्कृत कालेज में आचार्य की परीक्षा प्रारम्भ हुई। साहित्य में तेरह व्यक्तियों ने परीक्षा दी, जिसमें केवल अम्बिकादत्त ही उत्तीर्ण हुए। 'व्यास' की उपाधि उन्हें अच्छी कथा कहने के कारण स्वामी विशुद्धानन्दजी से पहले ही मिल चुकी थी। अब वे सुकवि साहित्याचार्य पण्डित अम्बिकादत्त व्यास कहे जाने लगे।

वि०सं० १९३४ में उन्होंने एक साथ साङ्ख्यसागरसुधा, पातञ्जल-प्रतिबिम्ब, कुण्डलीदर्पण, इतिहाससंक्षेप और सामवतम् इन पाँच संस्कृत ग्रंथों की रचना प्रारम्भ की थी, इनमें से इतिहास संक्षेप कभी पूरा न हो सका और कुण्डलीदर्पण कभी छप न सका। योग और सांख्य के उपर्युक्त ग्रंथ क्रमशः सं० १९४८ और सं० १९५२ में छपे थे। सामवतम् (संस्कृत नाटक) की रचना मिथिलानरेश के राजपण्डित के अनुरोध पर, युवराज के राज्याभिषेक के अवसर पर अभिनीत होने के लिये की गई थी। यह नाटक संवत् १९३७ में पूरा हो गया था। इसी वर्ष उन्होंने गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्, अबोध-निवारण, (महर्षि दयानन्द की एक संस्कृत पुस्तक की अशुद्धियों का विवेचन) आदि कृतियाँ भी लिखीं और छापीं। बाईस वर्ष के अम्बिकादत्त व्यास की 'सामवतम्' नामक नाट्यकृति के बारे में डा० भगवान्दास ने लिखा है :

"श्री अम्बिकादत्त व्यास जी का रचा सामवतम् नाम नाटक दो बार पढ़ा। 'पुराणम् इत्येव हि साधु सर्वम्' ऐसा मानने वाले सज्जन प्रायः मेरे मत पर हँसेंगे, तो भी मेरा मत यही है कि कालिदास रचित 'शकुन्तला' से किसी बात में कम नहीं है।"

शीघ्र कवित्व, सभाओं में भाषण देने और शास्त्रार्थ करने का जो कौशल अम्बिकादत्त ने अर्जित किया था, उसके प्रकाशन का अवसर उन्हें तब मिला, जब वे पोरबन्दर के वल्लभकुलावतंस गोस्वामी जीवनलाल के साथ धर्मोपदेश के लिये

निकले, और सनातन धर्म के प्रचार के लिये व्याख्यान देने लगे। विहार में आर्य-समाज की जो तेज लहर आ रही थी, उसे रोकने में उन्होंने वड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने काशी से 'वैष्णवपत्रिका' नामक एक अल्पजीवी मासिक पत्र भी निकाला। सं० १९३८ में काशी ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा के पण्डितों की ओर से उन्हें रजत पदक सहित **घटिकाशतक** की उपाधि प्रदान की गयी।

अम्बिकादत्त की माँ का देहावसान वि० सं० १९३१ में ही हो गया था, सं० १९३७ में उनके पिता जी ने भी शरीर छोड़ दिया। अल्पवयस्क अम्बिकादत्त के आश्रयहीन परिवार पर अभाव के वादल घिर आये, और जीविका के अभाव तथा ऋण के बोझ ने उन्हें चिन्तित कर दिया। सं० १९४० में जव गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस के प्रिंसिपल ने उन्हें मधुवनी संस्कृत स्कूल का अध्यक्ष नियुक्त किया तो यह चिन्ता कुछ कम हुई। पर वहाँ भी वे जम न सके। वहाँ अग्निकाण्ड में उनका घर भस्मसात् हो गया, जिसमें इनकी कई पुस्तकें और अनेक प्राचीन ग्रन्थ राख हो गये। इसी बीच इनका सहोदर अनुज, जिसे ये अपने साथ रखते और स्वयं पढ़ाते थे, अपनी नवोढा पत्नी की माँग सूनी कर स्वर्ग सिधार गया। खिन्नमना अम्बिकादत्त ने उदास होकर मधुवनी से त्यागपत्र दे दिया, किन्तु शीघ्र ही (सं० १९४३ में) उन्हें मुजफ्फरपुर जिला स्कूल में 'हेड पण्डित' नियुक्त किया गया, जहाँ से सं० १९४४ में उन्हें भागलपुर जिला स्कूल भेज दिया गया। भागलपुर से वे छपरा गये, जहाँ अपने अन्तिम समय तक रहे। इस प्रकार उनका कार्यक्षेत्र मुख्यतः विहार प्रान्त ही रहा।

सं० १९४५ में सामवतम् नाटक को मिथिलेश्वर को समर्पित करने के साथ ही उन्होंने शिवराज विजय की रचना प्रारम्भ कर दी, और सं० १९५० में उसे पूरा कर दिया।

इस समय तक हिन्दी, संस्कृत और बँगला के ओजस्वी वक्ता के रूप में उनकी धाक जंम चुकी थी, और उनके वैदुष्य की कीर्ति दूर दूर तक फैल चुकी थी। विहारी के दोहों पर **'बिहारी-बिहार'** नाम से लिखा गया उनका कुण्डलियामय ग्रन्थ जब सं० १९५२ में छपा, तो वे हिन्दी जगत् के मूर्धन्य कवियों की चर्चा के विषय वन गये। इस ग्रन्थ की शोधपूर्ण भूमिका के सम्वन्ध में जार्ज ग्रियर्सन ने लिखा था—

"I have read the introduction with special interest and was much gratified to see so much fresh light thrown on difficult historical questions. Indeed I have no hesitation in saying that it is a model of historical research conducted with industry and sobriety, both of which are unfortunately too often abandoned by writers in this country in favour of credulity and hasty conclusions."*

पं० अम्विकादत्त व्यास को सनातन धर्म महामण्डल, दिल्ली से विहारभूषण की उपाधि सहित स्वर्णपदक; काशी की महासभा में काँकरोली के गोस्वामी श्री बालकृष्णलाल से (सं० १९५१ में) भारत-रत्न उपाधिसहित स्वर्णपदक, अयोध्यानरेश से शतावधान की उपाधि-सहित सम्मानपत्र और सुवर्णपदक तथा वम्बई की महासभा में गोस्वामी घनश्यामलाल से भारतभूषण की उपाधि सहित सुवर्णपदक प्राप्त हुआ था।

इस प्रकार बयालीस वर्ष की अल्प आयु में ही प्रायः अस्सी पुस्तकों का प्रणयन कर, महाकवि का सम्मान प्राप्त कर, पण्डित अम्विकादत्त व्यास सोमवार मार्गशीर्ष त्रयोदशी वि० सं० १९५७ को अपने पीछे एक नववर्षीय पुत्र, एक कन्या और विधवा पत्नी को निस्सहाय छोड़कर पञ्चतत्व को प्राप्त हो गये।

व्यासजी की प्रतिभा विलक्षण थी, और उसका लोहा बाँकीपुर में स्वामी सहजानन्द सरस्वती तथा काशी में स्वामी दयानन्द सरस्वती को भी मानना पड़ा था। प्रसिद्ध थियोसोफिस्ट कर्नल अल्काट और जार्ज गियर्सन ने उनकी वक्तृत्वशक्ति की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी। शीघ्र कविता की उनमें अद्भुत शक्ति थी, और २४ मिनट में सौ श्लोक बना लेने के कारण ही उन्हें घटिकाशतक की उपाधि मिली थी। द्रव्यस्तोत्रम् उनकी एक रात्रि की रचना है।

---

* विहारी-विहार, परिशिष्ट पृष्ठ ९

हिन्दी और संस्कृत साहित्य के तो वे आचार्य थे ही, सांख्य-योग, वेदान्त और न्याय आदि दर्शनों पर भी उनका अच्छा अधिकार था। कवि और विद्वान् होने के साथ ही वे शतरञ्ज के अच्छे खिलाड़ी, चित्रकार, संगीतज्ञ और एक अच्छे घुड़सवार भी थे। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा और बहुमुखी प्रवृत्तियों की छाप उनकी सर्वोत्कृष्ट कृति शिवराजविजय में पद-पद पर अङ्कित मिलती है।

पं० अम्बिकादत्त व्यास साहित्याचार्य

विरचित ग्रन्थ *

	ग्रन्थ नाम	आरम्भ समय	समाप्ति समय	मुद्रण समय	मुद्रणयन्त्र नाम	विशेष
१	प्रस्तारदीपक	१९२५				अपूर्ण हिन्दीभाषा
२	गणेशशतक	१९२६	१९२७			संस्कृत
३	शिवविवाह	१९२७				अपूर्ण
४	सांख्यसागरसुधा	१९३४	१९३४	१९५२	व्यासयंत्रालय भागलपुर	बाबू महावीरप्र० कृ·भा·टी. सहित
५	पातञ्जलप्रतिविम्ब	१९३४	१९३७	१९४८	व्यासयंत्रालय	संस्कृत
६	कुण्डलीदर्पण	१९३४	१९३५			संस्कृत, अमुद्रित
७	सामवत नाटक	१९३४	१९३७	१९४५	खड्गविलास बाँकीपुर	संस्कृत
८	इतिहास संक्षेप					
९	रेखागणित	१९३४				संस्कृत, अपूर्ण
	(श्लोकबद्ध)१अ०	१९३५	१९३५			संस्कृत, अमुद्रित
१०	ललिता नाटिका	१९३५	१९३५	१९४०	हरिप्रकाश काशी	व्रजभाषा
११	रत्नपुराण	१९३५				संस्कृत, अपूर्ण
१२	आनन्द मञ्जरी	१९३६	१९३६			ब्रजभाषा (गीत)
१३	चिकित्सा चमत्कार	१९३६				अपूर्ण (मधुवनी में दग्ध होगया)
१४	अबोधनिवारण	१९३७	१९३७	१९३७	हरिप्रकाश काशी	हिन्दीभाषा (तीन बार छप चुका)
१५	गुप्ताशुद्धि प्रदर्शन	१९३७	१९३७	१९३७	,,	संस्कृत (दो बेर छपा)
१६	ताशकौतुकपचीसी	१९३७	१९३७	१९३७	काशी	हिन्दी भाषा

* 'विहारी-विहार' से उद्धृत ।

ग्रन्थ नाम	आरम्भ समय	समाप्ति समय	मुद्रण समय	मुद्रण यन्त्र नाम	विशेष
१७ समस्यापूर्ति सर्वस्व	१९३७			काशी	संस्कृत, अपूर्ण
१८ रसीली कजरी	१९३९	१९३९	१९३९	,,	हिन्दी भाषा
१९ द्रव्यस्तोत्र	१९३९	१९३९	१९३९	खड्गविलास (बाँकीपुर)	संस्कृत
२० चतुरंगचातुरी	१९३९	१९३९	१९४१	चन्द्रप्रभा काशी	हिन्दी भाषा
२१ गोसंकट नाटक	१९३९	१९३९	१९४१	खड्गविलास	,,
२२ महाताश कौतुक पचासा	१९३९	१९३९	१९३९	चंद्रप्रभा, काशी	,,
२३ तर्कसंग्रह, भा.टी.	१९४०	१९४०	१९४१	हरिप्रकाश	,,
२४ सांख्य-तरंगिणी	१९४०	१९४८	१९४८	खड्गवि. (बाँ.पु.)	,,
२५ क्षेत्रकौशल	१९४०	१९४०	१९४१	च.प्र., काशी	,,
२६ पंडित प्रपञ्च	१९४०				,,
२७ आश्चर्य्यवृत्तान्त	१९४१	१९४५	१९५०	व्यासयंत्रालय भागलपुर	,,
२८ छन्द:प्रबन्ध	१९४१				अपूर्ण
२९ रेखागणितभाषा	१९४२	१९४२	१९४३	खड्गविलास	हिन्दी भाषा
३० धर्म्म की धूम	१९४२	१९४२	१९४२	,,	ब्रजभाषा
३१ दयानन्द-मत मूलोच्छेद	१९४२	१९४२	१९४२	,,	हिन्दी भाषा
३२ दु:खद्रुमकुठार	१९४२	१९४३	१९४३	हरि प्रकाश	संस्कृत
३३ पावस पचासा	१९४२	१९४२	१९४२	खड्गविलास	ब्रजभाषा
३४ कलियुग औ घी	१९४३	१९४३	१९४३	नारायण प्रेस मुजफ्फरपुर	हिन्दी भाषा
३५ दोषग्राही ओ गुणग्राही	१९४३				अपूर्ण

	ग्रन्थ नाम	आरम्भ समय	समाप्ति समय	मुद्रण समय	मुद्रण यन्त्र नाम	विशेष
३६	उपदेशलता	१९४३	१९४३	१९४३	खड्गविलास	हिन्दी
३७	सुकवि सतसई	१९४३	१९४३	१९४४	नारायणप्रेस	ब्रजभाषा
३८	मानसप्रशंसा	१९४३	१९४४	१९४४	खड्गविलास	ब्रजभाषा(रामायणकी भूमिका में छपी)
३९	आर्य्यभाषा-सूत्रधार	१९४३				सूत्रवृत्ति संस्कृत अपूर्ण
४०	भाषाभाष्य	१९४३				आर्यभाषा सूत्रधार पर, अपूर्ण
४१	पुष्पवर्षा	१९४४	१९४४	१९४४	नारायण	ब्रजभाषा
४२	भारत सौभाग्य	१९४४	१९४४	१९४४	ख. वि.	हि. भा. नाटक
४३	बिहारी बिहार	१९४४	१९५२	१९५४	भारतजीवन	ब्रजभाषा
४४	रत्नाष्टक	१९४४	१९४४	१९४४	च० प्र०	संस्कृत
४५	मन की उमंग	१९४४	१९४४	१९४४	नारायण	हिं.तथा ब्र॰भा.
४६	कथा कुसुम	१९४४	१९४४	१९४४	ख॰ वि.	संस्कृत
४७	पुष्पोपहार	१९४४	१९४४	१९४४	,,	सं.तथा ब्र.भा.
४८	मूर्तिपूजा	१९४४	१९४७	१९४८	व्यासयंत्रालय	हिन्दी
४९	संस्कृताभ्यास-पुस्तकम्	१९४५	१९४५	१९४५	चं.प्र॰ काशी	सं. अंग्रेजी.
५०	कथाकुसुम-कलिका	१९४५	१९४५	१९४५	व्यासयंत्रालय	हिन्दीभाषा
५१	प्राकृतप्रवेशिका	१९४५	१९४५			अमुद्रित सं०
५२	संस्कृतसंजीवन	१९४५	१९४५	१९४५	चं० प्र०	हिं०भाषा
५३	प्राकृतगूढ शब्दकोश	१९४५	१९४५	१९४५	ख० वि०	सामवत के अंत में
५४	अनुष्टुप्-लक्षणोद्धार	१९४५	१९४५			अमुद्रित० सं०
५५	शिवराजविजय	१९४५	१९५०			अमुद्रित० सं०
५६	बालव्याकरण	१९४६	१९४६	१९४६	चं० प्र०	सं० अंग्रेजी

	ग्रन्थ नाम	आरम्भ समय	समाप्ति समय	मुद्रण समय	मुद्रण यन्त्र नाम	विशेष
५७	हो हो होरी	१९४६	१९४६	१९४६	व्यास यन्त्रा·	व्र· भाषा
५८	झूलन झमंक	१९४८	१९४८	१९४८	व्यास यन्त्रा.	व्र· भाषा
५९	स्वर्गसभा	१९४८	१९४८	१९४८	व्यास यन्त्रा.	व्र० भा०
६०	विभक्तिविभाग	१९४९	१९४९	१९४९	,, ,,	हिन्दी
६१	पढ़े पढ़े पत्थर	१९४९				
६२	सहस्रनाम-रामायण	१९५०	१९५०	१९५०	,, ,,	अपूर्ण संस्कृत
६३	गद्यकाव्य मी०	१९५०	१९५०	१९५०	,, ,,	संस्कृत
६४	मरहट्ठा नाटक	१९५०				अपूर्ण·हि·भा·
६५	साहित्यनवनीत	१९५०	१९५०	१९५०	श्रौतयन्त्रालय	हिन्दी
६६	वर्ण व्यवस्था	१९५०	१९५२			हिन्दी, अमुद्रित
६७	विहारी चरित	१९५०	१९५४	१९५४	भारतजीवन	विहारीविहार के आरंभ में
६८	आश्रमधर्म-निरूपण	१९५०	१९५२			अमुद्रित
६९	अवतार-कारिका	१९५४	१९५४	१९५४	व्यास यन्त्रा·	अवतारमीमांसा के अंत में, सं०
७०	अवतार मी०	१९५१	१९५१	१९५४	व्या० यं०	हिन्दी
७१	विहारीव्याख्या-कारचरितावली	१९५१	१९५४	१९५४	भारतजीवन	विहारी विहार की भूमिका में
७२	पश्चिम यात्रा	१९५१				अपूर्ण
७३	वामिचरित	१३५१	१९५२			अमु· व्र०भा०
७४	शीघ्रलेख प्रणाली	१९५२	१९५२			,, हिं० भाषा
७५	गद्यकाव्य-मीमांसा भा.	१९५३	१९५३	१९५४	राजराजेश्वरी	हिन्दीभाषा
७६	घनश्याम वि.	१९५३				अपूर्ण व्र. भा·
७७	रांची यात्रा	१९५४				अपूर्ण, हिं०भा०
७८	निज वृत्तान्त	१९५४	१९५४	१९५४		हिन्दी भाषा

गद्यकाव्यमीमांसा*

गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति अर्थात् कवि की कसौटी गद्य ही है। क्योंकि कविता में तो एक अंश के सुन्दर होने से भी सारा कवित्त अच्छा लगने लगता है, पर गद्य में यह बात नहीं है। गद्य तो सर्वांगसुन्दर हो तभी अच्छा होता है, उसमें एक अंश भी गड़बड़ हो तो गद्य अपने लेखक की बुद्धि का परिचय दे देता है। फिर पद्य में तो छन्द के कारण स्वच्छन्द शब्दों का विन्यास नहीं हो सकता, क्योंकि उतने ही लघु गुरु के नियम से कसे हुए शब्द चाहिये। पर यह बात गद्य में नहीं, गद्य में यदि यथोचित शब्द का प्रयोग न किया जाय तो यह कहने को जगह नहीं रहती कि क्या करें छन्द के परवश हैं। और पद्य का छन्द हो तो अपनी कल्पना का आकार भी कूट पीट के छोटा ही करना पड़ता है और आँख के आने विशेष उक्ति रहते भी थोड़े ही में विषय समाप्त करना पड़ता है। यह अण्डस गद्य में नहीं है; गद्य में तो जितनी बात हृदय में आवे, उसे बिना तोड़े मरोड़े यथास्थित प्रकाशित कर सकते हैं। इसीलिये गद्य में यदि किसी से सुन्दरता पूर्वक किसी विषय का प्रतिपादन न बने, तो वह यह भी नहीं कह सकता कि क्या करें छन्द ही पूरा हो गया!! और प्रायः पद्य में पदान्त के अनुप्रास (क़ाफ़िया रदीफ़) का बड़ा बखेड़ा रहता है, जिसके कारण कभी अप्रकृत शब्द का भी प्रयोग करके अपने स्वभाव–सुन्दर अभिप्राय में धक्का लगाना पड़ता है। और कभी २ भाषा में कुछ विकृति करके कितने ही नये शब्द बनाने पड़ते हैं; जिनसे तत्क्षण भी प्रसाद गुण नष्ट हो जाता है और भविष्यकाल के लिये अपभ्रंश शब्दों की

---

* गद्यकाव्यमीमांसा शीर्षक यह भूमिका पण्डित अम्बिकादत्त व्यास रचित गद्यकाव्यमीमांसा नामक पुस्तक के अंशों का क्रमबद्ध, व्यवस्थित और अविकल उद्धरण है। इस विषय की विशेष जानकारी के लिये उनकी कृति **गद्यकाव्यमीमांसा** द्रष्टव्य है।

नेंव पड़ती है। गद्य में यह वखेड़ा भी नहीं है। गद्यकर्त्ता यह भी नहीं कह सकता कि पदान्त के कारण हमारी कविता में माधुर्य घट गया। यहां तो कुछ भी मधुरता की घटी हो तो अपनी ही अज्ञता माननी पड़ेगी। जैसे चौपड़ हारने वाले अपनी भूल भी पासे के माथे मढ़ देते हैं, पर शतरंजवाले को तो अपनी भूल मानने छोड़ गति नहीं। वैसे ही पद्यकर्ता अपने अपाटव पर भी वहुत बात वना सकते हैं, परन्तु गद्यकर्त्ता को शरण नहीं। गद्य में दर्पण की भांति कवि की पूरी पूरी शक्ति प्रतिफलित होती है। इन्हीं कारणों से "गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" यह पुरानी कहावत चली आती है।

इन दिनों समस्त वङ्गाल तथा पश्चिमोत्तर देश में और किञ्चित् पञ्जाव, राजपुताना, सिन्धु, मालवा, मध्यप्रदेश, उत्कल देश तथा गुजरात में प्रायः गद्यकाव्य (Novel) को उपन्यास कहते हैं। परन्तु यदि पहले यही ढूँढ़ें कि यह उपन्यास संज्ञा प्राचीन ग्रन्थ में कहीं है कि नहीं तो वड़ा वखेड़ा निकल पड़ता है और जिस अर्थ में आजकल यह शब्द वोला जाता है उस अर्थ में इसका प्रयोग प्राचीन ग्रन्थों में नहीं ही मिलता।

अमरसिंह ने तो जगन्मान्य अमरकोष में उपन्यासस्तु वाङ्मुखम् इतना ही लिखा है। अर्थात् किसी वात का उपक्रम करना ही उपन्यास कहलाता है। इससे उपन्यास काव्य नहीं सिद्ध होता।

* महापात्र श्रीविश्वनाथ कविराज ने अपने साहित्यदर्पण में भाणिका-निरूपण के समय कहा है कि भाणिका में सात अङ्ग चाहिये उनी अङ्गों में एक अङ्ग का नाम उपन्यास भी कहा है। जैसे साहित्यदर्पण ६ परिच्छेद—

"भाणिका श्लक्ष्णनेपथ्या मुखनिर्वहणान्विता।
कौशिकीभारतीवृत्तियुक्तैकाङ्गविनिर्मिता॥
उदात्तनायिकामन्दपुरुषाऽत्राङ्गसप्तकम्।
उपन्यासोऽथ विन्यासो विबोधः साध्वसं तथा॥

---

* सुना है कि इनको शाही दरवार से आलीजाह खिताव मिला था उसी का यह महापात्र पद अनुवाद है (वे सान्धिविग्रहिक भी कहलाते थे)

समर्पणं निवृत्तिश्च संहारा इति सप्तमः।
उपन्यासः प्रसङ्गेन भवेत् कार्यस्य कीर्तनम् ॥
निर्वेदवाक्यव्युत्पत्तिर्विन्यास इति संस्मृतः।
भ्रान्तिनाशो विबोधः स्यान्मिथ्याख्यातं तु साध्वसम् ॥
सोपालम्भवचःकोपपीडयेह समर्पमम्।
निदर्शनस्योपन्यासो निवृत्तिरिति कथ्यते ॥
संहार इति च प्राहुर्यत् स्यात् कार्यसमापनम् ॥"

यहाँ इन्होंने इतना ही कहा कि किसी प्रसङ्ग से किसी कार्य का कीर्तन प्रथम अङ्क में होना चाहिये, और इसकी उपन्यास संज्ञा है। वस्तुतः तो यहाँ ग्रन्थकार दृश्यकाव्य का निरूपण कर रहे हैं, और उसके एक अंग को उपन्यास कहते हैं। यहाँ श्रव्य और तिसमें भी गद्य-श्रव्य की तो कोई चर्चा ही नहीं है। इतने ही पर कोई कह उठै कि उपन्यास (Novel) का निरूपण मिल गया, तो यह केवल वाल-लीला समझी जायगी।

और भी यदि कहीं उपन्यास पद मिलता है, तो गद्यकाव्य के प्रकरण में नहीं मिलता। परन्तु इन दिनों लाखों पुरुषों के आगे किसी कारण से उपन्यास पद गद्यकाव्य में रूढ़ हो गया है इसलिये उनके संकेत ग्रह को तोड़ उनके सतत अभ्यस्त उपन्यास प्रयोग को हटा कोई दूसरा शब्द कहवाना यह भी व्यर्थ ही का टण्टा विदित होता है। इस कारण भले ही प्राचीन समय में उपन्यास पद गद्यकाव्यवाचक न मिले तो भी अब यह शब्द ऐसा ही हो गया है। इसीलिये शब्द छोड़ के उपन्यास पद का अर्थ गद्यकाव्य मान के उसके लक्षण और भेदों ही का विचार किया जाता है।

जहाँ तक हो सकै अपनी ही ओर से थोड़ा बहुत यत्न करना स्वधर्म समझ कुछ अपनी ही कल्पनानुसार गद्यकाव्यों के लक्षण तथा भेद दिखलाये जाते हैं। आशा है कि अपक्षपात समालोचक महोदय इस विषय की च्युतियों का संशोधन करेंगे तो कालान्तर में यह विषय पूरा हो जायगा।

जितने भेद हमें दिखाने हैं उन सबके उदाहरण तो अभी देखने में नहीं आते, परन्तु उत्साही कविगण यत्न करेंगे तो भविष्यत् काल में सबके

उदाहरण मिल सकेंगे। हम इस विषय को प्रगट करना भी उचित समझते हैं कि हमारे मित्र प्रसिद्ध उपन्यास लेखक बाबू देवकीनन्दनजी ने स्वीकार किया है कि हम इसकी उदाहरण श्रेणी बनाने में हाथ डालेंगे; यदि भगवदनुग्रह से उनके हाथ से अथवा उनके और अपर सुलेखकों के हाथ से यह उपन्यासश्रेणी परिष्कृत हुई, तो कदाचित् वह दिन भी आवै कि आरम्भ में मेरा यह व्याख्यान और आगे वह उपन्यासावलि मिला के एक ग्रन्थ छपै और वह उदाहरण गद्यकाव्यमीमांसा के नाम से प्रसिद्ध हो। और यह भी आशा है कि काशीस्थ नागरीप्रचारिणी सभा इस कार्य को भी अपना कर्तव्य समझेगी।

गद्यकाव्यमीमांसासिद्धान्त

छात्रों के स्मरण रखने के सुभीते के लिये इस विषय की कारिका भी श्लोकबद्ध कर दी है। भाषा भावार्थ सहित वे ये हैं:

कारिका

लोकोत्तरानन्ददाता प्रबन्धः काव्यनामभाक्।
दृश्यं श्रव्यमिति द्वेधा तत् काव्यं परिकीर्तितम्॥ १॥
गद्यं पद्यं तथा गद्यपद्यं श्रव्यमिति त्रिधा।
सन्दर्भग्रन्थभेदेन प्रत्येकं तद् द्विधा भवेत्॥ २॥
अल्पः सन्दर्भ इत्युक्तः पत्रं वाऽपि स्तवो यथा।
ग्रन्थस्तु बृहदाकारो लोके पुस्तकनामभाक्॥ ३॥
गद्यैर्विद्योतितं यत् स्याद् गद्यकाव्यं तदीरितम्।
ग्रन्थरूपं तदेवाऽत्र श्रव्यं किञ्चिन्निरूप्यते॥ ४॥
उपन्यासपदेनाऽपि तदेव परिकथ्यते।
यथा कादम्बरी यद्वा शिवराजजयो मम॥ ५॥

भावार्थ

श्रवण अथवा [१]दर्शन से [२]लोकोत्तर आनन्द दे देनेवाले प्रबन्ध को काव्य कहते हैं। वह दो प्रकार का है दृश्य और श्रव्य (इन दिनों कितने ही अभिनय उपन्यासों पर किये जाते हैं, तथा तुलसीकृत रामायण पर रामलीला, सूरदासजी के भजनों पर कृष्णलीला की जाती है। इसलिये वे ग्रन्थ दृश्यश्रव्योभय कहे जा सकते हैं पर वस्तुतः वे श्रव्य ही हैं क्योंकि दृश्यांश तो अभिनेता लोग अपनी ओर से बाँधते हैं और श्रव्यांश उनका लेते हैं। अतः वे ग्रन्थ उस अभिनय में सहायक मात्र समझे जाते हैं। इसलिये 'दृश्यत्वेनोपनिबद्धत्वं दृश्यत्वम्' दृश्य के तात्पर्य्य से जो बाँधा जाय उसी को दृश्य समझना) ॥ १ ॥ तहाँ श्रव्य के तीन भेद हैं १. गद्य, २. पद्य और ३. गद्य-पद्य। (हमारी दृष्टि में ये ही तीन भेद दृश्य के भी हो सकते हैं, गद्यरूपक : जैसे उर्दू में सितमगर, पद्यरूपक : जैसे अंगरेजी में शेक्सपीयर के नाटक और गद्यपद्य शकुन्तलादि हैं पर विस्तार भय से वह प्रकरण यहाँ नहीं छेड़ते हैं)। वे प्रत्येक दो-दो प्रकार के हैं : १. सन्दर्भ और २. ग्रन्थ ॥२॥ जो छोटा हो उसे 'सन्दर्भ' कहते हैं। जैसे काव्य लक्षणाक्रान्त पत्र, स्तव, अभिनन्दन पत्र, सूचना, वर्णना, समस्यापूर्त्ति आदि। वड़ा हो तो ग्रन्थ, जिसे पुस्तक कहते हैं ॥ ३ ॥ जो गद्यों से ही शोभित हो उसे गद्य काव्य कहते हैं। यहाँ श्रव्य ग्रन्थ-रूप गद्य-काव्य का विचार किया जाता है ॥ ४ ॥ इसी गद्यकाव्य को उपन्यास कहते हैं। जैसे कादम्बरी अथवा मेरा रचित शिवराजविजय इत्यादि ॥ ५ ॥

---

१. दृश्य में भी श्रवणानन्द तो रहता ही है, परन्तु दृश्यता प्रधान होने ही से वह दृश्यकाव्य कहलाता है ॥

२. काव्यश्रवण छोड़ और रीति से न होना ही प्रधान लोकोत्तरत्व है। अतएव "आपको पुत्र हुआ" यह सुनके लोकोत्तर आनन्द नहीं समझा जाता; क्योंकि वह तो वाक्य श्रवण पर निर्भर नहीं हैं। किसी रीत से भी पुत्र हुआ इस ज्ञान होने से जो आनन्द होता है सो हुआ और "हों कसिकै रिस कों करों ये निरखें हँसि देत" यह अलौकिक है। (विस्तर रसगङ्गाधर में)।

इस गद्यकाव्य में साधारणतः ये बात होनी चाहियें :

कारिका

"नैवाऽत्र पद्यरचना दैवाद् वा क्वाऽपि लभ्यते ।
लोकोक्तिच्छद्मनाऽन्योक्तिव्याजेनाऽपि निबद्ध्यते ।। ६ ।।
यत्र पात्रेण पठ्येत कथनीयमपेक्षितम् ।
तत्रैव पद्यवत्ता स्यात् स्वभावोक्तिपराऽमला ।। ७ ।।
छन्दांसि स्युर्लघीयांसि गद्यसादृश्यभाञ्जि च ।
छन्दःसत्त्वेऽपि न कवेरुक्तौ छन्दः प्रयुज्यते ।। ८ ।।
गद्यस्य च प्रधानत्वादक्षता गद्यकाव्यता ।
मङ्गलाचरणं वाऽपि स्वकुलादिनिरूपणम् ।। ९ ।।
प्रभोर्वा निजसम्मानकारकस्य प्रशंसनम् ।
प्रसङ्गोपात्तमन्यद् वा श्लोकैश्चेद् विनिबद्ध्यते ।।१०।।
ग्रन्थस्याऽऽदौ तथाऽन्ते वा न तच्चम्पूत्वसाधकम् ।
ईदृक्षोऽयं यतो लेखो न काव्यघटको भवेत् ।।११।।
किन्तु काव्योपकर्तत्वात् कविभिर्विनिबद्ध्यते ।
साधनं वा बाधनं वा न क्वाऽप्येतेन जायते ।।१२।।
उपोद्घातोपसंहारौ गद्येनाऽपि कृतौ वरौ ।
तयोस्तु सत्त्वेऽसत्त्वेऽपि काव्ये स्यात् काव्यताऽक्षता ।।१३।।

भावार्थ

उपन्यास में पद्य तो होने ही न चाहिये । यदि हों तो कहाउत में हों, अथवा अन्य कवि की उक्ति के वहाने से हों (यों प्रायः उच्छ्वासारम्भ में होते हैं; जैसे हर्ष चरित, औ शिवराजविजय में) ।। ६ ।। और जहाँ पात्र ही ने कोई बात पद्य ही में कही है और उसका पद्य ही में दिखलाना अधिक आनन्दजनक होता है (जैसे कादम्बरी में शुकोक्ति, शिवराजविजय में तानरङ्गोक्ति और महादेव शास्त्री की उक्ति) तो ऐसे स्थल में पद्य हो सकते हैं। पर इन पद्यों में स्वाभाविक उक्ति हो और प्रसाद गुण हो ।। ७ ।। ये छंद छोटे चाहिये । इन छंदों में भी कुछ

गद्य का सा आनन्द हो ।। (मात्रावृत्त, अथवा गुरुलघु के विशेष नियम रहित अनुष्टुप् कवित्त आदि अथवा अन्त्यानुप्रास के आग्रह से रहित कविता Blank-Verse. गद्य का सा आनन्द देती है इसमें अनुभवी पुरुषों के हृदय ही प्रमाण हैं) यों छंद रहते भी कवि की उक्ति में छंद न हुआ ।। ८ ।। और गद्य ही प्रधान रहा इसलिये गद्यकाव्यता में त्रुटि नहीं ।। मङ्गलाचरण, अथवा अपने कुल आदि का निरूपण—।। ९ ।। अथवा अपने सत्कार करने वाले राजा आदि का वर्णन अथवा और भी कुछ प्रसङ्गानुसार श्लोकों से बांधा जाय—।।१०।। ग्रंथ के आदि में अथवा अन्त में, तो इससे यह[३] चम्पू नहीं कहला सकता, क्योंकि वह लेख तो इस काव्य का अवयव नहीं होता ।। ११ ।। परन्तु यह काव्य का उपकारी समझ कवियों द्वारा बाँधा जाता है । न तो इससे इस काव्यता का साधन है, और न काव्यता का बाधन है ।। १२ ।। जो श्लोक से कहना कहा है वही भूमिका और उपसंहार गद्य से करें तो भी अच्छा है । पर ये रहें चाहे न रहें काव्य की काव्यता में हानि नहीं ।। १३ ।।

अब उपन्यास में क्या होने से उत्तमता होती है और क्या होने से निकृष्टता होती है सो दिखलाते हैं :

कारिका

चरितं मञ्जुलं ग्राह्यं तथानल्पैश्च कल्पनैः ।
कर्त्तव्यं मञ्जुलतरं वक्तव्यं कोमलाक्षरैः ।। १४ ।।
वर्णनं देशकालादेः स्वभावस्य प्रधानतः ।
परस्परमथाऽऽलापे स्वभावोक्तिः प्रशस्यते ।। १५ ।।
उत्कण्ठावर्द्धको हृद्यः सान्तरो वासनान्तरैः ।
प्रबन्धोऽत्र प्रबद्धश्चेत् सरलः शस्यते जनैः ।। १६ ।।
शब्दजालप्रधानं यद् दूरान्वयसमन्वितम् ।
अत्यन्तवर्णनं वापि स्वभावोक्तिविवर्जितम् ।। १७ ।।

---

३. जिस काव्य में गद्य पद्य दोनों हों उसे चम्पू कहते हैं ।।

उत्साहोच्छेदकं यच्च कथादौर्बल्यकारकम् ।
बाहुल्यं रूपकोत्प्रेक्षादीनां न गुणिनां मतम् ॥ १८ ॥
कथाच्छेदो भवेद् यत्र परिच्छेदोऽत्र कल्प्यते ।
परिच्छेदोच्छ्वासभागविरामादिकसंज्ञकः ॥ १९ ॥
स मा भूद् वा भवेद् वापि विच्छित्तिः समपेक्षिता ।
भागे वाऽपि प्रभागः स्यात् कवीनां किमशोभनम्? ॥ २० ॥
तथा प्रतिव्यवच्छेदामारम्भे तु सुपद्यकैः ।
नैजैः परकृतेर्वाऽपि पूर्णैर्वा किञ्चिदुध्दृतैः ॥ २१ ॥
अन्यापदेशेन यदि क्रियेतार्ऽथस्य सूचनम् ।
सहृदां हृदये तच्चाऽऽनन्दसन्दोहदं भवेत् ॥ २२ ॥
भागारम्भे वर्णना स्यात् भागान्ते चाऽद्भुतादिकम् ।
मध्ये प्रधानो विषयः शुभो माधुर्यगुम्फितः ॥ २३ ॥
एकभागे नैव कुर्यात् भिन्नर्तुद्वयवर्णनम् ।
निष्कारणं चैकपात्रे भावभेदोऽपि नोचितः ॥ २४ ॥

भावार्थ

उपन्यास बाँधनेवाले को चाहिये कि पहले तो कहानी उत्तम चुनै और फिर उसमें और भी नाना पात्र और घटनाओं की कल्पना करके उसे अधिक मनोहर करे। और कहनूत में कोमल अक्षरों से कहै ॥१४॥ देशकाल, (अवस्था, घटना) आदि के वर्णन में स्वभाव-सिद्ध वर्णन करे। अस्वाभाविक बहुत ऊटपटांग न हाँके और आपस की बातचीत में स्वभावोक्ति का अधिक ध्यान रक्खे। अर्थात् पात्रों का जैसा जैसा स्वभाव (सच्चा, झूठा, चञ्चल, गम्भीर, सज्जन, दुष्ट आदि) बाँधा है, जैसा वय आदि के अनुसार प्राप्त है, और जैसा उस घटना पर हो सकता है, उसी के अनुसार आलाप करावे, उसके विरुद्ध न होने पावे ॥ १५ ॥ प्रबन्ध ऐसा होना उत्तम है कि बराबर उत्कण्ठा बढ़ती ही चली जाय, हृदय उसमें डूबता ही जाय, और एक घटना हो रही है कि दूसरी का आभास आ गया, एक रस में बीच में किञ्चित् दूसरे रस का प्रकाश हो गया, यों एक में दूसरे की वासना होती

जाय, और प्रसादगुण विशिष्ट हो तो गुणी लोग उसकी प्रशंसा करते हैं ॥ १६ ॥ और जिस प्रवन्ध में शब्दों का जाल ही प्रधान रहता है, अर्थात् जग प्रसिद्ध वसन्तादिवर्णन, सन्ध्यादिवर्णन ही में श्लेषरूपकानुप्रासादि की भरती रहती है, और अन्वय दूर दूर रहता है, अथवा किसी पदार्थ का अत्यन्त ही वर्णन रहता है, (जिसे पढ़ते जी उबिया जावे) स्वभावोक्ति नहीं रहती है ॥ १७ ॥ ऐसा प्रकरण होता है, जिसमें पढ़नेवाले का पढ़ने का उत्साह न रहे, अथवा अपर लेखों के कारण प्रधान कथा दुर्वल हो जाय*, अथवा रूपक उत्प्रेक्षादिका वहुत ही आधिक्य हो, तो गुणी लोग उसको उत्तम नहीं समझते। (ऐसे लेखक को गुणी लोग यही समझेंगे कि जैसे ठुमरीवाला साहस करके ध्रुवपद गाने लगे और ठुमरी ही की तानें लगावे, वैसे इसको अलङ्कार और खण्डकाव्यादि में अच्छा अभ्यास है, उसी अभिमान से यह अताई वन उपन्यास वनाने वैठ गया है) ॥१८॥ जहाँ एक कथा का विच्छेद हो (एक प्रकरण छोड़ आगे कोई दूसरा प्रकरण उठाना हो) वहाँ परिच्छेद की कल्पना की जा सकती है, इसका नाम परिच्छेद, उच्छ्वास भाग, विराम (निःश्वास, प्रश्वास) इत्यादि रक्खा जा सकता है ॥ १९ ॥ यह परिच्छेद कल्पना हो अथवा न हो चमत्कार रहना चाहिये। और एक भाग में और भी प्रभाग किये जाँय, तो कवियों के लिये अशोभित क्या है (यदि ऐसी कल्पना ही में ग्रन्थकार को विच्छित्ति जान पड़े तो ऐसी कल्पना भी करैं जैसे शिवराजविजय में विरामसंज्ञक तीन भाग हैं और प्रत्येक विराम में चार-चार निःश्वास हैं) ॥ २० ॥ और यदि इन परिच्छेदों के आरम्भ में अपने बनाये अथवा दूसरे के पूरे अथवा किञ्चित् पद्य ॥ २१ ॥ कहे जाँय और अन्योक्ति की भाँति उनके द्वारा उस भाग के विषय की निगूढ़ सूचना दी जाय तो सहृदय के हृदय को आनन्दजनक होता है जैसे हर्षचरित, शिवराजविजय इत्यादि ॥२२॥ इन भाग परिच्छेदादि के आरम्भ में देशकालादि का वर्णन, भाग के अन्त में अद्भुतादि और मध्य में प्रधान विषय माधुर्यमय रक्खा जाय तो अच्छा होता है (यह केवल दिग्दर्शन है कवि और रीति से भी उत्तम समझे तो वाँधे) ॥२३॥

---

* जैसे वासवदत्ता में समुद्रसेनादि के वर्णन से वासवदत्ता संयोग की प्रधानकथा दुर्वल हो गई।

एक परिच्छेद में भिन्न (दूरस्थ) दो ऋतुओं का वर्णन न करे और निष्कारण एक पात्र के स्वभाव में भी भेद न दिखलाये ॥ २४ ॥

साहित्य में अन्धपरम्परा आदरणीय नहीं है, किन्तु पूर्व की आलोचना करके यदि स्वानुभव द्वारा और भी उन्नत तथा उदार बात निकल सकै तो निकालना, जैसे विक्रमाङ्कचरित १ म सर्ग—

प्रौढिप्रकर्षेण पुराणरीति-व्यतिक्रमः श्लाघ्यतमः कवीनाम् ।
अत्युन्नतिस्फोटितकञ्चुकानि, वन्द्यानि कान्ताकुचमण्डलानि ॥

और यह श्लोक भी जगत्प्रसिद्ध है :

पुराणमित्येव न साधु सर्वं, न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्याऽन्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयदृष्टिः ॥

प्राचीन गद्यकाव्य के लक्षण और विभाग से सन्तोष नहीं हुआ, अतएव जो मुझे सूझा निष्पक्षपात हो के लिखा है। मेरे सहयोगी महानुभावों से बार-बार यह प्रार्थना है कि इसे केवल एक प्रकार का ढड्डा समझें और इसके अवलोकन से कोई इससे रह गई बात जान पड़े अथवा इस विषय में कोई ऊनता विदित हो तो उसे भी सोच जोड़ के बढ़ा के स्वकीय लेख प्रकाशित करें, जिसमें गद्य-काव्य विषय पूरा हो। और यदि यही लेख अच्छा समझें तो इसी पर स्वसम्मति प्रकाश करैं।

प्रधानसंस्कृताध्यापक
गवर्नमेण्टस्कूल
छपरा

साहित्य के रसज्ञों का अनुगत—
अम्बिकादत्त व्यास
काशीवासी

॥ श्रीः ॥

निर्माणहेतुः

"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति"

श्लोक एकस्याऽप्यंशस्य चमत्कार-विशेषाधायकत्वे सर्वोऽपि श्लोकः प्रशस्यते, न च पद्ये तथा सुलभं सौष्ठवम्; गद्ये तु सर्वाङ्गीण–सौन्दर्य-मुपलभ्येत चेत्, तदैव तत् प्रशंसा-भाजनं भवेद् भव्यानाम्। पद्ये छन्दःपारवश्यात् स्वच्छन्द-पद-प्रयोगो न भवतीत्यनिच्छताऽपि कविता-प्रसङ्ग-प्राप्तं स्वाभाविकं स्वल्पमपि वचनीयं क्वचिद् विस्तार्यते, क्वचिद् बह्वपि नियताक्षरैः संक्षिप्य क्षोदिष्ठं विधीयते, क्वचिच्च द्वित्र-स्वाभाविक–पद–प्रयोग–समापनीयान्यपि पारस्परिकालाप-संसक्त-प्राप्त-वाक्यानि जटिलीक्रियन्ते। गद्ये तु यदि किमपि तादृश-मस्वाभाविकं स्यात्, तत् कवेरेव निर्वक्ति महदवद्यम्, इत्यादि-कारणैः पद्यापेक्षया गद्यमेव महामान्यं भवति, भवति च दुष्करमपि गद्यकाव्यमेव। अत एव शुद्ध-पद्यात्मकेषु बहुषु महाकाव्येष्वपि खण्ड-काव्येष्वपि च प्राप्येष्वपि गद्यपद्यात्मकेषु चम्पू-नाटकादिषु चाऽनेके-षूपलभ्यमानेष्वपि, शुद्ध-गद्य-काव्यानि तथा नाऽऽसाद्यन्ते। अस्माकं महामान्या धन्याः सुबन्धु-बाण-दण्डिनो महाकवयो ये वासवदत्ता-कादम्बरी-दशकुमारचरितानि सुधामधुराणि सदा सदनुभव्यानि गद्यकाव्यानि विरचय्य भारतवर्षं सबहु-प्रमोद-वर्षं व्यधिषत; येषां चोक्ति-पर्य्यालोचन-प्राप्त-पर्याप्त-व्युत्पत्तयोऽसङ्ख्याश्छात्रा अद्याऽपि वर्तन्ते, वर्तिष्यन्ते च चिराय। पूर्वैर्भट्टार-हरिचन्द्र-प्रभृतिभिरेतै-

महाकविभिश्च प्रचारितोऽपि महाकाव्य-संचारो न चिराय स्थिति-मकलयत् । भारताभिजन-भाषाकविभिरपि च प्रायः पद्य-प्रकृतिकैरेव समभावि, इति जगत्प्रसिद्धैः सूरदास-प्रभृतिभिरपि पद्यान्येव निबद्धानि । साम्प्रतं तु समय-महिम्ना भारतीय-वर्तमान-भाषासु बहुधा गद्यकाव्यानि विरच्यन्ते । वङ्ग-गुर्जरादि-भाषासूपन्यासैरेव व्याप्ता विपणयः । हिन्दीभाषाऽपि च प्रत्यहमतिशयमासादयति गद्यसोपाने-ष्वेव पदाधाने । परं न केवलं प्राकृतिक-गिरां गुरवो गीर्वाणगिरि व्युत्पत्तिगरीयांस उपलभ्यन्ते, न वा कांश्चिद् धन्य-धन्यान् विहाय संस्कृत-व्युत्पन्ना एव, इतर-भाषानुरक्ता विशेषतोऽवलोक्यन्ते । अत एव भारताभिजन-भाषा-कवयः प्रायः स्वभ्रमान् साक्षात् संस्कृतसाहाय्येन बोधयितुं न पारयन्ति, न वा भाषाकविसमादृतान् नवान् नवान् मनोरमान् चमत्कारविशेषाधायकान् पथोऽनुसर्तुं संस्कृत-साहित्य-वैभवेषु च निधीन् वर्द्धयितुं संस्कृतज्ञा एव प्रायशः पारयन्ति । कदाचित् वृन्दारक-वृन्द-वाण्यां गद्यकाव्य-प्रचार-दौर्बल्यस्येदमेव प्रधानं कारणं स्यात् । महदिदमुपहासास्पदं विडम्बनं यत् मण्डूक इव महापारावारपारमासादयितुं यतमानस्तादृशं कवि-कौशल-निकषायितं गद्य-काव्यं मादृक्षः क्षोदीयान् जनो रिरचयिषुः संवृत्त इति । काव्यमिदं मा स्म भूत् तादृगभाव-विघट्टकम्, मा स्म वा पुषत् कस्यापि मोद-विशेषम्; परं मया तु सनातनधर्म धूर्वह-शिवराज-वर्णनेन रसना पवित्रितैव, प्रसङ्गतः सदुपदेश-निर्देशैः स्व-ब्राह्मण्यं सफलितमेव, ऐतिहासिक-काव्यरुचीनि स्वमित्राणि रञ्जितान्येव, चिरमस्मत्पूर्वजैः पराशर-पाराशरादिभिरुपासिता संस्कृतभाषा सेवितैव, चक्षुषी निमील्य सविशेषं साक्षात्कृता पीयूष-पूर-पूर्णैरिव दृक्पातरुज्जीवयन्ती पारिजात-

कुसुम-वर्षिभिरिव वचनैरुपदिशन्ती जननी सरस्वती समाराधितैव, सद्यःपरनिर्वृतिश्च समासादितैव। भवभूतिजगन्नाथादीनां राज-मान्यानां कवि-मण्डल-चक्रवर्तिनां तु द्वेषविशेषैर्वा स्वग्रन्थमार्मिक-जनालाभेन वा कारणान्तर-कलापैर्वा महानेव शोक-सङ्घात आसीत् "कोऽस्मद्ग्रन्थानवलोकयिष्यति ? को वाऽस्माकं गूढ़तात्पर्यं भोत्स्यति ?" इति चिन्ता-सन्तान-वितान-झञ्झावातोद्धूतसंशयघन-घनाडम्बर एव तथा समरौत्सीद् हृदयाकाशम् ; यथा ध्रुवं सद्यःपरनि-र्वृतिरूप-चन्द्रिका-प्रसारेणाऽपि न रञ्जितमेव तदन्तःकरणकुमुद-वनम्।

तथा च तैरेवोक्तम्—

"ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥"

"विद्वांसो वसुधातले परवचःश्लाघासु वाचंयमा
भूपालाः कमलाविलासमदिरोन्मीलन्मदाघूर्णिताः।
आस्ये धास्यति कस्य लास्यमधुना धन्यस्य कामालस-
स्वर्वामाधर-माधुरीं विधुरयन् वाचां विलासो मम॥"

अहं तु तादृक्षाणां महाकवीनां चरण-रजो-विमर्श-भाजनमपि तदपेक्षयाऽधिकं भाग्यवत्तरोऽस्मीति निश्चिनोमि, यतो मद्ग्रन्थ-मार्मिकस्तु मिथिला-मही-महेन्द्रः, भारत-साम्राज्य-व्यवस्थापक-समाज-संजीवनः, महामान्यः, वदान्यः, धन्य-धन्यः, विविध-विरुदावली-विराजमानः, राजमानोन्नतः, नतोन्नतिदायकः, महाराजश्री-

रमेश्वरसिंहवीरवर एवास्ति । माद्यन्ति च परश्शता वाराणस्यादि-पण्डित-मण्डल-मण्डना रसास्वादानुकूल-वासना-वासितान्तःकरणा विबुधजनाः ।

सोऽयं स्वलेखनी-कण्डूमुपशमयितुं लिखितः लेखप्रकाण्डो यदि केषाञ्चित् पण्डित-प्रकाण्डानां कर्ण-कण्डूं खण्डयेत्; तत् कृतकृत्यः संवर्त्तेय । ये तु पुरोभागिनो निगीर्यापि प्रबन्धममुं तुण्ड-मुण्ड-गण्ड-कण्डूयनैः, ताण्डव-करण्डीकृत-भ्रूभङ्गैश्चाऽस्मानास्माकांश्च हास-यष्यन्ति; तेऽप्यसङ्ख्य-प्रणति-पात्राण्येवाऽस्माकम् । ये तु जोषं जोषमालोक्याऽपि काव्यानि, समासाद्याऽपि च तोषम्, सरोषमुज्जृम्भिताभिर्जाठरज्वालाभिरेव तं जारयन्ति; जारयन्ति ते ग्राव्णोऽपि लौहमपि विषमपि दाधीचास्थीन्यपि चेति विलक्षण-कुक्षयस्ते न कस्य नमस्याः ?

अम्बिकादत्तव्यासः

॥ श्रीः ॥

महाकविश्रीमदम्बिकादत्तव्यासविरचितः

शिवराजविजयः

द्वितीयो विरामः

"वयं नो ते विप्राः प्रतिदिवसमासाद्य कृपणान्,
धनं ये याचन्ते प्रतिगणित-नक्षत्र-तिथयः"

—जगन्नाथपण्डितराजः

शिवराज-विजय-वैजयन्ती

वागीश्वर्यै नमः

मनोजमदमन्थने प्रमदमादधानो भवः
स्वयं भवति विष्टरो विनत एव यस्याः कृते ।
समर्चित-पदद्वया त्रिदश-मण्डली-मण्डनै-
स्तमालदल-भासुरा भवतु काऽपि वुद्धिप्रदा ॥

पञ्चमे निश्वासे हिन्दू-धर्म-ध्वंस-विध्वंसन-पटुना शिववीरेण साकं महाकवे-र्भूषणस्य सम्वन्धं विवर्णयिषुरुपक्षिपति पण्डितराजोक्तिम्—वयं नो ते विप्रा इति ।

शिवराज-विजय का हिन्दी अनुवाद

ज्ञानप्रतीकशुभपुस्तकवामहस्ता
वीणागुणक्वणनरञ्जितसर्वलोका ।
मन्मानसाच्छमुकुरार्पितविग्रहा सा
देवी स्मृता स्पृशतु मां स्वकृपाकटाक्षैः ॥

"हम तिथि-नक्षत्रादि गिनने वाले उन ब्राह्मणों में नहीं हैं जो प्रतिदिन कञ्जूसों के पास जाकर उनसे धन माँगते हैं।"

——पण्डितराज जगन्नाथ

"हरेरद्य द्वारे शिव ! शिव ! शिवानां कलकलः"

—जगन्नाथपण्डितराजः

इतस्तु दृश्यतां किं भवति पुण्यनगर इति। जाल्म–यवनाखेट-व्यसनिनः शिववीरस्य शनैः शनैर्दिल्लीश्वरेणापि सह वैरं ववृधे। दिल्लीश्वरस्तु शास्तिखान–नामानं कञ्चिद् यवन–वीरं प्रेष्य पुण्य-नगरं तद्धस्तादाचिच्छिदे। सम्प्रति हि पुण्यनगरे शिववीराध्युषि-तचरे महाप्रासादे सपरिवारः शास्तिखानः प्रतिवसति। आसन्ने

यद्यपि तदात्वे वहवो ब्राह्मणब्रुवा धर्माधर्मविवेकविधुरास्तात्कालिकावस्थिति-मात्रदृष्टयोऽप्यभवन्, तथापि तेषामेव ब्राह्मणानां विशिष्टा संख्याऽऽसीद् ये जीविका-निर्वाह-प्रकारेऽदत्तदृष्टयस्त्यागिनो धर्म-रक्षण-मात्र-व्रता इति सूचयति पद्यखण्डेना-नेन। वक्ता चास्य दिल्लीवल्लभ-पाणि पल्लवतले नवीनस्य वयसो यापक इति परमं वैशिष्ट्यम्। अपरा चात्र कथाऽऽगमिष्यति शिववीरहस्ताद् "शास्तिखान"–द्वारा दिल्लीवल्लभेन स्वायत्तीकृतस्य पुण्यनगरस्य, तच्च सिंहपराक्रमस्य शिव-वीरस्य द्वारि शृगालसञ्चरणान्नातिरिच्यते यवनहतकसंचरणमिति समुपक्षिपति द्वितीयेन तदीयेनैव पद्यखण्डेन–हरेरद्येति। शिवानाम् = शृगाल-शृगालीनाम्। "पुमान् स्त्रिया" इत्येकशेषः। जाल्मानाम् = असमीक्ष्यकारिणाम्, यवनानाम्, आखे-टस्य व्यसनिनः। ववृधे = एधामास। तद्धस्तात् = शिववीरकरात्। आचि-च्छिदे = प्रसह्य जग्राह। स्वायत्तीचकारेति यावत्। "छीन लिये" इति हिन्दी। "छिदिर् द्वैधीकरणे" इत्यस्य लिटि रूपम्। अध्युषितं भूतपूर्वमध्युषितचरम्,

---

"शिव ! शिव ! आज सिंह के दरवाजे पर गीदड़ कोलाहल कर रहे हैं।'

——पण्डितराज जगन्नाथ

इधर देखिये पूना नगर में क्या हो रहा है। जालिम यवनों का शिकार खेलने के शौकीन महाराज शिवाजी का, धीरे-धीरे दिल्ली सम्राट् औरंगजेब के साथ भी वैर बढ़ गया। औरंगजेब ने शाइस्ता खाँ नामक किसी यवन वीर को भेजकर शिवाजी के हाथ से पूना नगर छीन लिया। इस समय पूना नगर के उस राजमहल में जहाँ पहले महाराज शिवाजी रहा करते थे, सपरिवार शाइस्ता खाँ

सिंहदुर्गे च ससेनः शिववीरो विराजते। परस्परं च च्छलाशङ्का युद्धाशङ्काश्च जरीजृम्भन्ते।

अथैकदा रजन्यां सिंहदुर्गाविदूर एव सुकोमल–शादायां कलित-प्रसादायां केकि–केका–विहित–प्रहरि–प्रातिनिध्यायां भुवि, निष्कृप-कृपाण–पाणिः, कञ्चुकाच्छादित–कठिन–कवचः, कलित–सैनिक-भट–वेषः श्रीशिववीरो गुप्तवेषेण परितः पर्य्यटन्, दुग्ध-धारयेव क्षालितैर्ज्योत्स्नया प्रकाशितैः पथिभिरासन्नात् शिवमन्दिरादारा-

---

"भूतपूर्वे चरडि" ति चरट्। शिववीरेणाध्युषितचरम् तस्मिन्निति विग्रहः। छला-शङ्काः = चौर्यातङ्काः। जरीजृम्भन्ते = मुखं व्यादायेव वृद्धिमतिशयेन गच्छन्ति। "जृभी गात्रविनाम्" इत्यस्य यङ्लुकि रूपम्। सुकोमलाः शादाः = हरिततृणानि यस्यां तस्याम्। "शादो जम्बालशष्पयोरि"त्यमरः। कलितः = सम्पन्नः, प्रसादः= नैर्मल्यं यया तस्याम्। केकिकेकाभिः = मयूरवाणीभिः, "केकावाणी मयूरस्ये" त्यमरः। विहितम् = सम्पादितम्, प्रहरिणाम् = यामिकानाम्, प्रातिनिध्यम्= प्रतिनिधिकर्म यस्यां तस्याम्। "गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणीति" ष्यञ्। भुवो विशेषणानि त्रीणि। शिववीरं विशिनष्टि—निष्कृपः = कृपाशून्यः, कृपाणः पाणौ यस्य सः। कञ्चुकेन = चोलकेन, आच्छादितः = प्रावृतः, कठिनः = दृढः, कवचः = तनुत्रं, यस्य सः। कलितः सैनिकभटस्य वेषः = नेपथ्यं येन सः। "सेनारक्षास्तु सैनिका" इत्यमरः, "सेनायां समवेता ये सैन्यास्ते सैनिकाश्च त" इति चामरः, "रक्षति" इति ठक्। जोत्स्नया = कौमुद्या। प्रकाशितैः = प्रद्योतितैः।

रह रहा है। समीप में ही स्थित सिंहगढ़ में अपनी सेना के साथ महाराज शिवाजी रह रहे हैं। शाइस्ता खाँ और शिवाजी में परस्पर छल और युद्ध की आशङ्काएँ बढ़ती जा रही हैं।

एक दिन रात में सिंहगढ़ से थोड़ी ही दूर पर सुकोमल हरी-हरी घास वाली निर्मल भूमि पर—जहाँ मयूर मानों बीच-बीच में बोल कर पहरा दे रहे थे—हाथ में निर्दय कृपाण लिये, कञ्चुक के नीचे लौहकवच पहने, एक सैनिक के छद्मवेष में घूमते हुए महाराज शिवाजी, दूध की धारा से धुले हुए से लगने वाले, चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशित मार्गों से समीपवर्ती शिवमन्दिर के पास पहुँचे। मन्दिर के

जगाम। तत्र च द्वारि रेणु–रूषित–रोम—कुहरम्, शफोत्फालित-मृत्स्ना-स्नातम्, त्वरितगति-श्वास-प्रश्वास-सहचरित-ह्णित्कार-सूचित-क्लमम्, उत्थायोत्थाय पृष्ठमुत्कम्प्य, ग्रीवामुद्धूय, पौनःपुन्येन पतित्वा, भुवि विलुण्ठन्तं कञ्चनाश्वमद्राक्षीत् 'कस्यायम्? कुतोऽयम्? इति मनसि विचिन्वंश्च समीपमागत्य, चुचुत्कारैरश्वं सान्त्वयन्तं हरित-तृण-भारं च पुरतः प्रक्षिपन्तं कमपि शूद्र-युवकमप्यवालोकयत्। तं च विवर्णवदनम्, आजानु–धूलि–धूसरित–चरण–युगलम्, मन्थरितशरीरम् स्वेद–क्लिन्नं चावलोक्य, "दूरतः कश्चन

उत्प्रेक्षते—दुग्धधारया = पयःप्रवाहेण। क्षालितैरिव = धौतैरिव "आराद् दूरसमीपयो"रित्यमरः, तद्योगे "अन्यारादि"ति पञ्चमी। तत्र च द्वारि कञ्चनाश्वमद्राक्षीदिति सम्बन्धः। अश्वं विशिनष्टि—रेणुभिः = धूलिभिः, रूषितानि = छुरितानि, रोम्णां कुहराणि = छिद्राणि, यस्य तम्। शफोत्फालितया = खुरोद्धूलितया, मृत्स्नया = प्रशस्तया मृदा, स्नातम् = अनुलिप्तम्। त्वरितगतीनाम् = शीघ्रगमनानाम्, श्वासप्रश्वासानाम्, सहचरितेन = सहवासिना, ह्णित्कारेण = हेषारवेण, सूचितः=प्रकटीकृतः, क्लमः = दूरमार्गानुधावनोत्थः श्रमो येन तम्। अश्वानां दीर्घश्वासप्रश्वासौ हेषासहितावेव भवतः। उत्थायेत्यादि भुवि विलुण्ठन्तमित्यन्तं स्वभावोक्तिः। उत्कम्प्य=कम्पयित्वा। विवर्णवदनम्= खिन्नाननम्। आजानु = जानुपर्यन्तम्, धूल्या = रजसा, धूसरितम् = मलिनम्,

---

द्वार पर उन्होंने धूल-धूसरित रोमकूप वाले किसी घोड़े को देखा, जिसका शरीर खुरों से उछलने वाली मिट्टी से लथपथ था। उसकी श्वास-प्रश्वास की गति तेज थी, साथ-ही-साथ वह हिनहिनाता भी था, जिससे प्रकट होता था कि वह थका है। वह उठता था, पीठ हिलाता था, गर्दन उठाता था और पुनः पृथ्वी पर गिर कर लोटने लगता था। उसे देख कर मन ही मन यह सोचते हुए कि "यह घोड़ा किसका है", "कहाँ से आया है" शिवाजी ने समीप आकर, चुमकार कर उस घोड़े को सान्त्वना दे रहे और उसके आगे हरी घास डाल रहे एक शूद्र युवक को भी देखा। उस शूद्र युवक का उतरा हुआ मुँह, घुटनों तक धूलधूसरित

समायातोऽस्ति, तद्भृत्य एवायम्'' इति निश्चित्य शनैरप्राक्षीत्-''कस्यायमश्वः ?'' इति। स तु स्वकार्य–संलग्नोऽन्यमनस्क एव, ''समायातः कोऽपि'' इत्युदतरत्। पुनरपि ''कुत आगता यूयम् ?'' इति पृच्छति शिववीरे च, ''किमिव निरर्थं प्रश्नानुट्टङ्कयसि, आलपितुमिच्छसि चेद् घटिका–युगलमतिवाह्य समायास्यसि, तथा पूरित–जठर–पिटकः, ताम्रक–धूमपानैर्गलनलं कवोष्णयन्, त्वया सह वार्त्ताभिरध्व-परिश्रममल्पयिष्यामि।'' तदाकर्ण्यान्तर्विहसन्निव शिववीरः ''तथा करिष्यावः, किन्तु कथय तावत्, कुत आगता यूयम् ?''—इति पुनरपृच्छत्। स तु घोटके दत्तदृष्टिरेव सकोपमवादीत्—''कुत आगता यूयम् ? कुत आगता यूयमिति कुतःकारैः स्फोटितौ मे कर्णौ, वयं

चरणयुगलं यस्य तम्। मन्थरितम् = स्थगितम्, शरीरम् = देहो यस्य तम्। स्वेदेन = श्रमजलेन, क्लिन्नम् = आर्द्रम्। शूद्रयुवकविशेषणानीमानि। अन्यमनस्क इव = विमना इव। प्रश्ने प्रश्नकर्त्तरि च ध्यानमददद्देवेति यावत्। निरर्थम् = प्रयोजनशून्यम्। पूरितः = भरितः, जठरमेव पिटकः = मञ्जूषा येन तादृशः। ''पिटकः पेटकः पेटा मञ्जूषे'' त्यमरः। गलनलम् = कण्ठरन्ध्रम्, कवोष्णयन् = ईषदुष्णं कुर्वन्।

पैर और थका तथा पसीने से लथपथ शरीर देख कर महाराज शिवाजी ने यह समझ कर कि ''कोई अश्वारोही दूर से आया है और यह उसका नौकर है'' उससे पूछा 'यह घोड़ा किसका है ?' अपने काम में लगे हुए उसने अन्यमनस्कतापूर्वक उत्तर दिया ''कोई आया है।'' पुनः महाराज शिवाजी के यह पूछने पर कि ''तुम लोग कहाँ से आये हो ?'' वह बोला, ''क्यों बेकार के प्रश्न पूछ रहे हो ? यदि बातचीत करना चाहते हो तो दो घड़ी बाद आना, तब अपना पेट-पिटारा भर कर, तम्बाकू पीता (अपनी कण्ठनली को कुछ गर्म करता) हुआ, तुम्हारे साथ बातचीत कर के रास्ते की थकावट दूर करूँगा।'' यह सुन कर मन-ही-मन हँसते हुए शिवाजी ने पुनः पूछा ''अच्छा, ऐसा ही करेंगे, पर तब तक यह तो बताओ कि तुम लोग आ कहाँ से रहे हो ?'' वह घोड़े की ही ओर देखता हुआ

दिल्लीत आगताः, दिल्लीतो दिल्लीतो दिल्लीतः, कथय किं गजं ददासि घोटकं वा ?" तदाकर्ण्य, शिववीरस्तत्प्रकृतिं परिज्ञाय, शनैः परिवृत्य, मन्दिरस्य पश्चिमदेशे पर्य्यटितुमारेभे ।

"कोऽयं, कुतोऽयं, चरो वा संदेशहरो वा, कपटपथिको वा, अस्मत्पक्षपाती वा, शत्रुपदातिर्वा, कोऽप्युभयपक्षोदासीनो वेति सद्य एव विज्ञेयम्" इति विचारयन्, मन्दिर-पाश्चात्त्य-प्राचीर-गवाक्षादायान्तं कञ्चिदस्पष्टालाप—ध्वनिमश्रौषीत् । क्षणं विरम्य च, गवाक्ष-समीपमागत्य, ध्वनिप्रतिध्वनिभिरव्यक्तांश-बहुलामप्येवमुक्तिं निश्चिच्ये यत्—

"चिराय दिल्ली-वल्लभ-पाणिपल्लव-तल्लज-च्छायामध्युषितो-

मन्दिरस्य = देवालयस्य, **पाश्चात्त्यः**=पश्चाद् भवः, यः **प्राचीरगवाक्षः**= प्रान्ततोवृति-वातायनम्, तस्मात् "प्राचीरं प्रान्ततो वृतिः" इत्यमरः । **अस्पष्टः** = अव्यक्तः यः, यथा कथंचिदेवमेवमिति निश्चितः **आलापस्य** = पारस्परिकवार्त्तायाः, ध्वनिः, तम् । **ध्वनिप्रतिध्वनिभिः** = शब्दप्रतिशब्दैः, **अव्यक्तांशबहुलाम्** = अस्पष्टभागप्रचुराम् । **निश्चिच्ये** = निश्चिकाय ।

झुंझला कर बोला "तुम लोग कहाँ से आये हो, तुम लोग कहाँ से आये हो," इस कहाँ कहाँ से तो तुम मेरे कान फोड़े डाल रहे हो, हम दिल्ली से आये हैं दिल्ली से, दिल्ली से, दिल्ली से, कहो, हाथी देते हो कि घोड़ा ?" यह सुन कर शिवाजी उसका स्वभाव समझ कर, धीरे से लौट कर, मन्दिर के पश्चिम की ओर टहलने लगे ।

"यह कौन है, कहाँ से आया है, गुप्तचर है या दूत, छद्मवेषी पथिक है या हमारे ही पक्ष का कोई व्यक्ति, शत्रुसेना का कोई सैनिक है या दोनों पक्षों से उदासीन कोई तटस्थ व्यक्ति, यह शीघ्र ही जानना चाहिये" यह विचार करते हुए शिवाजी ने मन्दिर की पश्चिम ओर की चहारदीवारी की खिड़की से आती हुई फुसफुसाहट (बातचीत की अस्पष्ट और मन्द ध्वनि) सुनी । क्षण भर रुक कर, खिड़की के पास आकर, शिवाजी ने, ध्वनि-प्रतिध्वनि के कारण उस अस्पष्ट बातचीत के अधिकांश भाग के अव्यक्त होने पर भी, उसके अधोलिखित उक्ति होने का निश्चय किया ।

ऽस्मि । परं वयं कवयः कस्यापि राजत्वं वा प्रतापित्वं वा आढ्यत्वं वा नापेक्षामहे, न वा कस्यापि साभिमान—भ्रूभङ्गम् उत्तुङ्ग–कोपा–श्चिताखर्व–गर्व–बर्बरतां वा सहामहे । न तस्य तादृशं भू-वलये राज्यं यादृशमस्माकं सारस्वतसृष्टौ । तस्य क्रीतदासा अपि न तदीहा-समकालमेव बद्ध-कर-सम्पुटा यथोचितावस्थाना: पुरोऽवतिष्ठन्ते; यथाऽस्माकं पदानि वाक्यानि छन्दांसि अलङ्कारा

चिरायेत्यारभ्य किं भावीत्यन्तं पथिकस्य कस्यचनोक्तिः । स चायं पथिको हिन्दीकविकुलमूर्धन्यो भूषण एवेत्यग्रे स्फुटीभविष्यति । **दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवतल्लजस्य** = दिल्लीपति-करकिसलय-प्रशस्तस्य, **छायाम्** = आश्रयम् । "उपान्वध्याङ्वसः" इति सप्तम्यर्थे द्वितीया । **अध्युषितः** = कृतनिवासः । **आढ्यत्वम्** = धनिकत्वम् । अभिमानेन सहितः **साभिमानः**, स चासौ **भ्रूभङ्गः** = भ्रूविक्षेपः, तम् । **उत्तुङ्गकोपेन** = विपुलक्रोधेन, **अश्चिताम्** = भूषिताम् **अखर्वगर्वाम्** = अनल्पदर्पाम् **बर्बरताम्** = मूर्खताम् । सरस्वत्या इयं **सारस्वती** = वाग्देवी, सा चासौ **सृष्टिः**=सर्गः, तस्याम् । **क्रीतदासाः**=स्वाधीनीकृता भृत्याः । न केवलं वेतनमात्रभोगिनः । **तदीहासमकालम्** = तदिच्छासमसमयम् । **बद्धकरसम्पुटाः** = प्राञ्जलयः । **यथोचितावस्थानाः** = समुचितस्थानस्थितयः । **पदानि** = सुबन्तानि तिङन्तानि च । "सुप्तिङन्तं पदमि"ति पाणिनिदर्शनम् । "एतानि चत्वारि पदजातानि नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्चे"ति भणतो निरुक्तकारस्याप्यत्रैव तात्पर्यम् । उपसर्गनिपातयोरपि सुबन्तत्वात् नाम्नश्च सुबन्तत्वाविशेषादिति वैयाकरणाः । **वाक्यानि** = सुबन्तचया, तिङन्तचयाः, सुबन्ततिङन्तचयाश्च । "सुप्तिङन्तचयो वाक्यामि"ति अमरकारः । "एकतिङ् वाक्यमि"ति

"मैं बहुत दिनों तक दिल्ली-सम्राट् औरंगजेब के प्रशस्त करपल्लव की छाया में रहा हूँ । पर हम कवि लोग न तो किसी के राजा, प्रतापी या धनी होने की ही परवाह करते हैं और न किसी का अभिमानपूर्वक भौंहें टेढ़ी करना, क्रोधपूर्ण, गर्व या बर्बरतापूर्ण व्यवहार ही सहते हैं । औरंगजेब का पृथ्वी पर वैसा राज्य नहीं है जैसा हमारा काव्य जगत् में । उसके खरीदे हुए गुलाम भी उसकी इच्छा होते ही तत्क्षण हाथ जोड़कर उसके सामने आकर यथोचित स्थान पर वैसे नहीं खड़े हो

रीतयो गुणा रसाश्च । स दीनारसंभारैरपि न तथा परांस्तोषयितुमलम् ; यथा वयं केवलं वचनभङ्गीभिरेव पारयामः । अस्मच्छृङ्गाररस-रसायनकमास्वाद्य जित-राग-द्वेषो मुनिरपि प्रतीपदर्शिनीमनुकूलयितुमाकुलः कल्पेत । अस्मद्वैराग्य-कवितामाकर्ण्य रागोऽपि

वदतः कात्यायनस्याप्यत्रैव तात्पर्यमित्याकरेभ्योऽवधारणीयम् । छन्दांसि = मात्रा-वर्णभेदभिन्नान्यार्या-भुजङ्गप्रयातादीनि । अलङ्काराः = काव्यशोभाऽऽधायका अनुप्रासोपमादयः । रीतयः = पदसङ्घटनारूपा वैदर्भीप्रभृतयः । गुणाः = रसधर्मा श्लेषाद्यन्यतमाः । रसाः = शृङ्गारादयः । "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिरि"ति भरताचार्यसूत्रम् । एतदर्थः काव्यप्रकाशादिभ्योऽवधारणीयः । दीनारसम्भारैः = स्वर्णमुद्राकोटिभिः । तोषयितुम् = प्रसादयितुम् । वचनभङ्गीभिः = कथनप्रकारैः । कवित्वेनेति यावत् । अस्माकं शृङ्गाररस एव रसायनकम् = सर्वश्रेष्ठमौषधम् । रागः = विषयाभिलाषः, द्वेषः = शत्रुता, तौ जितौ येन तादृशः मुनिः = मननशीलः । प्रतीपं द्रष्टुं शीलं यस्यास्तां प्रतीपदर्शिनीं "प्रतीपदर्शिनी वामे"त्यमरः । अनुकूलयितुम् = वशयितुम् । आकुलः = विह्वलः ।

"शृङ्गारी चेत् कविः काव्ये जातं रसमयं जगत् ।
स एव वीतरागश्चेन्नीरसं निखिलं भवेत् ॥"

इति हि माननीयपादाः । वैराग्यजनिका कविता वैराग्यकविता, ताम् । रागोऽपि विरज्येत् = विषयाभिलाषोऽपि विरागमागच्छेत् । रूपहानिरियं रागस्य विरागिता नाम । को हि नाम सचेताः—

"यदि नामास्य कायस्य यदन्तस्तद् बहिर्भवेत् ।
दण्डमादाय लोकोऽयं शुनः काकांश्च वारयेत् ॥"

जाते, जैसे हमारी इच्छा होते ही पद, वाक्य, छन्द, अलङ्कार, रीति, गुण और रस उपस्थित होते हैं । वह करोड़ों दीनार देकर भी दूसरों को उतना प्रसन्न नहीं कर सकता जितना हम केवल अपनी वाग्विदग्धता से ही कर सकते हैं । हमारे शृंगाररस रूप रसायन का स्वाद चख लेने पर वीतराग गतमत्सर मुनि भी वामाक्षियों को वश में करने के लिये व्याकुल हो जाय, हमारी

विरज्येत् । अस्मद्वीर-रस-कवितां चाऽऽकलय्य म्रियमाणोऽपि युद्ध उत्तिष्ठेत् । यस्य भाग्ये चिरावस्थायिनी कीर्तिः, समुद्र-कल्लोलाघात-सहं च यशः, स एवास्मानाद्रियते । न वयं मीनानिव पीनान्, इभानिव तुन्दिभान्, भेकानिव निर्विवेकान्, वृषदंशकानिव कपट-हिंसकान्, काकानिवाऽऽस्वादित-दुर्विपाकान्, वलीमुखानिव चञ्चल-मुखान्, शृगालानिव कलित-धूर्त्तामालान्, द्विजिह्वानिव च द्विजिह्वान्,

---

इत्यादि निशम्य बुध्वा चैतदर्थं पुनः पाञ्चभौतिकदेहरक्षणसक्षणः स्यात् ? एवमन्येष्वप्यूहनीयम् । म्रियमाणोऽपि = प्राणांस्त्यजन्नपि । अतिशयोक्तिः । उत्तिष्ठेत् = उत्थितो भवेत् । "उदोऽनूर्ध्वकर्मणी"त्यात्मनेपदं न, ऊर्ध्वकर्मणो विवक्षितत्वात् । भाग्ये = भागधेये । चिरावस्थायिनी = बहुकालव्यापिनी । समुद्रस्य = अकूपारस्य, कल्लोलानाम् = लहरीणाम्, आघातस्य = ताडनस्य, सहम् = सोढुं क्षमम् । समुद्रान्तं व्याप्ता कीर्त्तिर्यस्येति वाच्योऽर्थः । आद्रियते = सत्करोति, पीनान् = स्थूलान् । कानिवेत्युपमिनोति । एवमन्यत्राप्युपमालङ्कारो द्रष्टव्यः । इभान् = गजान् । तुन्दिभान् = स्थूलोदरान् । भेकान् = मण्डूकान् । निर्विवेकान् = विचारशून्यान् । वृषदंशकान् = विडालान् । "विडालो मार्जारो वृषदंशक आखुभुगि"त्यमरः । कपटहिंसकान् = छद्महिंसालग्नान् । मार्जारा हि स्वं गोपित्वा मृगयां कुर्वन्ति । काकान् = करटान् । आस्वादित-दुर्विपाकान् = भुक्तमलान् । वलीमुखान् = वानरान् । चञ्चलमुखान् = चपलमुखान् । अस्थिरवाच इति यावत् । शृगालान् = क्रोष्टून् । कलिता = गृहीता, धूर्त्ततायाः = वञ्चनस्य, माला = परम्परा, यैस्तान् । द्विजिह्वान् =

वैराग्यकविता को सुनकर राग भी विरक्त हो जाय, और हमारी वीर रस की कविता सुनकर मरणासन्न व्यक्ति भी युद्ध करने को उठ बैठे। जिसके भाग्य में चिरस्थायिनी कीर्ति और समुद्र की लहरों की चोट को सहने वाला यश है, वही हमारा आदर करता है । हम ऐसे लोगों की सेवा में स्वप्न में भी नहीं रहते जो मछलियों की तरह मोटे, हाथियों की तरह तुन्दिल, मण्डूकों की भाँति विचारशून्य, बिल्ली की तरह छलपूर्वक हिंसा करने वाले, कौओं की तरह अभक्ष्यभक्षक, बन्दरों की तरह चपल मुख वाले, शृगालों की तरह धूर्त (धूर्तता की माला

सजीवानिवोपबर्हान्, आत्मस्तुतिमात्ररुचीन्, मूर्तिमत इवाभिमानान्, विद्या-शून्यान्, गुणि-गण-गुण-ग्रहणासमर्थान्, मिथ्या-मोद-रतान्, वाराङ्गना-व्रात-चरणपाताघात-सहान्, मद्य-कीटान्, द्यूतानन्यभक्तान्, नृपम्मन्यान् स्वप्नेऽपि समुपास्महे। दिल्लीश्वर-पद-विडम्बनमपि चाहं तादृशेष्वेवान्यतममवगत्य क्षणेनैव तत्सम्बन्ध-सूत्रं त्रोटयित्वा रसिकान्तरं कमपि वीरमन्विष्यन् दक्षिणां दिशं प्रस्थितोऽस्मि।

सर्पान्। द्विजिह्वान् = पिशुनान्। सजीवान् = प्राणयुतान्,उपबर्हानिवेत्युत्प्रेक्षा। यथा स्थूल उपबर्हो भवति तथा जडान् स्थूलकायानिति तात्पर्यम्। आत्मस्तुतिमात्ररुचीन् = स्वप्रशंसामात्राभिलाषान्। मूर्तिमतः = गृहीतदेहान्। अतिस्तब्धानित्यर्थः। गुणि-गण-गुण-ग्रहणासमर्थान् = कलावेदिव्रज-वैशिष्ट्य-बोध-विरहितान्। मिथ्यामोदे = मोहप्रायानन्दे, केवलं कल्पनयैव समुपस्थापिते, रतान् = संलग्नान्। वाराङ्गनाव्रातस्य = वेश्यानिकरस्य, चरणपाताघातम् = अङ्घ्रिनिपातताडनम्, सहन्ते ये तान्। मद्यकीटान् = आसवभृङ्गान्। अतिमात्रं सुरापायिन इति यावत्। आत्मानं नृपं मन्यन्त इति नृपम्मन्यास्तान्। स्वप्नेऽपि = जाग्रदवस्थायास्तु चर्चैव का, निद्रायामपि, नेदृशान् सेवामहे। रसिकान्तरम् = भिन्नं रसिकम्। न हि कवितानिवेदनमरसिकेषु युज्यते। तथा च प्राक्तनं पद्यम्—

"इतरपापफलानि निजेच्छया विलिखतानि सहे चतुरानन!।
अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख॥"

धारण करने वाले) सर्पों की तरह दो जीभ वाले (अर्थात् झूठ और सच दोनों बोलने वाले, चुगलखोर), सजीव तकिये से, केवल अपनी प्रशंसा में ही रुचि रखने वाले, मूर्तिमान् अभिमान् विद्याविहीन, गुणियों के गुणों को न समझने वाले, काल्पनिक आनन्द में ही रमण करने वाले, वेश्याओं के पादप्रहार को सहने-वाले, मदिराकीट और जुए के अनन्य भक्त हैं तथा अपने को राजा समझते हैं। मैं दिल्लीश्वर पद की विडम्बना करने वाले औरंगजेब को भी उक्त प्रकार के नृपाभिमानियों में से ही एक समझकर, तत्क्षण उससे सम्बन्ध सूत्र तोड़ कर किसी

पथि चामेर-देशाधीशेन बहुशः प्रार्थ्यमानोऽपि स तस्यैव दिल्ली-वलय-कलङ्कस्य लालाटिक इत्यवगत्य, शिववीर-कीर्त्तीश्च श्रावं श्रावं कर्ण-योराकृष्ट इव इतः समायातोऽस्मि, द्रक्ष्यामि किं भावि ?"—

—इति वक्तारं कमपि कविं त्यक्त-दिल्लीश-द्वारं निजं दिदृक्षु-मत्राऽऽगतमूरीकृत्य, पुनः परिक्रम्य, द्वार-मार्गेण मन्दिरं प्रविश्य, शिवं प्रणम्य, घण्टामाहत्य, बिल्व—दलमुत्थाप्य, नेत्रयोः संस्पृश्य शिखायां संस्थाप्य, मृत्तिका-शरावस्थं भस्मालिके विलिप्य, प्रद-क्षिणच्छलेन पान्थाध्युषित-प्रदेशमागत्य, तेनाऽऽलपन्तं शिवमन्दिरा-

---

आमेरदेशाधीशेन = जयपुराधीश्वरेण । अद्यतनं जयपुरराज्यं तदानीम् "आमेर" इति ख्यातमासीत् । "अम्बर" इत्यपि व्यवहारस्तत्र । लाला-टिकः = भालदर्शिसेवकतुल्यः । यथा कार्याकारिणः केवलं प्रभुभालावलोकमात्र-निरता भवन्ति कुत्सिता भृत्या एवमयमपि दिल्लीकलङ्कस्य क्रोधप्रसन्नताऽवधारणाय केवलं तदीयभालं समवलोकयति, न स्वतन्त्रतया किमपि विधातुं शक्नोति । सोऽयं दुर्वारः कलङ्को वज्रलेपायितो मानसिंहदुरन्वयजनुषां जयपुरीयाणां स्थास्य-त्याप्रलयम् ।

निजं दिदृक्षुम् = शिववीरदर्शनाभिलाषिणम् । "न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृ-नाम्" ति षष्ठीनिषेधः । शिवम् = शङ्करम् । आहत्य = ताडयित्वा । वादयित्वेति यावत् । भस्म = भसितम् । अलिके = ललाटे । "ललाटमलिकं गोधिरि" त्यमरः । आगन्तुकम् = प्राघुणिकम् ।

अन्य वीर रसिक को खोजता हुआ दक्षिण दिशा की ओर चल पड़ा । रास्ते में आमेर (आधुनिक जयपुर) के राजा ने बार-बार प्रार्थना की, पर उसे दिल्ली साम्राज्य के कलङ्क औरंगजेब का लालाटिक (भालदर्शी और असमर्थ सेवक) जानकर महाराज शिवाजी का यश सुनकर, उससे आकृष्ट होकर ही इधर आया हूँ, देखूँ क्या होता है ।" ऐसा कहने वाले किसी व्यक्ति को, दिल्लीश्वर औरंगजेब का दरबार छोड़कर, अपने (शिवाजी) को देखने के लिये यहाँ आया हुआ कोई कवि समझ कर, पुनः घूमकर, दरवाजे के रास्ते से मन्दिर में घुसकर, शिवमूर्ति को प्रणाम कर, घण्टा बजा कर, बिल्वपत्र उठा कर, आँखों से लगाकर, शिखा में

ध्यक्षं प्रणम्य, बद्धाञ्जलिरागन्तुकमपि—"कुतः श्रीमान्? कः श्रीमान्?" इति सादरं समपृच्छत्।

मन्दिराध्यक्षस्तु स्वरेण आकृत्या च तं परिचिन्वन्नपि तन्नियमं संस्मृत्य न तथाऽचेष्टत; यथा स विज्ञातः स्यादपरैः।

शिववीरस्तु तेन सह चिरमालप्य, तस्य वृत्तान्तमवस्थां प्रकृतिं चावगत्य, चिराय श्रुतचरं 'भूषण'कविरित्यभिधानं चोररीकृत्य "श्वो द्रष्टा भवान् शिवराजम्" इत्यभिधाय न्यवर्त्तिष्ट।

निवर्तमानश्च तेनापि "को भवान्?" इति पृष्टः "एतद्देशीयः कोऽपि वीरोऽस्मि" इत्युदतीतरत्।

परिचिन्वन् = शिववीरत्वेन जानन्।

प्रकृतिम् = स्वभावम्। अवगत्य = बुद्ध्वा। उररीकृत्य = स्वीकृत्य, ज्ञात्वेति यावत्। न्यवर्तिष्ट = निवृत्तोऽभूत्। गतवानित्यर्थः। वीरः = राजभटः। "सिपाही" इति हिन्दी। उदतीतरत् = उत्तरं दत्तवान्।

बाँध कर, मिट्टी के सकोरे में रखी भस्म को ललाट में लगाकर, प्रदक्षिणा के बहाने उस स्थल पर—जहाँ वह पथिक था—आकर, उस पथिक के साथ बातचीत करते हुए शिव मन्दिर के अध्यक्ष को प्रणाम कर, हाथ जोड़कर, आगन्तुक से भी सादर पूछा, "आप कहाँ से आये हैं और कौन हैं!"

मन्दिर के अध्यक्ष ने स्वर और आकृति से शिवाजी को पहचानते हुए भी उन (शिवाजी) के नियम की याद करके कोई ऐसी चेष्टा नहीं की जिससे अन्य लोग उन्हें (शिवाजी को) पहचान सकें।

शिवाजी ने उस पथिक के साथ काफी देर तक बातचीत करके, उसका वृत्तान्त, अवस्था और स्वभाव जानकर, और उसका नाम 'भूषण' कवि—जिसकी प्रसिद्धि उन्होंने बहुत दिनों से सुन रखी थी—जान कर "आप कल शिवाजी के दर्शन करें" ऐसा कह कर लौट पड़े। लौटते समय, भूषण कवि के "आप कौन हैं" यह पूछने पर, "इसी देश का एक वीर हूँ" यह उत्तर दिया।

प्रातरेव च नित्य-नियमान्निर्वर्त्य स्वेष्ट-जन-सहितः सभासंस्थ एव स्वभृत्येन भूषण-कविमाकारयत् ।

स तु वद्धमहोष्णीषः, पादाग्र–पर्य्यन्त–विलम्वमान–कञ्चुकः, नारिकेल–फल–सार--सहितं यज्ञोपवीत–युगलं हस्ते आदधानः द्वार-पाल–दर्शितेन पथा सभां प्रविश्य "विजयतां महाराजः"—इति सिंहगर्ज्जनमवधीरयता स्वरेणोच्चैरुच्चार्य स्वोपहारं महाराजहस्ते आर्पयत् ।

निर्द्दिष्टस्थान उपविश्य च, स एवायं पूर्वदृष्टो वीर इति निरीक्ष्य, "अहो ! वीरो वीरो वीरः । वीरमेवान्विष्यन् दिल्लीत इतो यावत् समायातोऽस्मि, वीरमेव च प्राप्तवानस्मि । विजयतां धर्मो-द्धारण-धीरः, सपत्नोत्सारण-समीरः, वीरो महाराज" इत्युदीर्य

नारिकेल-फलस्य सारेण = तत्त्वांशेन, "गरी का गोला" इति हिन्दी, सहितम् । आदधानः = धारयन् । स्वोपहारम् = स्वोपायनम् । आर्पयत् = आदरेण दत्तवान् । "ऋ गतिप्रापणयोरि"त्यस्माण्णिचि "अर्त्तिह्रीव्ली-रीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ्णावि"ति पुकि रूपम् । वीरो वीरो वीरः = सम्भ्रमेऽनेकशब्दोच्चारणमिति वहवः । सपत्नानाम् = शत्रूणाम्, "रिपौ वैरिसपत्नारिद्विपद्द्वेषणदुर्हृद" इत्यमरः । उत्सारणे = दूरीकरणे, समीरः =

प्रातःकाल ही नित्यकर्म से निवृत्त होकर, अपने सभासदों के साथ सभा में बैठे शिवाजी ने सभा में ही अपने सेवक से भूषण कवि को बुलवाया ।

वड़ी-सी पगड़ी वाँधे, पैरों तक लटकने वाला लम्वा कुर्ता पहने, हाथ में गरी का गोला और यज्ञोपवीत की जोड़ी लिये महाकवि भूषण ने द्वारपाल द्वारा दिखाये गये रास्ते से सभाभवन में प्रविष्ट होकर, सिंहगर्जन को भी तिरस्कृत कराने वाले गम्भीर स्वर से "महाराज की जय हो" यह कह कर अपना उपहार महाराज शिवाजी के हाथ में रख दिया ।

तदनन्तर दिखाये गये स्थान पर वैठ कर भूषण ने "यह तो वही पहले (कल) देखा हुआ वीर है" यह देखकर, "अहा वीर ! वीर !! वीर !!! वीर की खोज में ही दिल्ली से यहाँ तक आया और वीर से ही आ मिला । जय हो, धर्म

किञ्चित् स्मयमानस्य महाराजस्य मुखमवलोकयंस्तत्प्रशंसायां वीर-रसमयीं कवितामेकामपठत् ।

महाराजस्तु "साधु साधु" इति व्याहृत्य, पुनः पठितुमाज्ञप्त-वान् । पठितवति च तस्मिन् सर्वेषु प्रसन्नेषु पुनरप्यादिशत् । इत्येवं विंशतिवारं तेन सा व्रज–भाषामयी 'कवित्वकाम'नामिका वृत्ति-रपाठि । महाराजेन च तस्मै गजानां विंशतिर्वितीर्णा-इत्यद्यापि प्रसिद्धं कविता-रसिकानां मण्डले ।

तदेव च दिनमारभ्य तेनभूषण-कविः स्व-सभायां संस्थापितः ।

अथ दृश्यतां ततः शास्तिखानस्य काऽवस्थेति ।

अस्तमिते भगवति मरीचिमालिनि, अन्धकारेण व्याप्तासु हरित्सु,

वायुः । **स्मयमानस्य** = ईषद्धास्यनिरतस्य । **व्रजभाषामयी** = व्रजभाषायां निर्मिता । तुलसीदासजन्मनः पूर्वं व्रजभाषैव कविताभाषात्वेन गणिता । बहोः कालादनन्तरमपि तस्यास्तद् गौरवं सुरक्षितमेवाभवत् । अधुना तु प्रायो हिन्द्यामेव कवितां कुर्वन्ति । **कवित्वकामनामिका** = लोके "कवित्त" इत्यपभ्रंशतया ख्याता । **वृत्तिः** = छन्दः । **विंशतिः**, "विंशत्याद्याः सदैकत्वे सर्वाः संख्येय-संख्ययोरि" त्यमरः । गजशब्दस्य प्रथमान्तत्वेऽपि गजा विंशतिरित्येव । **अस्तमिते** = अस्ताचलं गते । **व्याप्तासु** = सङ्कुलासु । **हरित्सु** = दिक्षु ।

के उद्धार में धीर, शत्रुओं को उखाड़ने में समीर के समान महाराज शिवाजी की जय हो" यह कह कर, कुछ मुस्कराते हुए महाराज शिवाजी के मुख की ओर देखते हुए उनकी प्रशंसामें एक वीररसमयी कविता पढ़ी ।

महाराज ने "साधु साधु" कह कर पुनः पढ़ने की आज्ञा दी । भूषण के पढ़ने पर तथा सबके प्रसन्न होने पर पुन आज्ञा दी । इस प्रकार भूषण ने बीस बार व्रजभाषा का कवित्त सुनाया । महाराज ने उसे बीस हाथी दिये, यह बात आज भी कविता-रसिकों की मण्डली में प्रसिद्ध है । उसी दिन से महाराज ने भूषण कवि को अपनी सभा में रख लिया ।

अब देखें, उधर शाइस्ता खाँ की क्या हालत है ।

भगवान् सूर्य अस्ताचल की ओर गमन कर चुके है, दिशाओं में अन्धकार

किञ्चित् किञ्चिच्चमत्कुर्वत्सु नक्षत्रेषु, शिववीरेणाध्युषितचरस्य महाप्रासादस्याट्टालिकायामात्मीयैः शास्तिखानः समुपविष्टोऽस्ति। परितश्चानेके योद्धारो मौद्गलाः पर्यवातिष्ठन्त। परितो दीपमाला चकास्ति। पुष्पवाटिकाभ्यश्च प्रस्फुटदतिमुक्त-कुसुमसौरभमादाय धीरः समीरः प्रवहति। शास्तिखानस्तु महदुपधानं पृष्ठेनाऽऽक्रम्य, सम्मुखस्थ-रत्न--जटित-धूमपान-यन्त्र-नलिकां हस्ते दधन्, मध्ये मध्ये च यूथिका-कोरक-पङ्क्ति-परिवेष्टित-नलिकाग्रतः सगुडगुडाशब्दं ताम्रकधूममाकर्षन्, पार्श्वस्थ-ताम्बूलवाहकहस्ताद् वीटिकामपि गृह्णन्, उशीर-

---

चमत्कुर्वत्सु = प्रभां वितरत्सु। नक्षत्रेषु = उडुगणेषु। महाप्रासादस्य = विशालराजमन्दिरस्य। अट्टालिकायाम् = तलिन्याम्, "अटारी" इति हिन्दी। आत्मीयैः = स्वीयैः। मौद्गलाः = मौद्गल्याः। "मोगल" इति हिन्दी। पूर्व-प्रदर्शिततर्करत्नमते मौद्गल्यगोत्रा इमे क्षत्रिया इति मन्तव्यम्। साहित्याचार्य-रामावतारशर्मादयोऽप्येतत्पथपथिका इति न विस्मरणीयम्। पर्यवातिष्ठन्त= परितः स्थिता अभूवन्। चकास्ति = दीप्यते। प्रस्फुटताम् = विकसताम्, अतिमुक्तकुसुमानाम् = माधवीपुष्पाणाम्, सौरभम् = शोभनं गन्धम्। सम्मुखस्थस्य = पुरःस्थापितस्य, रत्नजटितस्य = हीरकादिखचितस्य धूमपानयन्त्रस्य = "हुक्का" इति ख्यातस्य, नलिकाम् = "नली" इति लोके ख्याताम्। यूथिकाकोरकाणाम् = माधवीकलिकानाम्, पङ्क्तिभिः = राजिभिः, परिवेष्टितायाः = सर्वतो भूषितायाः, नलिकाया अग्रतः। "गुडगुडा" इत्यनुक्रियमाणशब्दः गुडगुडाशब्दः, तेन सहितम्। ताम्रकस्य = "तम्बाकू"

फैल गया है, तारे कुछ-कुछ-टिमटिमाने लगे हैं। शाइस्ता खाँ उसी राजप्रासाद में, जिसमें पहले महाराज शिवाजी रहा करते थे, अपने मुसाहिबों के साथ बैठा है। चारों ओर अनेक योद्धा मुग़ल बैठे हैं। चारों ओर दीपक जल रहे हैं। फुलवाड़ी से, खिलते हुए माधवी पुष्पों की सुगन्ध लेकर, मन्द-मन्द वायु चल रही है। शाइस्ता खाँ एक बड़े मसनद पर पीठ रखे, सामने रखे हुए रत्नजटित हुक्के की नली को हाथ में लिये बैठा है। वह बीच-बीच में मागधी पुष्प की कलियोंकी मालासे विभूषित उस नली के अग्रभाग से गुड़गुड़ शब्द

जल–सिक्त–व्यजन-वातैर्वीज्यमान:, परित: संस्थापित-सतोय–भाजनस्थ–कुसुम–स्तबकै: सुरभीक्रियमाण: केनचन कार्यवाहेण सहैवमालपत् ।

शास्तिखान:—[मुखात् ताम्रकधूमं फूत्कुर्वन्] बदरदीन ! कथय कीदृशस्ते प्रवन्ध: पुण्यनगरे ?

बदरदीन:—[करौ सम्पुटीकृत्य] चमूपते, सर्वं सुष्ठु ! प्रतिशृङ्गाटकं प्रतिविपणि प्रतिगोपुरं प्रतिपल्लि च दोधूयन्ते दिल्लीश्वरस्य विजय--पताका: । विनाऽऽदेशं न कश्चिद् रुष्टतम-सोदर्योऽपि

इति ख्यातस्य, धूमम् । **पार्श्वस्थ:** = निकटे तिष्ठन्, य: **ताम्बूलवाहक:** तद्धस्तात् **वीटिकाम्** = ताम्बूलीदलीम् । "वीड़ा" इति हिन्दी । **उशीरजलेन** = नलदाम्भसा **सिक्तस्य** = आर्द्रीकृतस्य, व्यजनस्य वातै: । ग्रीष्मे शैत्यपारिमल्याधानार्थं पानीये उशीरं ('खस' इति भाषायां) निक्षिपन्ति जना: । **वीज्यमान:** = सेव्यमान:, **परित: संस्थापितेषु** = सर्वतो निहितेषु **सतोयेषु** = पानीययुतेषु, **भाजनेषु** = पात्रेषु, तिष्ठद्भि: **कुसुमस्तवकै:** = पुष्पगुच्छै:, "गुलदस्ता" इति ख्यातै: । **कार्यवाहेण** = कृत्यसम्पादकेन । अनुचरेणेति यावत् ।

वदरदीन ! सम्बुद्ध्यन्तम् । "वदरुद्दीन" इति लोकख्यातं तन्नाम ।

शृङ्गाटकं शृङ्गाटकं प्रतीति प्रतिशृङ्गाटकम् । "अव्ययं विभक्ती"त्यादिना

करते हुए, तम्वाकू का धुआँ खींचता है और वीच-वीच में पास में खड़े ताम्वूलवाहक के हाथ से पान का वीड़ा भी ले लेता है। उसे खस के जल से भिगोये गये पंखों की हवा और चारों ओर रखे जलयुक्त पात्रों में लगे गुलदस्तों की सुगन्ध मिल रही है। वह अपने किसी कार्यकर्ता से इस प्रकार वातचीत कर रहा है—

शाइस्ता खाँ—(मुख से तम्वाकू का धुआँ निकालता हुआ) वदरुद्दीन ! कहो, पना नगर में तुम्हारा कैसा प्रवन्ध है ?

वदरुद्दीन—(हाथ जोड़ कर) सेनापति ! सव ठीक है। प्रत्येक चौराहे, प्रत्येक वाजार, नगर के प्रत्येक वहिर्द्वार, और प्रत्येक गाँव में दिल्लीपति औरंगजेब की विजयपताकाएँ फहरा रही हैं। विना अनुमति के

शक्तो गोपुरावग्रहणीं पदा स्प्रष्टुमुल्लङ्घितुं वा। औद्वाहिक--वर-यात्रार्थं वा, मृतकोद्वहन--निमित्तं वा, श्रीमदादेश-मुद्रापत्रं विना ससमारोहं न केऽपि पारयन्ति सर्पितुम्। साधारणतोऽपि च द्वित्राधिका न सह पर्य्यटितुं शक्नुवन्ति जनाः। प्रतिप्रत्यूषं प्रत्यस्तमनवेलं प्रतिमध्याह्नं प्रतिनिशीथं च मज्जित-स्थानेभ्यः समुत्थिता मौलिवि-वर्य्यैर्निषाद-स्वरेणोच्चैरुच्चारिता धमद्धमद्ध-

---

वीप्सायामव्ययीभावः। एवमग्रेऽपि प्रतिविपण्यादौ। **शृङ्गाटकम्** = चतुष्पथम्। "चौराहा" इति हिन्दी। **विपणिः** = पण्यवीथिका, "बाजार" इति हिन्दी। **गोपुरम्** = पुरद्वारम्, "पुरद्वारं तु गोपुरमि"त्यमरः। **पल्लिः** = कुटी। आभीरादिगेहमिति यावत्। "कुटीकुग्रामयो पल्लिरि" ति शाश्वतः। **दोधूयन्ते** = अतिशयेन कम्पन्ते। **रुष्टतमसोदर्यः** = "रुस्तम" इति ख्यातस्य भ्राता। महान् वलशाली रुस्तम-नामा कश्चिद् यवनः पूर्वमासीत्। **अवग्रहणीम्** = देहलीम्। **पदा** = अङ्घ्रिणा। **उल्लङ्घितुम्** = अतिक्रमितुम्। **औद्वाहिकी** = विवाहसम्बन्धिनी या **वरयात्रा** = "बारात" इति ख्याता, तस्यै। **मृतकोद्वहननिमित्तम्** = शववहन-संस्कारहेतुकम्। **श्रीमदादेशस्य** = भवदाज्ञायाः, **मुद्रापत्रम्** = मुद्राङ्कितं पत्रम्। **ससमारोहं** = जनसम्मर्देन सहितं यथा स्यात् तथा **सर्पितुम्** = गन्तुम्। **साधारणतः** = सामान्यरूपेण। निःसमारोहमिति यावत्। द्वौ वा त्रयो वा द्वित्राः, तेभ्योऽधिकाः। चत्वारस्तदधिका वा जना न मिथः संयुज्य वार्त्तालापादिकं कुर्य्युरति साम्प्रतिक-भारत-विधान-शास्त्रीय (ताजीरात हिन्द) चतुश्चत्वारिंशदधिकशत-तम—(१४४)धाराया अर्थः। स यवनकालसमारब्ध एवेति हृदयम्। **मज्जित-स्थानेभ्यः** = "मसजिद" नामकभवनेभ्यः, **मौलौ** = शिरसि, विरिव पक्षीव, येषां

कोई रुस्तम का भाई भी, नगर के बाहरी दरवाजे की देहली को पैर से छू या लाँघ नहीं सकता। आपकी अनुमति की मुहर से चिह्नित आज्ञापत्र के बिना कोई विवाह की वारात या मृतक की अर्थी भी समारोहपूर्वक नहीं ले जा सकता। वैसे भी दो-तीन से अधिक लोग साथ-साथ नहीं घूम सकते। प्रतिदिन सुवह, शाम, दोपहर और आधीरात को मस्जिदों से उठने वाली, मौलवियों द्वारा निषाद स्वर से जोर-जोर से की गयी, धमद्-

मकितदिगन्तराला ध्वन्यन्तर-निपातनं "अल्ला, अल्ला, अल्ला"-इति ध्वनयः प्रतिगृहम्, प्रतिप्रासादम्, प्रतिहट्टम् प्रत्यट्टम्, प्रत्यङ्गणम् प्रतिशालम्, प्रतितडागम्, प्रत्यारामं चोत्थितैः प्रतिशब्दैः सहस्र-गुणभूता नभोमण्डलं तरङ्गयन्ति। न जानीमो वराकाः काका इव कुत उड्डीना उदूढ-भ्राष्ट्रा इव दुःखदन्दह्यमान-हृदया महाराष्ट्राः।

शास्तिखानः—[प्रसन्नानां स्मयमानानां पार्श्वस्थानां मुखान्यवलोक्य, सकपट-हासम्] अहो ! अहो ! एवं किम् ?

बदरदीनः—[सादरम्] श्रीमन् ! एवमेव ! हता हता इति हता हिन्दु-हतकाः।

ते मौलिवयः = "मौलिवी" इति ख्याताः, तेषां वर्यैः = श्रेष्ठैः। ध्वन्यन्तर-निपातनम् = इतरनादमभिभूय। क्रियाविशेषणम्। धमद्धमदितिध्वन्यनुकरणम्। अल्ला = मातेत्यर्थः संस्कृतशब्दस्यास्य। यवनाः सर्वेश्वर वाचकं मन्यन्ते। सागर-पारस्थिताः क्षत्रिया महामायाया मन्तार आसन्निति तर्करत्नमतानुयायिनः। अट्टम्=अट्टालिका। प्रतिशब्दैः=प्रतिध्वनिभिः। नभोमण्डलं तरङ्गयन्ति= व्याप्नुवन्ति। उदूढभ्राष्ट्राः=अतितप्ताम्वरीषाणि। "क्लीवेऽम्बरीषं भ्राष्ट्रो ना" इत्यमरः। दुःखेन = पराजयप्राप्तिखेदेन, दन्दह्यमानम् = अतिशयेन दह्यमानम्, हृदयं येषां ते।

धमद् शब्द से दिशाओं को गूँजाने वाली, अन्य ध्वनियों को अभिभूत कर देने वाली, "अल्ला, अल्ला, अल्ला" की ध्वनियाँ, प्रत्येक घर, प्रत्येक महल, प्रत्येक बाजार, प्रत्येक अट्टालिका, प्रत्येक आंगन, प्रत्येक शाला, प्रत्येक तालाब और प्रत्येक उपवन से उठने वाली प्रतिध्वनियों से हजारगुनी होकर आकाशमण्डल को तरङ्गित करती हैं। भट्टी के समान जलते हृदय वाले बेचारे दुःखसन्तप्त मराठे कौओं की तरह न जाने कहाँ भाग गये हैं।

शाइस्ता खाँ—(पास में बैठे प्रसन्न तथा मुस्कराते हुए लोगों के मुख की ओर देख कर कपट की हँसी से) अहा हा, क्या—ऐसा है ?

बदरुद्दीन—(आदरपूर्वक) हाँ हुजूर, ऐसा ही है। इन गये-गुज़रे हिन्दू काफ़िरों को मरा ही समझिये।

शास्तिखानः—अथ शिव-वियोगेन प्रजाः सीदन्ति प्रसीदन्ति वा।

वदरदीनः—भगवन्! सर्वोऽप्यत्यानन्दितः समालोक्यते पुण्य-नगर-निवासी जनः। सायंसमय आसन्न एव जलैः सिक्तासु रथ्यासु क्षणे क्षणे सखडखडाशब्दं पुष्यरथाः प्रधावन्ति। बहव एतद्देशीया अन्यदेशीयाश्च स्वच्छ-परिधानाः सुसूक्ष्म-वसनाङ्ग-रक्षिकोत्तरीयाः वीटिका-राग-रञ्जिताधराः सुवर्णादि-खचित-विविध-यष्टिकान्दोलन-चञ्चल-कराः प्रतोलीषु पर्यटन्ति। केचिद् "उत्तरीयाणि भोः! उत्तरीयाणि, नारङ्गाणि नारङ्गाणि, रम्भा रम्भाः, व्यजनानि व्यजनानि, मालिका मालिकाः, पाचकं पाचकम्, मुरलिका मुरलिकाः, क्रीडनकानि क्रीडनकानि, मोदका मोदकाः, परिमलं परिमलम्"—इति विविधभङ्गीभिः सुस्वरं स्व-स्व-वस्तूनि विक्रीणते।

सीदन्ति = क्लेशमनुभवन्ति। प्रसीदन्ति = प्रसन्नतामनुभवन्ति। पुष्यरथाः = उत्सवादिषु सुखभ्रमणाय यानानि। "असौ पुष्यरथश्चक्रयानं न समराय यदि"त्यमरः। प्रतोलीषु = रथ्यासु। पाचकम् = कोष्ठ-शोधकमौषधम्। विक्रेतारश्चतुष्पथादिषु प्रायः कदलीनागरङ्गादिपण्यवस्तुघोषण-पूर्वं मिलन्तीति ननु दृष्टिगोचरम्। मुरलिका = वंश्यः। क्रीडनकानि =

शाइस्ता खाँ—हाँ तो शिवाजी के वियोग से प्रजा दुःखी है या प्रसन्न?

वदरुद्दीन—हुजूर! पूनानिवासी प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्न दीख पड़ता है। शाम होते ही पानी छिड़की हुई सड़कों पर क्षण-क्षण भर में पुष्यरथ (बग्घियाँ) खड़-खड़ शब्द करते हुए दौड़ने लगते हैं। साफ सुथरे वस्त्र पहने, महीन कपड़ों के कुर्ते और उत्तरीय धारण किये, पान की पीक से लाल हो रहे अधरोष्ठ वाले, चञ्चल हाथों में स्वर्ण आदि जटित विभिन्न छड़ियाँ लेकर उन्हें हिलाने वाले, इस प्रदेश तथा अन्य प्रदेशों के भी अनेक व्यक्ति सड़कों पर घूमने लगते हैं। कुछ "उत्तरीय लो उत्तरीय, नारङ्गी लो नारङ्गी, केले लो केले, पंखे लो पंखे, माला लो माला, पाचक चूर्ण लो पाचक चूर्ण, बाँसुरी लो बाँसुरी, खिलौने लो खिलौने, लड्डू लो लड्डू, इत्र लो इत्र," इस प्रकार नाना प्रकार की भाव-

शास्त०——तत् किं शिवसहचरा महाराष्ट्रा अपि प्रसादमेवाऽऽसादयन्ति, न तु विषादम् ?

बद०—भगवन् ! स्यान्नाम विषादस्तेषां हृदये, किन्तु बहिः प्रसादमेव दर्शयन्ति ।

इत्याकलय्य अन्येऽपि श्लाघकाः--"भगवन् ! को नाम जिजीविषुः प्रसादं न दर्शयेत् ? प्रकटिक-शिव-वियोग-विषादस्तु बलाद् विषाद एव क्रियेत"--इत्याहुः ।

आसीत् तत्रैवोपविष्ट एको वृद्धो वीरश्चान्द्रखाननामा । स तु केवलं रोचकमिदं मिथ्या-प्रशंसनमाकर्ण्य, कर्णयोस्तोद्यमान इव ग्रीवामाकुञ्च्य, भ्रू-युगं सन्नमय्य, ओष्ठ-युगं कम्पयन्, मनस्येव——

यावत् । आपानगोष्ठ्यः = मद्यपानसभाः । वारवधूनाम् = वेश्यानाम्, तौर्यत्रिकम् = नृत्यगीतम् ।

जिजीविषुः=जीवितुमिच्छुः । प्रकटितः शिववियोगस्य विषादः=क्लेशः येन सः । विषमत्तीति विषादः=विषभक्षी । हन्येतास्माभिरिति तात्पर्यम् ।

चान्द्रखान-नामा = "चाँद खाँ" इति नाम यस्य सः । तोद्यमानः = कण्टकादिना वेद्धयमानः । भ्रूयुगम् = भ्रूयुगलम् । सह युञ्जते = संयुक्ता

क्या कहूँ ? कहीं मद्यपानगोष्ठियाँ, कहीं मृदङ्ग आदि की ध्वनियाँ, कहीं जुए का कोलाहल, कहीं वेश्याओं का नाचगाना, सब आनन्द ही आनन्द दिखाई देता है ।

शाइस्ता खाँ——तो क्या शिवाजी के साथी मराठे भी खिन्न न होकर, प्रसन्न ही हो रहे हैं ?

बदरुद्दीन——हुजूर, वे दिल में भले ही सञ्जीदा हों पर बाहर तो खुशी ही प्रकट करते हैं ।

यह सुनकर और भी खुशामदी बोल पड़े—"हुजूर, जिन्दगी चाहने वाला कौन सा ऐसा आदमी है जो प्रसन्नता न प्रकट करेगा । जो शिवाजी के वियोग के विषाद (दुःख) को प्रकट करेगा, उसे बलपूर्वक विषाद (विषभक्षक) ही बना दिया जायगा (अर्थात् मार डाला जायगा) ।

वहीं चाँद खाँ नाम का एक बूढ़ा वीर बैठा था । इस रोचक झूठी

"धिगेतांश्चाटुकार-हतकान्, ये प्रशंसाभिरेव प्रभूनन्धयन्ति । प्रतिक्षणमधिकं जाज्वल्यते शिव-तिरस्कार-जन्या ज्वाला महाराष्ट्राणां हृदये । गानेषु पानेषु नृत्येषु कुकृत्येषु चास्मत्सजातीया एव सह युञ्जते; न तु महाराष्ट्र-सिंहाः । यावदारभ्य चिक्कनदुर्गोऽस्माभिर्गृहीतस्तावदारभ्य महाराष्ट्र-बालकोऽप्यस्मांश्चिचर्वयिषुरिव सभ्रुकुटि पश्यति न त्वधीन इति बिभेति । पर्वत-प्रायस्य कोङ्कणदेशस्य केशरिण एते । को जानीते कदाऽऽक्रम्यास्मान् कर्तयित्वा क्रव्यादेभ्यो विकिरिष्यन्ति, परन्तु कृतघ्ना एते मिथ्या-प्रलापैरेव चमूपतिं वञ्चयन्ति"–इत्यालपत् ।

अथ पुनरारब्धवानालपितुं शास्तिखानः ।

भवन्ति । सम्मिलन्तीति यावत् । चिक्कनदुर्गः = "चाकन दुर्ग" इति प्रसिद्धः । चिचर्वयिषुः = चर्वयितुमिच्छुः । कर्तयित्वा = छित्वा । क्रव्यादेभ्यः = मांसभक्षकेभ्यः सिंहादिभ्यः । शतघ्न्यः = तोफ ।

तारीफ को सुनकर, मानों उसके कानों में पीड़ा होने लगी हो इस प्रकार गर्दन सिकोड़ कर, भौंहें नीची कर, अवरोष्ठों को कँपाता हुआ, वह मन ही मन कहने लगा—"इन गये-गुजरे खुशामदियों को धिक्कार है जो झूठी तारीफों से मालिक को इस प्रकार अन्धा बनाए दे रहे हैं । मराठों के हृदय में शिवाजी के अपमान से उत्पन्न होने वाली ज्वाला क्षण-प्रतिक्षण बढ़ती ही जा रही है । गान, पान, नाच और कुकृत्यों में तो हमारी ही जाति के लोग इकठ्ठे होते हैं, न कि मराठे वीर । जब से हमने 'चाकन' दुर्ग छीना है तब से मराठा बच्चा भी, "मैं मुगलों के अधीन हूँ" यह सोचकर डरने के बजाय, हम लोगों की ओर क्रोध से भौंह तान कर ही देखता है, मानों हमें चबा जाना चाहता हो । ये कोंकण के पहाड़ी प्रदेश के शेर ही हैं । कौन जाने कब आक्रमण कर के काट-काट कर मांसभक्षी सिंहादिकों के आगे फेंक दें । परन्तु ये कृतघ्न खुशामदी झूठी बकवादों से सेनापति को धोखा दे रहे हैं, ठग रहे हैं ।"

फिर शाइस्ता खाँ ने इस प्रकार बातचीत शुरू की ।

शा०—अथ कः प्रबन्धश्चिक्कनदुर्गस्य ?

ब०—श्रीमन् ! तत्रापि परितो नीलध्वजाः समुद्धूयन्ते । यथा-स्थानं शतघ्न्यः संस्थापिताः, द्वारेषु च भटा नियुक्ताः सन्ति, अन्तश्च सानन्दं सेना निवसति ।

चान्द्रखानः—[मनस्येव] सानन्दम्, न तु सतर्कम् ?

शास्ति०—[स्वयं किञ्चिद् विचार्यैव, सोत्प्रासम्] सम्मुखयुद्धं प्राप्येत चेद् विजये एव को विलम्बः ?

तावत् तत्रस्थः कश्चिच्चाटुकारो महामदगणिनामा सगात्रविक्षेपं प्रावोचत्—

भगवन् ! महाराष्ट्राः स्वप्नेऽपि न पारयन्ति सम्मुखं योद्धुम्, तथा साहसं कलयितुं च ।

सोत्प्रासम् = सोल्लुण्ठनम् । सोपहासमिति यावत् ।

महामदगणि-नामा = मुहम्मदगनी-नामधेयः । सगात्रविक्षेपम् = शरीरं प्रकम्प्य । हर्षातिरेकादिदम् ।

शाइस्ता खाँ—अच्छा, चाकन दुर्ग का क्या प्रवन्ध है ?

वदरुद्दीन—हुजूर, वहाँ भी चारों ओर नीले झण्डे फहरा रहे हैं । यथोचित स्थानों पर तोपें रखी हैं, द्वारों पर योद्धा नियुक्त हैं और अन्दर सेना आनन्द-पूर्वक रह रही है ।

चाँद खाँ—(मन ही में) आनन्दपूर्वक, न कि सतर्कतापूर्वक ।

शाइस्ता खाँ—(स्वयं मानो कुछ सोच कर, हँसता हुआ) यदि सम्मुख युद्ध करने को मिल जाय, तव तो हमारी विजय में कुछ भी देर नहीं है ।

इसी वीच वहाँ बैठा हुआ मुहम्मद गनी नाम का कोई खुशामदी प्रसन्नता से शरीर हिलाता हुआ बोला—“हुजूर ! मराठे सपने में भी सम्मुख युद्ध नहीं कर सकते, तथा साहस भी नहीं कर सकते ।”

चान्द्रखानस्तु असहमानः शनैरवोचत्—अहं तु मन्ये, ते उभयं कर्तुं पारयन्ति ।

शास्ति०—कथम् ?

चा०—किं न स्मर्यते चमूपति-चरणैर्यद् गत-वत्सरे चिक्कनदुर्गं प्रविश्याऽऽस्माकीनसेनां ते कथमिव वीरतया साहसेन प्राबल्येन च पश्यतामेवास्मदीय—वीरम्मन्यानां खण्डशः समकार्षुः ? किं नैतत् सम्मुखं युद्धम् ? न वैतत् साहसम् ? भगवन् ! अहं तैः सह युद्धे बहुवारमासम् । किन्तु समसेनैरपि मौद्गलैर्युद्धे प्रवृत्ते तेषामेव ध्रुवो जयः—इति मे निश्चयः ।

महामदगणिः—[चमूपतेश्चान्द्रस्य च मुखमालोक्य] आः !! तत् किं वयं दुर्बला वा, असाहसा वा, अचतुरा वा, कातरा वा ? यत् समबलानामपि तेषामेव जयो भवेदिति ।

चा०—मैवम्, किन्त्वल्पाऽपि परिपन्थि-सेना द्वैगुण्येनैव आक्रम-

चाँद खाँ से न सहा गया, वह धीरे से बोला—"मैं समझता हूँ वे दोनों कर सकते हैं, सम्मुख युद्ध भी और साहस भी ।"

शाइस्ता खाँ—कैसे ?

चाँद खाँ—क्या हुजूर को याद नहीं है कि पिछले साल मराठों ने चाकन दुर्ग में प्रवेश कर, अपने को वीर मानने वाले हमारे सिपाहियों के देखते-ही-देखते, किस प्रकार वीरता, साहस और प्रबलता से हमारी फ़ौज के टुकड़े-टुकड़े कर डाले थे ? क्या यह सम्मुख युद्ध नहीं है ? अथवा यह साहस नहीं है ? हुजूर, मैं मराठों के साथ युद्ध में कई बार रहा हूँ, किन्तु मराठों की सेना के बराबर मुगल सेना होने पर भी युद्ध में मराठों की ही जीत तय है, ऐसा मेरा पक्का विश्वास है ।

मुहम्मद गनी—(शाइस्ता खाँ और चाँद खाँ का मुँह देखकर) अरे, तो क्या हम दुर्बल हैं, साहसहीन हैं, डरपोक हैं, या हम में चालाकी या वीरता नहीं जो समान सेना होने पर भी उन्हीं की जीत होगी ?

चाँद खाँ—नहीं, यह बात नहीं है । फिर भी, हमारा अभ्यास थोड़ी सी

णीया--इत्येषोऽस्माकमभ्यासः। तेषां च द्विगुणाऽपि चतुर्गुणाऽपि च शत्रुसेना कतिपयैरेव सादिभिर्योद्धव्या, निरोद्धव्येति च विलक्षणो वीर-स्वभावः।

शा०–[धूममाकृष्य हसित्वेव] चान्द्रखानो वयोवृद्ध इति साम्प्रतं पार्वतेभ्य उन्दुरुभ्योऽपि बिभेति। (चान्द्रस्तु कोष्ण-किरात-स्वरसमिव क्रोधमवगीर्य तूष्णीक एव तस्थौ)

महामदगणिः–आम्, आम्, आम्, सम्यगाज्ञप्तमार्यैः। उन्दुरवयैं इवैव ते गिरि-कुहरेषु निवसन्ति।

बद०—हुं हुं हुम्, अन्धकारेषु बहिर्भवन्ति, ताड्यमानाश्च पलायमानाः पुनः कुहराणि श्रयन्ते।

चान्द्र०—आम् सत्यम्! किन्तु उन्दुरव एतेऽस्मद्ध्वजान् कञ्चुकान् उष्णीषांश्च खण्डशो न कुर्य्युः, अस्मदालयभित्तिकातलानि

पार्वतेभ्यः = पर्वतीयेभ्यः। उन्दुरुभ्यः = मूषकेभ्य,। "उन्दुरुर्मूषकोऽप्याखुरि" त्यमरः। कोष्णः = ईषदुष्णः, किरातस्वरसः = भूनिम्बकषायः, तमिव। "चिरायते का काढ़ा" इति हिन्दी। अतितिक्तोऽयम्।

भी शत्रुओं की सेना पर दुगुनी सेना से आक्रमण करने का है और उनका दुगुनी और चौगुनी सेना से भी कुछ ही घुड़सवारों से भिड़ जाने और रोक लेने का अद्भुत वीरस्वभाव है।

शाइस्ता खाँ--(धुआँ खींचकर, हँस कर) चाँद खाँ बुड्ढा हो गया है इसलिए अब पहाड़ी चूहों से भी डरने लगा है। (चाँद खाँ गरम चिरायते के काढ़े की तरह क्रोध पीकर चुपचाप बैठा रहा)।

मुहम्मद गनी—जी हाँ, जी हाँ, जी हाँ, हुजूर ने ठीक फ़रमाया। ये चूहों की तरह ही पहाड़ों की खोहों में रहते हैं।

बदरुद्दीन—हूँ, हूँ, हूँ, अँधेरे में बाहर निकलते हैं और पीटे जाने पर फिर भाग कर बिलों में घुस जाते हैं।

चाँद खाँ--हाँ, सच है। किन्तु ये चूहे कहीं हमारे झंडों, कुर्तों और पगड़ियों

जर्जरितानि न विदध्युः, पुण्यनगर--बहिःप्रदेशादेतत्पर्य्यन्तं चान्तरन्तरेव महागर्तं विधाय, अकस्मान्न पातयेयुः ।

शा०—इह बहवो यवन–बिडालाः सन्ति, न भयमुन्दुरुभ्यः ।

ततः सर्वेऽपि चाटुकाराः सकरतल–ध्वनि अहसन्, चाटुकारा एव च विजिग्यिरे ।

ततश्चिरं यावद् महाराष्ट्र-भटैः सह कथं योद्धव्यमित्येव विचारो जातः । किन्तु चिक्कनदुर्ग--जय--समये महता कष्टेन महाराष्ट्राः पराङ्मुखीकृताः--इति दुर्गयुद्धायानुत्सहमानः शास्तिखानः प्रावोचत्——

पर्वतमयोऽयं समन्ताद् दुर्गमयः कोङ्कणदेशः । तदेकैकं दुर्गजयोद्योगः क्रियेत चेत्, "पादाङ्गुष्ठ--शिरीषाग्निः कदा मौलिमवाप्स्यति ?–" इति प्रतीक्षा विडम्बना स्यात् । तस्मात् तिष्ठन्तु नाम

विजिग्यिरे = विजयं प्राप्तवन्तः । "विपराभ्यां जेरि" त्यात्मनेपदम् ।
'पादाङ्गुष्ठशिरीषाग्निः कदा मौलिमवाप्स्यति ?' लोकोक्तिः । एकस्तु पादाङ्गुष्ठतले विद्यमानः सोऽपि च शिरीषाग्निः, तस्य सार्धत्रिहस्तोर्ध्व-

---

को टुकड़े-टुकड़े न कर डालें, हमारे घरों की दीवारों की नींव जर्जर न कर दें, पूना के बाहर वाले प्रदेश से लेकर यहाँ तक अन्दर ही अन्दर खोखला बनाकर कहीं एकाएक गिरा न दें ।

शाइस्ता खाँ—यहाँ बहुत-से यवन-योद्धा रूप विडाल रहते हैं, इसलिये चूहों से कोई डर नहीं है (यह सुनकर सभी चापलूस ताली वजाकर हँस पड़े, और जीत चापलूसों की ही हुई ।)

फिर देर तक यही विचार होता रहा कि मराठे सिपाहियों से कैसे लड़ना चाहिये । किन्तु चाकन दुर्ग की विजय के समय मराठों को बड़ी मुश्किल से भगाया जा सका था यह सोचकर, दुर्गयुद्ध के लिये अनिच्छुक शाइस्ता खाँ ने कहा—–कोंकण प्रदेश पर्वतवहुल है और इसके चारों ही ओर किले हैं । यदि एक-एक किला जीतने का प्रयत्न किया जायगा तो इसमें काफी समय लगेगा, तव तक शिवाजी को जीतने की प्रतीक्षा विडम्बना ही होगी । पैर के अंगूठे के नीचे विद्यमान शिरीष-पुष्पों की अग्नि सिर तक कब

दुर्ग्गेषु कारागारेषु निगृहीता इव महाराष्ट्रा एव। अस्माभिस्तु साम्मुखीन–युद्धार्थमेव यतनीयम्। चान्द्रखानस्तु एतद्‌विषयेषु अत्यन्त सप्रतिभ आसीत्। स तु किञ्चिद् विचार्य्येव करौ सम्पुटीकृत्य, नीति-परिपूर्णमुपदिदेश यत्—

"चमूपते! दुर्ग्गाण्येव महाराष्ट्राणां बलानि। प्रायस्ते व्यर्थमिति मत्वा कमपि प्रशस्तं भूभागं रणाङ्गणीकृत्य ध्वजान् समुद्धूय भेरी-राहत्य न योत्स्यन्ते। किन्तु परितः पर्वतदरीषु महारण्येषु गिरि-गणावृत-दुर्ग्गेषु च निर्भया अवस्थास्यन्ते। अस्मांश्च यदा कदाचि-देवासावधानानाकलय्य पशुमारं मारयिष्यन्तीति शनैः शनैरेकैकदुर्ग-ग्रहणायैवोद्योगः करणीयः--इति मे मतिः। सम्मुखं च युद्धायो-पस्थिता अपि पलायिष्यन्ते चेद् उच्चावचोपत्यकासु गण्ड-शैलमय-

---

स्थितशिरःपर्यन्तगमने कियान् विलम्ब इति सम्भाव्यमेव। **शिरीषम्** = पुष्पविशेषः कोमलोपमानत्वे प्रसिद्धः। **सप्रतिभः** = नवनवोन्मेषशालिन्या बुद्ध्या विभूषितः। **असावधानान्** = प्रमत्तान्। **पशुमारं मारयिष्यन्ति** = यथा पशून् मारयिष्यन्ति तथेत्यर्थः। अनायासेनेति यावत्। "उपमाने कर्मणि च"ति णमुल्। **उच्चावचोपत्यकासु** = निम्नोन्नतासु पर्वतासन्नभूमिषु।

पहुँचेगी इसकी प्रतीक्षा विडम्बना ही है। अतः मराठे दुर्ग रूप जेलों में कैदी की भाँति पड़े रहें, हमें तो सम्मुख युद्ध के लिये ही प्रयत्न करना चाहिये। चाँद खाँ इन विषयों में अत्यधिक प्रतिभाशाली था। उसने कुछ विचार-सा करके, हाथ जोड़कर, यह नीतिपूर्ण उपदेश दिया—

सेनापति! दुर्ग ही मराठों की शक्ति हैं। वे किसी सुन्दर भूभाग को युद्धस्थल बनाकर, ध्वज फहराकर, भेरी बजाकर, लड़ने को व्यर्थ समझकर प्रायः इस प्रकार का युद्ध नहीं करेंगे। किन्तु चारों ओर पहाड़ों की कन्दराओं में, घने जंगलों में, और पहाड़ियों से घिरे दुर्गों में निर्भय होकर रहेंगे और ज्यों ही हमें असावधान देखेंगे जानवर की मौत मार डालेंगे। अतः मेरे मत से धीरे-धीरे एक-एक दुर्ग पर अधिकार करने के लिये प्रयत्न करना चाहिये। सम्मुख युद्ध के लिये उपस्थित होने पर भी यदि वे भागें तो ऊँची-नीची घाटियों, पहा-

निबिडारण्य-कुज्झटिकासु दुरूहारोहावरोह-पद्धतिषु सानुषु च तेषां कथामात्रमपि न प्राप्स्यतेऽस्माभिः।"

शास्तिखानस्तु चिक्कन-दुर्गाधिकार-युद्ध-स्मरणेन हतहृदयः पुनस्तादृशं रोम-हर्षणं युद्धमविधित्सुः कातरतरान्तरात्मा समुवाच— "महाराष्ट्रा युद्धक्षेत्रमपास्य पलायिष्यन्ते चेत् किमास्माकीना नानुधाविष्यन्ति ? अस्मत्सेनास्वश्वारोहा न सन्ति ? ते किं घोटक-खुर-खडखडा—शब्द—श्रवणेनैवार्द्धमृतप्रायान् कन्दरिकन्दरेष्वर्द्धःप्रविष्टानेव शक्ति-प्रोतान् न करिष्यन्ति ?"

चान्द्रखानः—महामान्य ! सक्ष्वेडं महाराष्ट्राः सम्मुखमाया-

गण्डशैलमयानि निबिडानि = घनानि, अरण्यान्येव कुज्झटिकाः = दुरवगाहनीयभूमयः, तासु । दुरूहाः = दुर्विज्ञेयाः, आरोहावरोहपद्धतयः = ऊर्ध्वाधोगमनमार्गा येषु तादृशेषु । सानुषु = पर्वतनितम्बेषु, "नितम्बोऽद्रेः स्नुः प्रस्थः सानुरस्त्रियामि"त्यमरः ।

अविधित्सुः = अचिकीर्षुः । कातरतरः = अत्यन्तत्रस्तः, अन्तरात्मा = अन्तःकरणं, यस्य सः । अत्यन्तकातरत्वादेव प्रयोगे वारद्वयं किमं प्रयुक्तवान् ।

शक्तिप्रोतान् = शक्तिनामकशस्त्रविद्धान् ।

ड़ियों वाले घने जंगलों, कठिन उतार-चढ़ाव वाले रास्तों और पहाड़ों की चोटियों में हम उनके निशान भी न पा सकेंगे ।

चाकन दुर्ग पर अधिकार करते समय युद्ध के स्मरण से साहसहीन, और पुनः उस प्रकार का रोमाञ्चकारी युद्ध करने को अनिच्छुक अधीरहृदय शाइस्ता खाँ ने कहा—यदि मराठे युद्धस्थल छोड़ कर भागेंगे तो क्या हमारे सैनिक उनका पीछा न करेंगे ? क्या हमारी सेना में घुड़सवार नहीं हैं ? क्या वे घोड़ों के खुरों के खड़-खड़ शब्द सुनने से ही प्रायः अधमरे हो गए, पहाड़ों की खोहों में आधे ही घुसे मराठों को बर्छी से छेद कर मार न डालेंगे ?

चाँद खाँ—महामान्य ! यदि मराठे सिंहगर्जन कर सामने आ जायँ तो

ताश्चेद् दिल्लीवल्लभस्य निश्चितो जयः, पलायिता अपि च गृह्येरंश्चेदवश्यमेव जयः, परं पलायितानामेषामनुधावनमेव कठिनम् ।

शास्ति०—तत् कथम् ?

चान्द्र०—भगवन् ! अस्माकं स्थूलकायाः सरल-भूभाग-मात्र-धावनाभ्यासिनो हयाः, तदुपरि च महाकवचाः शस्त्रास्त्रमहाभारभृतः सादिनः इति ते न शक्नुवन्ति उद्घातिनीषु उपत्यकासु तथा अश्वांश्चालयितुं यथा महाराष्ट्रा लघुभिः पार्वतघोटकैरुन्दुरव इव कुहरेषु निविशन्ते, मर्कटा इव सानुमत्सानून्यारोहन्ति, पक्षिण इवोपत्यकात उपत्यकामुड्डीयेव गच्छन्ति, शशका इव च तरुलतासु सपद्यत्मानमाच्छाद्य तिष्ठन्ति । तत् सपदि सेनाम् आयोज्य सिंहदुर्गं एवा-

---

सक्ष्वेडम् = ससिंहनादम् । "क्ष्वेडा तु सिंहनादः स्यादि"त्यमरः । गृह्येरन् = गृहीता भवेयुः । अनुधावनम् = अनुसृत्य धावनम् ।

महाकवचाः = विशालतनुत्राणाः । उद्घातिनीषु = स्खलनयोग्यासु विषमासु । उन्दुरवः = मूषका इव, उपमालङ्कारः । अग्रेऽप्येवम् । निविशन्ते, "नेर्विश" इत्यात्मनेपदम् । सानुमत्सानूनि = पर्वतनितम्बान् । उड्डीयेवेत्यु-

---

दिल्लीपति की जय निश्चित है; भागते हुए भी यदि पकड़ लिये जायँ तो भी जीत अवश्य होगी; पर भागते हुए मराठों का पीछा करना ही तो कठिन है ।

शाइस्ता खाँ—वह कैसे ?

चाँद खाँ—हुजूर ! हमारे मोटे-ताजे और केवल मैदान में ही दौड़ने के अभ्यस्त घोड़ों पर बैठे, बड़े-बड़े कवचों और शस्त्रास्त्रों का भारी भरकम बोझ सँभालने वाले घुड़सवार ऊँची-नीची घाटियों में घोड़ों को वैसे नहीं दौड़ा पाते जैसे मराठे छोटे-छोटे पहाड़ी टट्टुओं से चूहों की तरह कन्दराओं में घुस जाते हैं, बन्दरों की तरह पहाड़ की चोटियों पर चढ़ जाते हैं, पक्षियों की तरह एक घाटी से दूसरी घाटी को मानों उड़कर चले जाते हैं और खरगोशों की तरह वृक्षलताओं के पीछे अपने को झट से छिपाकर बैठ जाते हैं । अतः जल्द ही सेना

श्वनीयः। तस्मिन्नेव शिवोऽस्ति, मासेन मासद्वयेन वा दुर्गमेतद्धस्तगतं भविष्यति, शिवश्च बन्दीकरिष्यते, दिल्लीश्वरस्य च विजयपताकाः सर्वत्रापि कोङ्कणप्रदेशे दोधूयिष्यन्ते। इदमेवाध्यवस्यति मम तुच्छा बुद्धिः। श्रीमते च यथा रोचेत तथा विधेयम्।

शा०—[सभ्रुकुटि] कथमिव साहसमुन्मुच्य सम्मुखयुद्धाद् विरज्यसि। [परितोऽवलोक्य] किं कोऽपि नास्ति साहसिकोऽस्मत्सेनासु यत् त्वं रण--प्राङ्गण--समर--विरुद्धं मन्त्रयसे। [ततो 'वयं रणाङ्गणयुद्धमीहामहे' इति परितश्चाटुवादिनोऽब्रुवन्]

चा०—[शोककोपोन्मथितहृदयो मुखमधः कृत्वा निःश्वस्य च] न सामर्थ्यं मम मन्त्रणस्य, किन्तु श्रीमद्भिरेव स्थिरीक्रियताम्। यथा चाऽऽज्ञापयिष्यते तथा विधास्यति दास एषः।

त्प्रेक्षा। आयोज्य = सङ्घटय्य। अश्वनीयः = अश्वैरतिक्रमणीयः, "तेनातिक्रामति"। अध्यवस्यति = निश्चिनोति। उन्मुच्य = परित्यज्य। विरज्यसि= विरक्तो भवसि।

साहसिकः = साहसवान्। मत्वर्थीये ठनि तस्य चेकि रूपम्।

तैय्यार कर सिंह दुर्ग को घुड़सवारों से घेर लेना चाहिये। शिवाजी इसी दुर्ग में है। महीने-दो-महीने में यह दुर्ग अपने हाथ आ जायगा, शिवाजी वन्दी बना लिया जायगा, और दिल्लीश्वर की विजयपताकाएँ सारे कोंकण प्रदेश में फहराने लगेंगी। मेरी तुच्छ बुद्धि तो यही निश्चय करती है, आगे हुजूर को जैसा अच्छा लगे वैसा करें।

शाइस्ता खाँ—(भौंहें तान कर) छिः छिः, क्या साहस छोड़ कर सम्मुख युद्ध से भागते हो। (चारों ओर देखकर) क्या हमारी सेना में कोई साहसी वीर नहीं है जो तुम इस प्रकार युद्धस्थल में युद्ध करने के विरुद्ध राय देते हो ? (तब सब ओर से चापलूस बोलने लगे, "हम युद्धस्थल में सम्मुख युद्ध चाहते हैं।")

चाँद खाँ—(शोक तथा क्रोध से उन्मथित हृदय, मुंह-नीचा कर के निःश्वास-

इति सम्प्रधार्य, धूमपान-नलिका-मुखं पार्श्वस्थोपबर्हे संस्थाप्य ताम्बूलिक-दत्तां वीटिकां दन्तैः सन्दश्य, सम्मुख-संस्थापित-राजत-पात्रस्थ-कुसुम-गुच्छानामन्यतममुत्थाप्य जिघ्रति तस्मिन्, अकस्मात् प्रतीहारेण प्रविश्य सजयध्वनि अभिवाद्य करौ सम्पुटीकृत्य कथितम्--दीनबन्धो ! सिंहदुर्गात् पण्डित एकः समायातोऽस्ति ।

तदाकर्ण्य, आ ! एवम् ! स एव तु चिरात् प्रतीक्ष्यते मया । प्रवेशय प्रवेशय--इति साम्रेडमुक्तवान् शास्तिखानः ।

तावत् सर्वेषु तत्पथमेव प्रविलोकयत्सु प्रतीहारेण सह सात्त्विक-वेषः पण्डित एकः प्रविवेश ।

तं च श्यामवर्णम्, चन्दन-त्रिपुण्ड्राङ्कितम् आरक्तचक्रोष्णीषम्,

---

ताम्बूलिकदत्ताम् = ताम्बूलवाहिदत्ताम् । यद्यपि ताम्बूलं पण्यमस्येति विग्रहे "तदस्य पण्यमि"ति ठकि साधुत्वेन ताम्बूलविक्रेत्रर्थे युक्तः प्रयोगः, किन्तू-पचारेण ताम्बूलदायकेऽपि प्रयोगः कार्य इति ग्रन्थकृदभिप्रायः ।

सात्त्विकं वेषं प्रदर्शयति--तं चेत्यादिना । चन्दनत्रिपुण्ड्रेणाङ्कितम् । ललाटे

पूर्वक) आपको राय दे सकने की शक्ति मुझ में नहीं है, आप ही निश्चय करें, जैसी आपकी आज्ञा होगी वैसा ही यह दास करेगा ।

यह सुनकर शाइस्ता खाँ हुक्के की नली के मुह को पास की मसनद पर रख कर ताम्बूलवाहक (खवास) द्वारा दिये गये पान के बीड़े को दाँतों से काट कर, सामने रखे चाँदी के पात्रों में वर्तमान फूल के गुच्छों में से एक गुच्छा उठाकर सूँघ ही रहा था कि एकाएक द्वारपाल ने प्रवेश कर, जयध्वनि के साथ अभिवादन कर के हाथ जोड़ कर कहा—

"गरीबपरवर ! सिंहगढ़ से एक पण्डित आया है ।"

यह सुनकर शाइस्ता खाँ ने "अच्छा, भेजो, भेजो । उसी का तो मैं कितनी देर से इन्तजार कर रहा था" कहा ।

सभी लोग पण्डित की राह देखने लगे, इसी बीच प्रतीहारी के साथ सात्त्विक वेष में एक पण्डित ने प्रवेश किया ।

सुन्दर-श्वेत-कञ्चुकम्, पीतोत्तरीय-शोभित-कन्धरम् किञ्चित् खर्वाकृतिमपि अपीच्यदर्शनमवलोक्य सर्वे सभासदस्तथैवावास्थिषत।

"आगम्यतामिह समीपे स्थीयताम्" इति स्थानं निर्दिशति शास्ति-खाने सोऽपि प्रह्वीभूय किमप्यादर-सूचक-वचनमुच्चार्यैव समुपाविक्षत्। ततस्तेन तेषामेवमभूदालापः।

शास्तिखानः—पण्डित! तव किं नाम?

पण्डितः—नास्ति देहोऽपि गेहमपि नामापि मम किञ्चन। आम्, लोकास्तथाऽपि भाषन्ते [सकासनम्] मां महादेव इति। भगवन्! अस्मिन्नसारे संसारे देहो वा गेहं वा नाम वा, तादृशं किमस्ति यदहं

तिसृभिः रेखाभिः सूच्यमानं त्रिपुण्ड्रम्। आरक्तम् = ईषद् रक्तम्, चक्रम् = वृत्ताकृति, उष्णीषं यस्य तम्। "गोल टोपी" इति हिन्दी। किञ्चित् खर्वाकृतिम् = ईषद् वामनम्। अपीच्यदर्शनम् = शोभनावलोकनम्। सुन्दरमिति यावत्। अवास्थिषत = स्थिता बभूवुः।

नास्ति देहोऽपि, गेहमपीत्यादिना तस्य वेदान्तिता प्रकटिता। सकासनम् = "खाँसी के साथ" इति हिन्दी। कासश्वासादिप्रकरणे वैद्यकग्रन्थेषु बहुश ईदृशेऽर्थे व्यवहृतोऽयं धातुः। धातोरनेकार्थतायाः सर्वसम्मतत्वेन निर्वाहः।

साँवले रंग वाले, चन्दन का त्रिपुण्ड लगाये हुए, गुलाबी गोल पगड़ी और सुन्दर सफेद कुर्ता धारण किये हुए, कन्धे पर पीला उत्तरीय डाले, कुछ ठिंगने होने पर भी देखने में सुन्दर लगने वाले महादेव पण्डित को देखकर सभी दरबारी ज्यों-के-त्यों बैठे रहे।

शाइस्ता खाँ के "आइये, इधर पास में बैठिये" इस प्रकार स्थान निर्देश करने पर, वह पण्डित भी नम्रतापूर्वक कुछ आदरसूचक वाक्य कह कर बैठ गया। तब उस पण्डित से उन लोगों की इस प्रकार बातचीत हुई।

शाइस्ता खाँ—पण्डित! तुम्हारा नाम क्या है?

पण्डित—न तो शरीर ही मेरा है, न घर ही, और न मेरा कोई नाम ही है। फिर भी लोग मुझे (खाँसते हुए) "महादेव' कहते हैं। भगवन्! इस

ममेति कथयामि। तथाऽपि मां जनाः "महादेवो महादेवः" इति कथयन्ति।

[तदाकलय्य सर्वेऽपि पण्डितानां भाषण-भङ्गीमभिननन्दुः]

शा०—अथ को वृत्तान्तः सिंहदुर्गस्य ?

महादेवः—

"रसयन् गोस्तनी-कन्दम्, स्थितोऽपि स्वर्ण-पञ्जरे।

[किञ्चित् कासित्वा]

रसालवन—वियोग—ज्वालाभिर्दह्यत एव कोकिलः ॥"

शास्तिखानः—किम् ?

महा०—भगवन् ! यद्यपि सुवर्ण–रचिते पञ्जरे कोऽपि कोकिल–स्तिष्ठेत्, यद्यपि च द्राक्षायाः कन्दं प्रत्यहं खादेत्, तथाऽप्याम्रवन–वियोग–दुःखेन दुःखी भवत्येव।

असारे संसार = इति ते वहुधा कथयन्ति ये संसारार्णवे चिराय निमग्नाः पुत्रकलत्रादिरक्षणमात्रपराः संस्कृताक्षरदुर्दशाकरणपटव इति सोपहासमुक्तिः। अत एवाग्रे—"पण्डितानां भाषणभङ्गीम्"—इति वहुत्वं प्रायुङ्क्त कविरिति वर्ण-स्वारस्यवेदिनः।

गोस्तनी = द्राक्षा। **रसालवनेत्यत्र** छन्दोभङ्गः, स च विस्मृतं पद्यखण्डं स्वयं यथा तथा निर्माय पपाठेति द्योतयति। अत एव मध्ये कासनमप्युपपद्यते। विस्मृत्य हि जनाः कासनादिना समयमतिवाहयन्ति।

सारहीन संसार में, शरीर घर या नाम ऐसी कौन-सी चीज है जिसे मैं अपना कह सकूँ। फिर भी लोग मुझे "महादेव", "महादेव" ऐसा कहते हैं। (यह सुनकर सभी ने पण्डित की भाषणशैली की प्रशंसा की)

शाइस्ता खाँ—अच्छा, सिंहगढ़ का क्या समाचार है ?

महादेव—द्राक्षारस का पान करता हुआ और सोने के पिंजरे में रहता हुआ भी (कुछ खाँस कर) कोयल पक्षी, आम्रवन के वियोग की ज्वाला से जलता ही रहता है।

३

शा०—किं तात्पर्य्यम् ?

महा०—चमूपते ! एतदेव यद्, यद्यपि सिंह–दुर्गे सिंहसदृशै–र्वीर–भटैर्युतो रत्न--जटित--कनक--दण्डैः श्वेत--चामरैर्वीज्यमानः शिववीरः सुखेन वसति, तथाऽपि पुण्यनगर–वियोगस्य चिक्कन—दुर्ग–वियोगस्य च दारुणं व्रणमिव दुःखं स बिभर्त्ति ?

शा०—सत्यम्, किन्तु तस्य व्रणस्य का चिकित्सा ? दुःसाध्योऽयं रोगः ।

महा०—सोऽप्यसाध्यं न मनुते, किन्तु दुःसाध्यमेव ।

शा०—तत् किं प्रधानं चिक्कन–दुर्गं कोङ्कण–देश–रत्नमिव च

किमिति पृष्टः श्लोकार्धमेव प्रकटयामासेति द्वितीया पण्डितानां भाषणशैली । ते यदि किमपि वक्तुमुद्यता भवन्ति तदा घुष्टं श्लोकं निवेद्य तादृशैरेवाक्षरैस्तदर्थं समुपस्थाप्य विरमन्ति ।

शाइस्ता खाँ—क्या ?

महादेव—भगवन् ! यदि कोई कोयल सोने के पिंजरे में भी रहे, और प्रतिदिन अंगूर भी खाये, फिर भी उसे आम्रवन के वियोग का दुःख तो होता ही है ।

शाइस्ता खाँ—क्या मतलब ?

महादेव—सेनापति ! यही कि यद्यपि शिवाजी सिंहगढ़ में सिंह के समान वीर सैनिकों के साथ सुखपूर्वक रह रहे हैं, और उन्हें रत्नजटित सोने के दण्ड वाले, सफेद चँवरों से हवा की जा रही है, फिर भी पूना नगर और चाकन दुर्ग का वियोग उन्हें दारुण घाव की तरह कष्ट दे रहा है ।

शाइस्ता खाँ—सच है, पर उस घाव का इलाज क्या है ? यह रोग तो दुःसाध्य है ।

महादेव—शिवाजी भी इस रोग को असाध्य नहीं दुःसाध्य ही मानते हैं ।

शाइस्ता खाँ—तो क्या प्रधान चाकन दुर्ग और कोंकण देश के रत्नभूत

पुण्यनगरं हस्तीकृतवत्यपि मयि शिवोऽधुना मया सह युयुत्सते ? युद्धेन वा महारोगस्यैतस्योपायं चिकीर्षति ? एवं चेज्जम्बुकस्य बुभुक्षित-केसरि-खर-नखराक्रान्तोरण--जिघृक्षा विफला।

महा०—चमूपते !

"न कुर्य्याच्चातको मुग्धश्चेत् स्ववाञ्छित-सूचनम्।
न पूरयति किं मेघस्तत्तृष्णां जल—वृष्टिभिः ? ॥"

शा०—किम् ?

महा०—प्रभो ! यदि चातक--नामा पक्षी याचितुं न जानीयात्; तत् किं मेघो जलवृष्टिभिस्तत्तृष्णां न शमयति ? अर्थात् यदि सम्मुख-

---

हस्तीकृतवति = वशीकृतवति। जम्बुकस्य = शृगालस्य। बुभुक्षितस्य = क्षुधार्त्तस्य, केसरिणः खरनखरैः = तीक्ष्णाङ्गुलिप्रान्तैः, आक्रान्तस्य = आस्कन्दितस्य, गृहीतस्येति यावत्। उरणस्य = मेषस्य, जिघृक्षा = ग्रहीतुमिच्छा। यथा शिवकर्तृकतादृशोरणग्रहणेच्छाया वैफल्यं, तथैव शिववीरस्य चिक्कनदुर्गादिलव्ध्यभिलाष इति तत्त्वम्।

न कुर्याच्चातको मुग्ध इत्यत्र शिववीरशास्तिखानचरिते प्रस्तुतेऽप्रस्तुत-चातकमेघादिवर्णनादप्रस्तुतप्रशंसा।

पूना नगर के मेरे हथिया लेने पर भी शिवाजी मुझसे लड़ना चाहता है ? या इस महारोग का इलाज युद्ध से करना चाहता है ? यदि ऐसा है तो गीदड़ की, भूखे शेर के पैने नाखूनों से दबोचे गये भेंड़े को छीन लेने की कोशिश बेकार ही होगी।

महादेव—सेनापते ! यदि भोलाभाला चातक पक्षी अपनी अभिलाषा सूचित न करे, तो, क्या मेघ जलवृष्टि द्वारा उसकी पिपासा शान्त नहीं करता ?

शाइस्ता खाँ—क्या ?

महादेव—हुजूर ! यदि चातक नामक पक्षी माँगना न जानता हो तो क्या बादल पानी बरसा कर उसकी प्यास नहीं बुझाते ? अर्थात् यदि सम्मुख

युद्ध-पराभव-लज्जितो महाराष्ट्र--राजः स्वमुखेन सन्धये न प्रार्थयेत्, तत् किं भवान् स्वयमेव स्वोदारतया यथोचित-दानाऽऽदानैस्तेन सह न सन्दध्यात् ?

शा०—[सन्धि–प्रस्तावं श्रुत्वा सानन्दः] तत् किं सन्धित्सते शिवः ?

महा०—चमूपते ! दिल्लीश्वरेण योद्धुं कोऽभिमन्येत ? सम्प्रति तु महाराष्ट्र—मण्डले प्रतिगेहं प्रतिभित्ति प्रतिमुखं च सन्धिः सन्धिरित्येव श्रूयते महाध्वनिः ।

शा०—[हसन्, चान्द्रखानं प्रति सामर्षम्] ह ह ह ! पश्य, महाराष्ट्राः सम्मुखयुद्धाद् भीताः ? आहोस्विद् दुर्गरोधाद् ? साम्रेडं कथयाम्येतैः कदर्य्य–हतकैः सम्मुखं योद्धव्यमिति । त्वं तु नैजानेव स्वप्नान् पश्यसि ।

दानादानैः = दानप्रतिग्रहैः । न सन्दध्यात् = न सन्धि कुर्वीत ? काक्वा कुर्वीतैव । "शेषे प्रथमः" इत्यनेन भवत्पदयोगात् प्रथमपुरुषत्वम् ।

युद्ध में हार जाने के कारण लज्जित महाराज शिवाजी अपने मुँह से सन्धि की प्रार्थना न करें तो क्या आप स्वयं ही अपनी उदारता से कुछ ले-देकर उनसे सन्धि नहीं कर सकते ?

शाइस्ता खाँ—(सन्धि का प्रस्ताव सुनकर आनन्दपूर्वक) तो क्या शिवाजी सन्धि करना चाहता है ?

महादेव—सेनापते ! दिल्लीनरेश से युद्ध करने का अभिमान कौन कर सकता है ? इस समय तो महाराष्ट्र देश में हर घर, हर दीवार और हर मुँह से "सन्धि सन्धि" यही कोलाहल सुनाई दे रहा है ।

शाइस्ता खाँ—(हँसता हुआ, चाँद खाँ की ओर क्रोधपूर्वक) ह ह ह ! देख, मराठे सम्मुख युद्ध से डरे हैं या किले घेरने से ? वार-वार कहता हूँ कि इन क्षुद्र कायरों से सम्मुख-युद्ध करना चाहिये, पर तुम अपने ही सपने देखा करते हो ।

तदाकर्ण्य चान्द्रखानः क्रोधारक्त-वदनोऽप्यधोमुखः समतिष्ठत। महादेवश्च महाराष्ट्र-निन्दां सकष्टमश्रौषीत्। शास्तिखानः पुनर्महा-देवाभिमुखीभूय तं सम्बोध्य सोत्प्रासमुवाच—

"साधु, साधु, पण्डित! साधु, तव पाण्डित्येऽतितरां प्रसीदामि।"

चाटुकाराः—आम्, आम्, साधु, साधु, महानेष पण्डितः।

शा०—अहो! माधुर्य्यं संस्कृत-भाषायाः।

चाटु०—आः! अपूर्वमेव माधुर्य्यमिदम्!!

शा०—तत् किमायातो भवान् सन्धि-विषयक-वार्त्ताः कर्तुम्?

महा०—एवम्!

शा०—अथ दर्शय किमपि प्रमाणपत्रम्, यथा त्वं शिवेनास्मिन् विषयेऽधिकृतोऽसीत्यहं निश्चिनुयाम्।

समतिष्ठत, "समवप्रविभ्यः स्थ" इत्यात्मनेपदत्वम्। सोत्प्रासम् =

यह सुन कर चाँद खाँ का मुँह गुस्से से लाल हो गया, पर वह मुँह नीचा किये ही बैठा रहा। महादेव ने बहुत कष्टपूर्वक मराठों की निन्दा सुनी। शाइस्ता खाँ पुनः महादेव की ओर मुंह कर उसे संबोधित कर मुस्करा कर बोला—

"ठीक है, ठीक है पण्डित जी! आपकी विद्वत्ता से मैं बहुत खुश हूँ"।

चापलूस लोग—हाँ हाँ, ठीक है, ठीक है, यह बहुत बड़े विद्वान् हैं।

शाइस्ता खाँ—अहा, संस्कृत भाषा कितनी मधुर है!

चापलूस लोग—वाह, अपूर्व माधुर्य है!

शाइस्ता खाँ—तो क्या आप सन्धि के सम्बन्ध में बातचीत करने आये हैं?

महादेव—हाँ यही बात है?

शाइस्ता खाँ—अच्छा तो कोई प्रमाणपत्र दिखाइये जिससे मुझे यह निश्चय हो सके कि शिवाजी ने आपको सन्धिसम्बन्धी बातचीत करने का अधिकार दिया है।

महा०—तथा [इति पत्रं दर्शयामास]

ततः शास्तिखाने पत्रं हस्ते गृहीतवत्येव कश्चन भृत्यो जाज्वल्यमान–दीपाश्रित–काच–मञ्जूषां हस्ते समादाय, सम्मुख आगत्य, पत्रोपर्युनुकूलप्रकाशमकरोत्। स च द्विस्त्रिः पठित्वा, मुद्रादिकं सावधानतयाऽवलोक्य, पत्रं भुवि संस्थाप्य, "भद्रम्, ज्ञातमिदम्, अस्ति भवानधिकृतोऽस्मिन् विषये, तदारभ्यताम्"—इत्यब्रूत ।

महा०—चमूपते ! "वयमादौ पराजिताः, पुनश्च शोणित-शोणधाराभिः क्षोणी-क्षालनं व्यर्थम्"–इति निवेदयति प्रभुः ।

शा०—आम् !

महा०—अतः स सन्धित्सते ।

शा०—तथाऽस्तु ।

मन्दस्मितेन सह । **शोणित-शोणधाराभिः** = लोहित–लोहित-प्रवाहैः । **क्षोणी** = पृथिवी ।

महादेव—अच्छा (यह कह पत्र दिखा दिया) तदनन्तर, शाइस्ता खाँ के हाथ में पत्र लेते ही, एक नौकर ने हाथ में लालटेन, (शीशे की मञ्जूषा, जिसमें जलता दीपक रखा था) लेकर, सामने आकर, पत्र के ऊपर उचित प्रकाश कर दिया। शाइस्ता खाँ ने पत्र को दो-तीन वार पढ़ कर, उसकी मुहर आदि का सावधानी पूर्वक निरीक्षण कर, उसे जमीन पर रखकर कहा—"हाँ समझ गया। आपको सन्धि-सम्बन्धी वातचीत करने का अधिकार दिया गया है। अच्छा तो प्रारम्भ कीजिये।"

महादेव—सेनापते ! हमारे महाराज निवेदन करते हैं कि "हम पहले ही हार गए हैं, फिर खून की लाल धाराओं से जमीन को धोना वेकार ही है।"

शाइस्ता खाँ—हाँ ।

महादेव—इसीलिये वे सन्धि करना चाहते हैं ।

शाइस्ता खाँ—तो ऐसा ही किया जाय ।

महा०—तत् कैर्नियमैः सन्धेयमिति स विवित्सति।

शा०—आदौ दिल्लीश्वरस्य वशंवदता कर-प्रदता चाङ्गीकरणीया, अपि रोचत इदं भवत्प्रभवे ?

महा०—तस्मै किं रोचते, का वा तस्य सम्मतिरिति वक्तुं नाधिकृतोऽस्मि, किन्तु यदादेक्ष्यतेऽत्रभवद्भिस्तदेवास्मै निवेदयिष्यामि, स चोरीकारमनूरीकारं वा स्वयं प्रकटयिष्यति।

शा०—अस्तु, कथ्यतां तस्मै यत् प्रथमतो दिल्लीश्वराज्ञावाहकता तत्करदता चाङ्गीकरणीया। द्वितीयतो यानि दुर्गाणि स्थानानि चास्माभिर्जितानि, तेषां पुनरादित्सा न विधेया। तृतीयतश्चान्यान्यपि सिंहदुर्ग-प्रभृतीनि कानिचित् दुर्गाणि दिल्लीश्वरायोपहरणीयानि।

महा०—[किञ्चिद् विचार्येव] सिंहदुर्गादीनि कानि कानि ?

विवित्सति = वेत्तुमिच्छति।

आदेक्ष्यते = आदेशः करिष्यते। ऊरीकारम् = स्वीकारम्।

आदित्सा = आदातुमिच्छा। उपहरणीयानि = उपायनीकरणीयानि।

महादेव—वे जानना चाहते हैं कि सन्धि—किन नियमों से होगी ?

शाइस्ता खाँ—पहले तो दिल्लीनरेश की अधीनता और करप्रदता (कर देना) स्वीकार करनी होगी, क्या आपके मालिक को यह पसन्द है ?

महादेव—उन्हें क्या पसन्द है या उनकी क्या राय है, यह कहने का मुझे अधिकार नहीं दिया गया है, किन्तु जो कुछ आप आज्ञा करेंगे मैं उनसे निवेदन कर दूंगा, स्वीकृति या अस्वीकृति तो वे स्वयं ही प्रकट करेंगे।

शाइस्ता खाँ—अच्छी बात है। तो उनसे कह दीजिये कि पहले तो दिल्लीश्वर की आज्ञा मानना और उन्हें कर देना स्वीकार करना होगा, दूसरे वे उन दुर्गों या स्थानों को लेने की कोशिश न करें जिन्हें हमने जीत लिया है और तीसरे सिंहगढ़ आदि कुछ दुर्ग दिल्लीश्वर को उपहार में देने होंगे।

महादेव—(कुछ विचार-सा करके) सिंहगढ़ इत्यादि कौन-कौन से ?

शा०--तानि विविच्य परस्तात् पत्रद्वारा सूचयिष्यामि।

महा०--नान्यत् ?

शा०—नान्यत्। इदमेव तस्मै कथ्यताम्, तत्सम्मतिश्च मह्यं सोसूच्यताम्।

महा०—अथास्मिन् विषये यावत् पत्रालापः, नियम-व्यवस्थापनं च भवेत्; तावत् युद्धं शाम्यतु-इत्यपि निवेदयति प्रभुः।

सा०—अलमुत्कीर्त्यापि तत्। यावन्नियमः स्थिरो न भवति तावद् यवन-वीरा यत्रैव महाराष्ट्र-सेनां द्रक्ष्यन्ति, तत्रैव तैर्योत्स्यन्ते। गम्यतामधुना, कथ्यतामेष विषयः स्वप्रभुषु।

तदाकर्ण्य, "तथाऽस्तु" इति व्याहृत्य सप्रह्वभावमुत्थाय न्यवर्तत महादेवः।

उत्कीर्त्य = कथयित्वा। वक्तव्यमपि नेत्यर्थः। सप्रह्वभावम् = सनम्रतम्।

शाइस्ता खां—उन्हें विचार-विमर्श कर वाद में पत्र द्वारा सूचित करूँगा।

महादेव--और कुछ नहीं ?

शाइस्ता खाँ--और कुछ नहीं। उनसे जाकर यही कहो और उनकी राय से मुझे सूचित करो।

महादेव--हमारे स्वामी का यह भी निवेदन है कि जब तक सन्धि-विषयक पत्र-व्यवहार चले और जब तक इस सम्वन्ध में नियमों की कोई निश्चित व्यवस्था न हो जाय तव तक युद्ध वन्द रहे।"

शाइस्ता खाँ–उसका तो नाम भी न लीजिये। जब तक सन्धि के नियम स्थिर नहीं हो जाते तव तक मुगल सैनिक जहाँ कहीं भी मराठी सेना देखेंगे वहीं उनसे लड़ेंगे। अब आप जाइये और यह वात अपने मालिक से कह दीजिये।

यह सुनकर महादेव पण्डित "ऐसा ही होगा" यह कह कर नम्रतापूर्वक उठकर लौट पड़े।

चान्द्रखानस्तु महादेवस्य वार्त्ता: श्रावं श्रावम् "अप्येष स्वयं शिववीरः, अपि वा तस्यैव कश्चिदनुजः सहचरो वा ? यतः संवादिनी आकृतिरनुकारिणी च वागस्ति"—इति संशयानः, मुहुर्मुहुः परामर्श-पराभ्यां नयनाभ्यां तं निपुणं निरीक्षमाणः, चमूपतिरन्यादृश इति स्वाभिप्रायं प्रकटयितुमप्यनीहमानः,उत्थित एवास्मिन् स्वयमप्युत्तस्थौ।

महादेवस्तु मुकुर–चित्र--पट्टिका--स्तम्भ--वितान--द्वार--कपाटा–द्यवलोकन-च्छलेन शनैः शनैर्निश्रेणीः कोष्ठानि प्राचीराणि शस्त्रा-गारं रक्षकावासं च यथाशक्ति गम्भीरमवालोकयत्। "किमिवेतस्ततः पश्यसि ?" इति पृष्टवति चान्यतमे रक्षके, "न किमपि, अस्मिन्नेव पूर्वं शिववीर उवास, अधुना च सर्वं युष्माभिराक्रान्तमित्येव स्मृत्वा भवदैश्वर्यं विलोकयामि"—इत्युवाच।

सवादिनी = सदृशा। अनुकारिणी = तुल्या। परामर्शपराभ्याम् = अनु-सन्धानासक्ताभ्याम्। अन्यादृशः = पर इव स्वविषये। अनीहमानः = अनिच्छन्। निःश्रेणी = अधिरोहिणीः।

महादेव पण्डित की वातें सुन-सुन कर––"क्या यह स्वयं शिवाजी है या उसी का कोई छोटा भाई या साथी है, क्योंकि इसकी आकृति तो शिवाजी की-सी ही है और वोली भी उसकी वोली के समान ही है" यह संशय करता हुआ, पण्डित को खोजपूर्ण नेत्रों से सावधानीपूर्वक वार-वार देखता हुआ, "सेनापति शाइस्ता खाँ तो कुछ दूसरा ही समझते हैं" यह सोचकर अपने अभिप्राय को प्रकट करने को अनिच्छुक चाँद खाँ भी महादेव पण्डित के उठते ही खुद भी उठ पड़ा।

महादेव पण्डित ने शीशों, चित्रपटों, स्तम्भों, तम्वुओं, दरवाजों और किवाड़ों को देखने के वहाने धीरे-धीरे सीढ़ियों, कमरों, चहारदीवारियों, शस्त्रागार और रक्षकों के निवासस्थान को भी यथाशक्ति भली-भाँति देख लिया। किसी प्रहरी के–"इधर-उधर क्या देख रहे हो" यह पूछने पर "कुछ भी नहीं, पहले इसी किले में शिवाजी रहते थे, अव तो सव कुछ तुम लोगों ने दवा लिया है, यही सोचकर आपका ऐश्वर्य देख रहा हूँ" यह कहा।

अथ "गच्छ, यत्र शिवोऽधुना वसति तस्मिन्नपि वयमद्य श्वो वा, एवमेव विचरिष्यामः। किमिव गतं शोचसि ? तद्रक्षार्थमेव यतनीयमिति प्रभवे निवेदय"–इति प्रौढं भाषमाणे रक्षके अङ्गार-प्रतिमाभ्यां चक्षुर्भ्यां तं दहन्निव, आपादमामस्तकं च द्विस्त्रिरवलोक्य यदाज्ञाप्यते वीरैः" इति सव्यङ्ग्यमाभाष्य, द्वारदेहलीमुल्लङ्घ्य, तत्रत्यानि पञ्चषाणि सोपानान्यवतीर्य घण्टापथेन यातायातं कुर्वतां मनुष्याणां प्रवाहे मिश्रितो बभूव।)

इति पञ्चमो निश्वासः

प्रौढम् = उच्चैः। घण्टापथेन = राजमार्गेण। "दशधन्वन्तरो राजमार्गो घण्टापथः स्मृतः" इति चाणक्यः।

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्यां पञ्चमनिश्वासविवरणम्

तदनन्तर, प्रहरी के, जोर से "जाइये, जहाँ इस समय शिवाजी रह रहा है वहाँ भी हम आज या कल में इसी तरह घूमेंगे। व्यर्थ वीती वातों को क्या सोचते हो ? जाकर मालिक से कहो कि जहाँ हैं उसी को बचाने की कोशिश करें।" यह कहने पर, अपने अंगारसदृश नेत्रों से उसे जलाते हुए से महादेव पण्डित, उसे सिर से पैर तक दो-तीन वार देख कर, व्यंगपूर्वक "वीरवर की— जो आज्ञा" कह कर, दरवाजे की देहली पार कर, वहाँ की पाँच-छः सीढ़ियाँ उतर कर सड़क पर यातायात करते हुए लोगों की भीड़ में मिल गये।

शिवराजविजय का पञ्चम निश्वास समाप्त

॥ श्रीः ॥

अथ षष्ठो निश्वासः

"बुद्धिर्यस्य वलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो वलम् ?"

—पञ्चतन्त्रम् ।

आसीत् शिववीरस्य परम–मित्रं नीति–निष्णातो वीरवरः परम–साहसी विविध-युद्धेषु विहित–शिव–साहचर्यः, खड्ग–चालन–विद्या–कुशलो माल्यश्रीकनामा । स च महादेव–पण्डित–वेषमाकलय्य दूतताच्छलेन शत्रुभवनं प्रविविक्षुं शिववीर-मालोक्य तदनुमत्या गृहीत–यवन–भिक्षु–वेषः, नील—निचोला-

---

शिववीरेण महादेवपण्डितात्मना योघपुराधीश्वरः श्रीयशवन्तसिंहः स्व-मनीषाप्रभावाद् वशीकृत इति कथोपक्षेपकं पञ्चतन्त्रीयं प्रतीकमुद्धरति-बुद्धिर्य-स्येति । परमं च तन्मित्रम् । मित्रशब्दः नित्यक्लीवः सहचररूपेऽर्थे । नीति-निष्णातः = राजनीतिकुशलः । विविधयुद्धेषु विहितं शिवस्य साहचर्यं येन सः । नित्यसापेक्षत्वं विधानस्य केन कथं कुत्राद्यर्थं इति न सविशेषणानां-वृत्त्यभावानुचिन्ता । प्रविविक्षुम् = प्रवेष्टुमिच्छुम् । गृहीतः = अङ्गीकृतः,

---

जो बुद्धिसम्पन्न है वही बलशाली है, बुद्धिहीन को बल कहाँ ?

—पञ्चतन्त्र

शिवाजी के माल्यश्रीक नाम के एक परम मित्र थे। वह नीति में निष्णात, अत्यन्त वीर, परमसाहसी, तथा तलवार चलाने की कला में अत्यन्त कुशल थे, और अनेक युद्धों में शिवाजी के साथ रहा करते थे। शिवाजी को महादेव पण्डित का वेश धारण कर, दूतता के बहाने शत्रुओं के घर में प्रवेश करने को इच्छुक देखकर वह शिवाजी की अनुमति लेकर, मुसलमान फकीर का वेष धारण कर उनके पीछे-पीछे चल दिये। उन्होंने अपने नीले कञ्चुक के नीचे

ञ्चलाधस्तिरोहिततीक्ष्णतरच्छुरिकः, कटि-पर्य्यन्त-विलम्बमान-मेचक-कुञ्चित-केषः, सुशोभित-कृत्रिम-श्मश्रु-कूर्चः, हरित-परिधानः, करेणैकेन तीव्रतम-शङ्कूकृत-दण्डम्, नारङ्गाकृति-मुखम्, विलम्बित-विविध-सुसूक्ष्म-शृङ्खला-खण्डम्, झणज्झणद्-ध्वनि-रुचिरं वाद्यमेकं वादयन्, भिक्षाटनार्थमिव तत्पश्चादेव प्रचलितः। यवन-भिक्षुकाणां च नाऽऽसीत् तथा निरोधः-इति गोपुराध्यक्षेण किञ्चि-

---

यवनभिक्षोः=यवनयाचकस्य, "फकीर" इति ख्यातस्य, **वेषः**=नेपथ्यं येन सः। **नीलनिचोलस्य**=नीलरक्तकञ्चुकस्य, **अञ्चलाधः**=कोणनिम्नभागे **तिरोहिता**=गुप्ता, **तीक्ष्णतरा**=खरतरा, **छुरिका**=कृपाणिका, येन सः। **कटिपर्यन्तम्**=श्रोणीपर्यन्तम्, **विलम्बमानाः**=समायाताः, **मेचकाः**=श्यामाः, **कुञ्चिताः**=वलिताः, **केशाः**=वालाः, यस्य सः। **हरितपरिधानः**=हरितवासाः। यवनसाधवः प्रायो हरितवासस एव भवन्ति। वाद्यं विशिनष्टि--**तीव्रतमः**=अत्यन्तकठोरः, **शङ्कूकृतः**=कीलकीकृतः, दण्डो यस्य तत्। **नारङ्गाकृति**=नारङ्गाकारम्, अर्थाद् गोलाकृति यस्य तत्। **विलम्बितानि**=आलम्वमानानि, विविधानि सुसूक्ष्माणि शृङ्खलाखण्डानि यस्मिंस्तत्। झणज्झणद्ध्वनिना **रुचिरम्**=श्रोतृचित्ताकर्षकम्। **भिक्षाटनार्थमिव**=भिक्षाटनवेषप्रदर्शनमात्रं न तु भिक्षार्थमटनम्-अत एवेवसार्थक्यम्। **तथा**=यथा हिन्दूनामिति शेषः। उक्तिवैचित्र्यार्थमनुक्तिः। **गोपुराध्यक्षेण**=पुरद्वाराधिकारिणा।

तीखी कृपाण छिपा रखी थी, उनके घुघुँराले वाल कमर तक लटक रहे थे और उनके मुख पर बनावटी (नकली) मूँछ और दाढी शोभित हो रही थी। वह एक हाथ से एक ऐसे **वाद्यविशेष को** जिसके वाद्यदण्ड में कीलें या खूँटियाँ (शङ्कु) लगी थीं, जिसमें विविध प्रकार की पतली और छोटी-छोटी जञ्जीरें या रस्सियाँ लटक रही थीं, और जिससे झन्-झन् की मधुर ध्वनि आ रही थी-- **वजाते हुए,** मानो भिक्षाटन के लिये, **शिवाजी के पीछे-पीछे ही चल दिये।** मुसलमान फकीरों की उतनी रोक-टोक नहीं थी (जितनी हिन्दुओं की)।

दालप्यैवान्तः प्रवेष्टुमाज्ञप्तः सपदि प्रविश्य पारस्यभाषया कानिचिच्छन्दांसीवाऽऽम्रेडयन्, कर्हिचित् प्रपद-पातित-दृष्टिः, कदाचिद् गगनतलं समीक्षमाणः, निरपेक्ष इव, ब्रह्मानन्दनिमग्न इव च महादेव-पण्डित-वेषं शिववीरमेव कदाचित् किञ्चिद् दूरतोऽनुगच्छन्, कर्हिचिद्धस्तग्राहमनुसरन्, स्वयमपि शास्तिखानाध्युषित-प्रासादस्य द्वार-पर्य्यन्तमायातः। शिववीरे प्रासादान्तःप्रविष्टे च स्वयमेव तत्रैव पर्य्यटन्, प्रासादं भू-भागादट्टालिका-पर्य्यन्तं निपुणं निरीक्षमाणः, द्वार-पालानां रक्षकाणां च तानि तानि निवेशनानि समीक्षमाणः, भवनमेतत् परितः पूर्णतया दिदृक्षुः परितो विस्तीर्णायां पुष्पवाटिकायां प्रविष्टः।)

किञ्चिदेवालप्येत्यन्वयः। छन्दांसि—"गजल" प्रभृतीनि। **प्रपदे**=पादाग्रे, "पादाग्रं प्रपदमि"ति कोषः। **पातिता**=स्थापिता दृष्टिर्येन सः। निरपेक्षताव्यञ्जकमिदम्। सापेक्षा हि पथि गच्छतो महतो विचित्रया दृशा दयापूर्णया निभालयन्ति। **हस्तग्राहम्**=हस्तेन ग्रहीतुं योग्यो यथा स्यात् तथा। **स्वयमेव**= आत्मनाऽपि। एवकारोऽप्यर्थे। अत एव न समानार्थकशब्दद्वयस्यैकवाक्यघटकत्वम्। **द्वारपालानाम्**=दौवारिकाणाम्। **रक्षकाणाम्**=प्रहरिणाम्। **निवेशनानि**= आवासकोष्ठकानि। **समीक्षमाणः**=सम्यक् पश्यन्। **परितः**=सर्वतः। सदनमिति शेषः। **पुष्पवाटिकायाम्**=गृहोपवने।

इसलिये दरवान से थोड़ी सी ही बात करके, उससे अन्दर जाने की अनुमति पाकर, तुरन्त अन्दर प्रवेश कर, फारसी की कुछ ग़ज़लें गुनगुनाता हुआ सा वह मुसलमान फकीर कभी पैरों के पञ्जों की ओर और कभी आकाश की ओर देखता हुआ, निरपेक्ष और ब्रह्मानन्दनिमग्न सा; महादेव पण्डित का वेष धारण किये हुए शिवाजी के कभी काफी पीछे और कभी हाथ-दो हाथ पीछे रहकर, उनका अनुसरण करता हुआ, स्वयं भी उस महल के दरवाजे तक आ गया जिसमें शाइस्ता खाँ रह रहा था।

प्रथमतः सघन–हरित–लता–वेष्टित–द्रुमावलिः, द्वितीयतस्तमोबहुला तमी, तृतीयतश्च नील-निचोलोऽयं जटिलः––इति वीक्षमाणैरप्यवीक्ष्यमाणः, प्रासादं परिक्रम्येव, सर्वाणि स्वाभिमतगुप्तस्थानानि सम्यगवलोक्य सप्रसादं मनस्येवाचकथत् यत्––

"अहो ! न दुर्घटमाक्रमणमेतस्य शास्तिखान-वराकस्य। नगराद् बहिरेतस्य सेना, प्रासादरक्षका अपि च प्रासादादस्माद् दूरतो मन्दुरासु वसन्ति, यथासमयं च पञ्चषाः समागत्य द्वारि तिष्ठन्ति, प्रासादस्य

सघनाभिः = ससान्द्राभिः, हरिताभिः = हरिद्वर्णमयीभिः, अशुष्काभिरिति यावत्, लताभिः = व्रततिभिः, वेष्टिता = वलयिता, द्रुमाणाम्, आवलिः = पङ्क्तिः। तमोबहुला = अन्धकारप्रचुरा। तमी = तमिस्रा। नीलनिचोलः = कृष्णप्रच्छदः। जटिलः = जटायुतः। "लोमादि–गमादि–पिच्छादिभ्यः शनेलचः"। वीक्षमाणैः = पश्यद्भिः। अवीक्ष्यमाणः = अनवलोक्यमानः। सप्रसादम् = सप्रसन्नतम्। अचकथत्, लुङ्।

मन्दुरासु = वाजिशालासु। प्रासादरक्षकाणां प्रासादस्थितिरपेक्षिता, सा नेति

जब शिवाजी महल के अन्दर चले गये तो वह वहीं टहलता हुआ, उसको जमीन से लेकर आखिरी मञ्जिल तक ध्यान पूर्वक देखता हुआ, द्वारपालों और प्रहरियों के आवासों का भली भाँति निरीक्षण करता हुआ, महल को चारों ओर से पूरी तौर से देख लेने की इच्छा से, उसके चारों ओर फैले उपवन में प्रविष्ट हो गया।

एक तो सघन और हरी लताओं से परिवेष्टित वृक्षों की पंक्ति, दूसरे अँधेरी रात, और तीसरे इस जटाधारी फ़क़ीर ने नीला कञ्चुक पहन रखा था। अतः देखने वालों द्वारा भी न देखा जाता हुआ वह, महल की प्रदक्षिणा सा करके, अपने काम के सारे गुप्त स्थानों को भली-भाँति देख कर प्रसन्न होकर मन ही मन कहने लगाः

"इस वेचारे शाइस्ता खाँ पर आक्रमण करना असम्भव या कठिन नहीं है। इसकी सेना नगर से बाहर रहती है। महल की रक्षा करने वाले सैनिक भी महल से काफी दूर घुड़सालों में रहते हैं और उनमें से केवल पांच-छः अपने नियत

पृष्ठदेशे विशालमुद्यानम्। नात्र रात्रौ कोऽपि मनुष्यो विचरति। उद्यानं परितस्तु लोह-दण्ड-प्रवारः, यमुल्लङ्घ्य यतस्तत एव प्रविविक्षुः प्रवेष्टुमर्हति, यत्राऽऽच्छन्नशरीराश्च परस्सहस्राः परैरलक्ष्यमाणाः समस्तां रात्रिमतिवाहयितुं पारयन्ति। प्रासादे च बहवो गवाक्षा ग्रीष्मकालेऽस्मिन्नुन्मुद्रिता एवोपेक्ष्यन्ते। "कः समायाति ? परास्तो महाराष्ट्र-हतकः"–इति विश्वसन्तः प्रहरिणो रक्षकाश्च निर्निस्त्रिशा एव निश्चर्माण एव च सोपेक्षं परस्परं हसन्तो हासयन्तश्च स्वप्रहरमतिवाहयन्ति। प्रासादान्तःस्थितानां चमूपतेः सहवासिनां च पानैरेव शयनैरेव च तथा समयो व्यत्येति; यथा ते का प्राची ? का प्रतीची ? कः परकीयः ? क आत्मीयः ? दिनं वा ? रजनी वा ? शयामहे वा ?

सोपहासमुक्तिः। पृष्ठदेशे = पाश्चात्यभागे। लोहदण्डप्रावारः = आयसदण्डवृतिः। आच्छन्नशरीराः = प्रावृतदेहाः। परैः = शत्रुभिः। अलक्ष्यमाणाः = अज्ञायमानाः। उन्मुद्रिताः = उद्‌घाटिताः। उपेक्ष्यन्ते = निर्विचारं त्यज्यन्ते। निर्निस्त्रिशाः = खड्गशून्याः। निश्चर्माणः = त्यक्तफलकाः, "फलकोऽस्त्री फलं चर्म" त्यमरः। सोपेक्षम् = उपेक्षया सहितं यथा स्यात् तथा। स्वप्रहरम् = स्वयामम्। पानैः = मद्यगोष्ठीभिः। शयनैः = रतिफलकैः स्वापैः। व्यत्येति = व्यतिक्रामति। परस्यायं परकीयः = अनात्मीयः। गहाद्यन्तर्गणसूत्रेण कुक् छश्च।

समय पर आकर द्वार पर पहरा देते हैं। महल के पीछे बहुत बड़ा उद्यान है, जिसमें रात में किसी आदमी का पहरा नहीं रहता। उद्यान के चारों ओर लोहे की सलाखों से बनी चहार दीवारी है। घुसना चाहने वाला जहाँ से भी घुसना चाहे इसे पार कर अन्दर घुस आ सकता है; और इस उद्यान में हजारों नक़ाबपोश इस तरह सारी रात गुजार सकते हैं कि दुश्मन देख या जान न पाये। महल में अनेक रोशनदान हैं जो इस गर्मी के मौसम में खुले ही छोड़ दिये जाते हैं और जिनकी ओर कोई ध्यान ही नहीं देता है। 'बेचारा मराठा तो हार गया, अब कौन आयेगा, इस विश्वास से पहरेदार और प्रासादरक्षक सैनिक बिना ढाल-तलवार लिये ही, उपेक्षापूर्वक, परस्पर हँसते-हँसाते हुए, अपना समय

उद्बुध्यामहे वा ? श्वेतो वा ? कृष्णो वा ? इत्यादि चिरेण विदन्ति" इति।

पुनः परावृत्य प्रधानद्वारमागत्य तदधिकृतस्य प्रतीहारस्यैकस्य सम्मुखमागत्य वाम-हस्तेन वाद्यं झणज्झणत्कुर्वन् तस्यैव मुखमण्डले दत्त दृष्टिरनिमेषपातमवलोकयन्नस्थात्।

स च "स्वामिन्! किं कथ्यते?" इति द्विस्त्रिश्चापृच्छत्। अस्मिंश्चोत्तरमददत्येव तथैवावलोकयति; "स्वामिन्! अपि भोक्ष्यते किमपि?" इति सादरमुवाच।

स तु किञ्चित् मस्तकं कम्पयन्, मौनेनैव प्रतिनिवृत्य, निवर्तन-

आत्मनोऽयमात्मीयः। गहादित्वाच्छः। श्वेतो वा कृष्णो वा, लोकोक्तिरेषा। एतद्विवरणफलकान्येव पूर्वोक्तपदानि।

परावृत्य = यथागतमागत्य। अनिमेषपातम् = निमेषानप्यपातयित्वेत्यर्थः। क्रियाविशेषणम्। अस्थात् = निवृत्तगतिकोऽभूत्। स्थाधातोरत्रैवार्थे मुख्यः प्रयोगः। "तिष्ठतु भवानि"त्यागन्तुकं प्रति पण्डितराजशिवकुमारमिश्रकथने "किमपराद्धं मये"ति तदागन्तुककथाऽत्रानुसन्धातव्या। स्वामिन्! = "साई" इति हिन्दी। यवनसाधोः सम्बोध्यमानत्वात्।

स तु तूष्णीकः सन्नतिष्ठतेति सम्बन्धः। मस्तकं कम्पयन्, न भोक्ष्यामीति

बिताते रहते हैं, और महल के अन्दर रहने वाले सेनापति के साथियों का समय तो शराब पीने और सोने में ही इस तरह बीत जाता है कि वे पूरब पश्चिम, अपना-पराया, दिन रात, सोना-जागना और स्याह-सफेद भी बड़ी देर में जान पाते हैं।

फिर लौट कर, मुख्य द्वार पर आकर, वहाँ पर नियुक्त एक प्रतिहार के सामने आकर, बाँएँ हाथ से बाजे को झन-झन बजाता हुआ वह उसी प्रतीहार के मुँह की ओर निर्निमेष नेत्रों से देखता हुआ खड़ा हो गया। उस प्रतीहार ने दो तीन बार, 'महात्मन्! आप क्या कहते हैं' यह पूछा पर जब फकीर बिना कुछ उत्तर दिये उसे उसी प्रकार देखता हुआ खड़ा रहा, तो उसने आदर पूर्वक कहा, 'महात्मन्! क्या आप कुछ खायेंगे?'

वह फ़कीर थोड़ा सा सिर हिलाकर (मैं कुछ न खाऊँगा, इस प्रकार का

मार्ग एव कतिपयानि पदानि गत्वा, घण्टापथस्य प्रान्तस्थायामेकस्यामुन्नत-वेदिकायां पश्चिमाभिमुखम् उपविश्य पातितोभयजानु स्थित्वा वाद्यं पुरस्तात् संस्थाप्य मुखमधःकृत्य तूष्णीकः समतिष्ठत। तथा स्थितस्यैव तस्य हृदये विचाराकूपारस्य तरङ्गा इव बहुभङ्गमाकलयन्, यद्——

"अहह ! कथमिव समायातोऽयं दुर्भाग्यमयः समयः कोङ्कणदेशस्य, यद् यत्र गरुडाङ्किता महाध्वजाः समद्धूननैर्गगनतलोद्धूयमानपवनमपावयन्; तत्र भारताभिजनसघन-कलङ्का इव नील-

---

बोधनायेदम्। निवर्त्तनमार्ग एव = येन पथा निवृत्तस्तेनैव कियद् दूरं गत्वेत्याशयः। घण्टापथस्य = राजमार्गविशेषस्य। प्रान्तस्थायाम् = समीपवर्तिन्याम्। उन्नतवेदिकायाम् = उच्चायां परिष्कृतभूमौ। पातिते उभयजानुनी यस्यां तदिति क्रियाविशेषणम्। विचाराकूपारस्य = भावनासागरस्य। बहुभङ्गमिव = आघातप्रतिघातमिव। आकलयन् = व्यधुः। स विविधविचारं कृतवानित्यर्थः।

गरुडाङ्किताः = गरुडचिह्निताः। विष्णुमन्दिरवत्त्वात्। गगनतले = छायापथे। उद्धूयमानम् = सञ्चरन्तम्। पवनम् = समीरणम्, स्वयमपि पवित्रताहेतुमिति पवनशब्दव्यङ्ग्यम्। अपावयन् = पूतमकार्षुः। भारताभिजनस्य = भारतदेशस्य, सघनाः = सान्द्रीभूताः, कलङ्का इव। स्वभावत एव

संकेत देकर) मौन धारण किये हुए ही लौट कर, उसी रास्ते पर कुछ कदम चलकर, सड़क के पास ही बने एक ऊँचे चबूतरे पर पश्चिम की ओर मुँह कर के, दोनों घुटने जमीन पर टेक कर, बाजे को आगे रख कर, मुँह नीचा कर के चुपचाप बैठ गया। इस प्रकार बैठे हुए उस फ़कीर के हृदय पर विचार सागर की तरङ्गों ने अनेक घातप्रतिघात किये। वह सोचने लगा—

"हा ! कोंकण देश का कैसा दुर्भाग्यपूर्ण समय आ गया है कि जहाँ गरुड-चिह्न से अङ्कित बड़े-बड़े ध्वज फहर-फहर कर आकाश में सञ्चरण कर रही वायु

ध्वजाः समुद्धूयन्ते, यत्र कोटि-जन्मार्जित-महापातक-दीर्घ-दाव-दावानल-ज्वाला-मालाभिरिव हरि-नाम-घोषणाभिर्व्यापूर्यत वसुधा; तत्र कर्ण–कषायाः चीत्कारमयाः हरि–हर–निन्दा–नादाः कर्णौ स्फोटयन्ति। यत्र कदा जन्माष्टमी ? कदा रामनवमी ? कदैकादशी ? कदा प्रदोषः ?—इति पृच्छा समश्रूयत पण्डित-मण्डलेषु; तत्र हि कदा 'मोहरमः ? कदा रामयानम् ?'—इत्यादिराकर्ण्यते

नीलध्वजपटस्य भारतीयसघनकलङ्कत्वेनोत्प्रेक्षणम्। **नीलध्वजाः** = कृष्णपताकाः, सचन्द्रा हरिद्वर्णा यवनध्वजा भवन्ति। **कोटिजन्मभिः** = असङ्ख्यातजननैः, **अर्जितानि** = सञ्चितानि, यानि **महापातकानि** = ब्रह्महत्यादीनि—

"ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह॥" इति

मानवं शासनम्, तान्येव **दीर्घदावः** = महाकाननम्, तस्य **दावानलः** = वनाग्निसदृशः, रूपकम्। भस्मीकरणं रूपणहेतुः, तस्या **ज्वालामालाभिरिव** = अर्चिस्ततिभिरिवेत्युत्प्रेक्षा। **हरिनामघोषणाभिः** = भगवन्नामोच्चारणैः। नाम्नि दहनत्वं तदुच्चारणे च ज्वालामालात्वमारोपितमिति ध्येयम्। **व्यापूर्यत** = पूरिता। **कर्णकषायाः** = श्रोत्रवेधकाः। श्रवणानर्हा इति यावत्। **चीत्कारमयाः** = शब्दविशेषमयाः। अत्र "वांग" इति यावनप्रसिद्धे तात्पर्यम्। **हरिहरनिन्दानादाः** = देवगर्हणाशब्दाः। उपलक्षणं हरिहरपदं देवमात्रस्य। रमयतीति रमः, मोहस्य रमो मोहरम इति संस्कृतशब्दता। "मुहरम"

को पवित्र किया करते थे वहीं, भारत देश (भारतीयों) के सघन कलङ्क के से काले झण्डे फहराते हैं; जहाँ अनेक जन्मों में अर्जित महापातक रूप महावनों के लिये दावानल की लपटों के समान भगवान् के नामों के उच्चारण से पृथिवी मण्डल गूँजा करता था, वहीं कानों को वेधने वाले, चीत्कारपूर्ण विष्णु और शिव आदि देवताओं की निन्दा के स्वर कानों को फोड़े डाल रहे हैं; जहाँ पण्डित- मण्डली में 'जन्माष्टमी कब है ? रामनवमी कब है ? एकादशी कब है ? प्रदोष कब है ?' इस प्रकार के प्रश्न सुनाई देते थे, वहीं अब मौलवियों के 'मोहर्रम कब है ?' 'रमजान कब है ?' इस प्रकार के अरबीभाषामय

आरब्य–भाषामयो मौलिवीनां वचन—विन्यासः। यत्र विपणिषु सर्वदा द्राक्षा रम्भा आम्राणि नारिकेलानि दाडिम्बानि बीजपूराणि जम्बीराणि लिकुचानि पनसानि च व्यक्रीयन्त; तत्राधुना वर्तिकाः तित्तिराः कुक्कुटाः लावाः कलविङ्काः सारसाः श्येनाः उलूकाः तत्तदण्डानि च विक्रीयन्ते । यत्र विशालतिलकाः कलितरुद्राक्ष–तुलसी–कमलाक्ष–मालिकाः ऊर्णा–कौशेय–मात्र–वसनाः काष्ठ—पादुकारोहिणः भगवन्नामामृत–रस–रसन–रसिक–रसनाः विहित-तीर्थ-

---

इति लोके । एतद्दिन एव मोहमदो घातितः । **रामयानम्** = "रमजान" इति लोके । **नारिकेलानि** = कूर्चशीर्षकाणि । "नारिकेलो दृढफलो लाङ्गली कूर्चशीर्षकः" । **दाडिम्बानि** = लोहितपुष्पकाणि, "दाडिमः करको दन्तबीजो लोहितपुष्पकः" । **बीजपूराणि** = मातुलुङ्गानि । "बीजपूरो मातुलुङ्गो रुचकः फल पूरकः" । **लिकुचानि** = डहुफलानि । "लिकुचो लकुचो डहुरि" त्यमरः । "वडहर" इति हिन्दी । **पनसानि** = कण्टकिफलानि, "कटहर" इति हिन्दी । **वर्तिकाः** = 'वटेर' इति हिन्दी । **लावाः** = लघुर्वर्त्तिकाः । **कलविङ्काः** = जलपक्षिणः । **विशालं तिलकं** येषां ते । **कलिताः** = धारिताः, रुद्राक्षस्य तुलस्याः कमलाक्षस्य च मालिका यैस्तैः **ऊर्णा** = मेषादिलोम, **कौशेयम्** = कृमिजम्, तन्मात्राण्येव **वसनानि** = वासांसि येषां ते । ऊर्णादिवस्त्राणां वातसंसर्गमात्रतः शुद्धचभिधानात् पूजाभोजनादिषु प्रायो व्यवहरन्ति तान्येव धार्मिकाः । **काष्ठपादुकामारोढुं** शीलं येषां ते । **काष्ठपादुका** = "खडाऊ" इति हिन्दी । भगवन्नामैव **अमृतरसः** = सुधारसः, तस्य **रसने** = आस्वादने, **रसिकाः** =

वाक्य सुनाई देते हैं । जहाँ बाजारों में सदा अंगूर, केला, आम, नारियल, अनार, वीजपूर नीबू, बड़हल और कटहल बिका करते थे, वहीं अब वटेर, तित्तिर, मुर्गे, लवा, गौरैया, सारस, बाज, उलूक पक्षी तथा उनके अण्डे बेचे जाते हैं । **जहाँ लोग,** विशाल तिलक लगाने वाले, रुद्राक्ष, तुलसी और कमलाक्ष की माला धारण करने वाले, केवल ऊनी और रेशमी (पवित्र) वस्त्र धारण, करने वाले लकड़ी की खड़ाऊँ पहनने वाले, भगवन्नाम रूप अमृत रस का रसास्वादन

सार्थ-सञ्चरण-चरणाः स्वोचिताचाराचरण-मात्र—व्यसनिनो महात्मानः सप्रश्रयं सस्तवं सपादस्पर्शं च प्राणम्यन्त; तत्र त एवाधुना

संलग्नाः, **रसनाः** = जिह्वा येषां ते । अनुप्रासोऽत्राग्रे च ।

"नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः ।
तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः ॥
साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥
अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः ।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तमृगैरिव ॥"

इत्यादिविधायकवचनसमूहेन नामोच्चारणविधिः प्रदर्शित इति ज्ञेयम् । नात्रत्यफलश्रुतेरर्थवादतेति **श्रीकरपात्रिचरणानां** सङ्कीर्त्तनमीमांसायां स्फुटम् । विहितं **तीर्थसार्थेषु** = वदरी-जगन्नाथ-रामेश्वर--द्वारिकादिपूततमस्थानसमूहेषु, **सञ्चरणम्** = भ्रमणम्, यैस्तादृशाः, **चरणाः** = पादाः, येषां ते । तीर्थभ्रमणस्य स्वर्गापवर्गादिफलं शतशः पुराणेतिहासेषु निरूपितम् । **स्वोचितानाम्** = स्वस्ववर्णाश्रमादियोग्यानाम्, वेदशास्त्रविहितानाम् **आचाराणाम्** = शौचस्नानसन्ध्यावन्दनादिनित्यनैमित्तिककाम्यानुष्ठानानाम्; **आचरणमात्रम्** = पालनमेव, **व्यसनम्** = प्रतिदिवसकृत्यम्, येषां ते । यथा मद्यादिदुर्व्यसननिरता न कदाचिदपि परित्यजन्ति तानि तथा न कदाचिदपि नैत्यिकाद्यनुष्ठानं नानुतिष्ठन्तीति भावः । व्यसनपदस्वारस्येन चैतदेवैकं सत् व्यसनं न तु मद्यपानादिव्यसनमिति ध्वनयति । **महान्** = सत्त्वातिशयसम्पन्नः, **आत्मा** = जीवात्मा येषां ते । आत्मनि महत्त्वं च निर्दूषणत्वम् । नित्यमुक्तस्वभावो हि जीवः कर्मपाशवद्धोऽशुद्धाज्ञवद्ध इव लक्ष्यते, स्वस्ववर्णाश्रमोचितकर्त्तव्यव्रातसमनुष्ठानेन चाज्ञानहाने स्वस्वरूपं परिचिनोति ।

करने में रसिक रसना वाले, अनेक तीर्थों का भ्रमण कर चुके चरणों वाले अपने (वर्ण और आश्रम के) अनुरूप आचरण के पालन में तत्पर **महात्माओं को विनयपूर्वक, स्तुतिपूर्वक और चरणस्पर्शपूर्वक प्रणाम किया करते थे; वहाँ आज उन्हीं महात्माओं की**, गलियों, सड़कों, सरोवर-तटों, उद्यानों,

वीथीषु, राजपथेषु, तडाग-तटेषु, उद्यानेषु, विपणिषु, समाजेषु च महामांस-डक्कार-पूतिगन्ध-सम्बन्धान्धीकृत-पारिपार्श्विकैः चिर-जलानवगाहनोद्भूत-महामलावलि-मलीमसैः मद्यस्वेद-निष्ठ्यूत-कर्णकिट्ट—सिङ्घाण—दूषिकादि–विविध–मल—लिप्त—चिराक्षालित-मलिन-वसनैः वारवधूच्छिष्ट-भोजिभिः दुराचार-हतकैरवहेल्यन्ते;

तत्र कृतश्रमाश्च महात्मान इत्युच्यन्ते । अथवाऽऽत्मपदमन्तःकरणपरमाश्रित्य ऋजुबुद्धिमोदाय व्याख्येयम् । **सप्रश्रयम्** = सनम्रतम् । **सस्तवम्** = स्तुतिपूर्व-कम् । **प्राणम्यन्त** = समभिवाद्यन्त । कर्मणि प्रत्ययः । **वीथीषु** = लघुपथेषु । "गल्ली" इति हिन्दी । **समाजेषु** = मानवसङ्घेषु । **महामांसस्य** = गोमांसस्य, **डक्कारैः** = उद्गारैः, "डकार" इति हिन्दी । यः **पूतिगन्धः** = दुर्गन्धः, **तत्सम्ब-न्धेन** = तत्संसर्गेण, **अन्धीकृताः** = व्यर्थचक्षुष्कीकृताः, **पारिपार्श्विकाः** = समीपवर्त्तिनः, यैस्तैः । **चिरजलानवगाहनेन** = वहोः कालाद् वारिनिमज्जना-भावेन, **उद्भूतानाम्** = सञ्जातानाम्, **महामलानाम्** = अतिमलिनतानाम्, **आवलिभिः** = पङ्क्तिभिः, **मलीमसैः** = मलिनैः । **मद्यस्वेदः** = सुराघर्मः । **निष्ठ्यूतम्** = थूत्कारः । **कर्णकिट्टम्** = कर्णमलम् । **सिङ्घाणम्** = नासिका-मलम् । **दूषिका** = नेत्रयोर्मलम् । परस्परमेतेषु द्वन्द्वः । एतदादिभिः । **विविधैः** = नानाप्रकारैः, मलैः **लिप्तानि** = व्याप्तानि, **चिरात्** = वहोः कालात्, **अक्षालि-तानि** = अधौतानि, अत एव च **मलिनानि** = अत्यधिकमलिनताभाञ्जि, **वस-नानि** = वस्त्राणि, येषां तैः । "दूषिकानेत्रयोर्मलम् । नासामलं तु सिङ्घाणम्" इत्यमरः । वीभत्सरसः । **वारवधूनाम्** = वेश्यानाम्, **उच्छिष्टानि** = भुक्ता-वशिष्टानि, भोक्तुं शीलं येषां तैः । **दुराचारहतकैः** = आचारविरहितैः पापिभिः ।

बाज़ारों और सभाओं में; खाये हुए गोमांस की डकार की दुर्गन्ध से समीप-वर्ती लोगों को अन्धा वना देने वाले (लोगों में जुगुप्सा उत्पन्न कर देने वाले), वहुत दिनों से स्नान न करने के कारण उत्पन्न मैल से गन्दे शरीर वाले, मदिरा, पसीना, थूक, नाक का मैल, आँख का मैल आदि नाना प्रकार की गन्द-गियों से युक्त और अधिक दिनों से धोये न जाने के कारण **मैले कपड़ों वाले,**

अवधीर्यन्ते, गालि-प्रदान-पुरःसरं तिरस्क्रियन्ते, क्वचन ताड्यन्ते, निःसार्यन्ते च ।

अहह ! सम्प्रति बहवः सरोदनं सकष्टं तिलकादिधारण-मर्य्यादां त्यक्तवन्तः, अपरे च व्याघ्र-वदनाघ्राण-साहस-सोदर्य-साहसोपबृंहिताः, कृपाण-धारास्विव धावन्तः प्राणानगणयन्तोऽधुनाऽपि "हरे ! कृष्ण ! दामोदर ! महादेव ! राघावर ! सीताराम ! नारायण ! वामन !

अवहेल्यन्ते = तिरस्क्रियन्ते । अवधीर्यन्ते इत्यपि तदर्थकम् । तिरस्कारातिशय-द्योतनाय त्रितयप्रयोगः । ताड्यन्ते=प्रह्रियन्ते । निःसार्यन्ते = बहिः क्रियन्ते, गेहादिभ्यः स्थानशून्याः क्रियन्त इति यावत् ।

व्याघ्रवदनाघ्राणम् = शार्दूलमुखचुम्बनम् एव साहसम् = बलकर्म तत्सोदर्यम् = तत्समानोदरे शयितम्, तुल्यमिति यावत् । यत् साहसम् = बल-कर्म तेन । उपबृंहिताः = संवलिताः, व्याघ्रमुखनिपतनेऽपि भयशून्या इति यावत् । कृपाणधारासु = असिधारासु । धावन्तः = त्वरया गच्छन्तः । अतिशयोक्तिः लोकोक्तिश्च । हरति पापानीति हरिस्तत्सम्बुद्धौ हे हरे ! "हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः" इति पुराणम् । कृषतेर्नङि कृष्णः, पापानि कर्षतीति व्युत्पत्तिः । औपनिषदा अपि "कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः । तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते" इति । दाम = रज्जुः, उदरे = कटौ, यस्य तत्सम्बुद्धौ । कृष्णो बद्धो गोपिकया यशोदयेति ब्रह्मवैवर्तादिषु स्फुटम् ।

तथा वेश्याओं की जूठन खाने वाले दुराचारी अवहेलना करते हैं, अपमान करते हैं, गाली देकर तिरस्कार करते हैं, कहीं-कहीं (महात्माओं को) मारते हैं और निकाल भी देते हैं ।

हा ! अब तो बहुतों ने रोते हुए, कष्टपूर्वक तिलक आदि धारण करना भी छोड़ दिया है । व्याघ्र का मुख सूँघने के साहस के समान साहस वाले, मानो कृपाण की धारा पर दौड़ते हुए, और प्राणों की चिन्ता न करते हुए, कुछ दूसरे लोग अब भी कलियुग के पापों को दूर करने वाले, अमृत की मधुरिमा को भी पराजित करने वाले, नारद के द्वारा वीणा बजा कर गाये जाने योग्य, भगवान् के हरि, कृष्ण, दामोदर, महादेव, राघावर, सीताराम, नारायण, वामन, विष्ण,

वैकुण्ठ ! रमापते ! गौरीपते !" इत्यादीनि कलिमल-मथनानि अधरीकृत-सुधा-माधुर्याणि सवीणा-वादं नारदेन रसनीयानि भगवन्नामानि उच्चारयन्तः, कलित-परम-पवित्र-वेषाः, सहमाना अपि वाचाटानामरुन्तुदा वाचः, कथं कथमपि स्वधर्मं निर्वहन्ति ।

अहह ! धिगस्मान् ! ये दुराचाराणामीदृशमात्मधिक्कारमीक्षामहे, सहामहे, जीवामश्च । म्लेच्छा एव भारत-साम्राज्य-सिंहासन-

---

सीतया सहितो रामः सीतारामस्तत्सम्बुद्धौ । मायाप्रावल्यवोधनाय सीताशब्दस्याद्यता । नारायणः="आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः । ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः" इति निरुक्तिः । वैकुण्ठ= विष्णो ! "वैकुण्ठो विष्टरश्रवाः" इत्यमरः । कलेः=तुरीययुगस्य, मलानाम्= पापानाम्, मथनानि=दूरीकरणानि । "हरेर्नामैव नामैव नामैव गतिरुच्यते । कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा" इति वचनात् । अधरीकृतम्=निम्नीकृतम्, सुधायाः माधुर्यं यैस्तानि । नारदेन=ब्रह्मसूनुना परमभागवतेन । मनस एव नारदसंज्ञा पौराणिकैः कृता, तस्य च चञ्चलत्वमभिलक्ष्यैकत्रास्थायित्वं द्विघटीतोऽधिककालं शापादिना प्रतिपादितमिति पुराणमतदीपिकायामस्माभिः स्पष्टीकृतम् । रसनीयानि=सरसास्वादं गेयानि । कलितपरमपवित्रवेषाः=स्वीकृतातिपूतनेपथ्याः। वाचाटानाम्=असद्बहुभाषिणाम्, "आलजाटचौ बहुभाषिणि" सू० "कुत्सित इति वक्तव्यमि"त्येतत्सूत्रस्य वार्त्तिकम् । सम्यग् यो बहु भाषते स तु वाग्मी । अरूंषि तुदन्तीत्यरुन्तुदाः=मर्मवेधकाः । "अरुंतुदं तु मर्मस्पृगि"त्यमरः ।

दुष्टा आचारा येषां तेषां दुराचाराणाम्=सदाचारविरहितानाम् । ईक्षामहे=पश्यामः । दर्शकास्तूदासीना अपि भवन्तीति सहामहे । अथ किमपि

रमापति, गौरीपति आदि नामों का उच्चारण करते हुए, परम पवित्र वेश धारण किये हुए, वकवादियों के मर्मवेधी वचनों को सहन करते हुए, किसी तरह अपने धर्म का पालन कर रहे हैं ।

हा ! हमें धिक्कार है कि हम दुराचारियों द्वारा किये गये इस प्रकार के अपमान को देखते हैं, सहते हैं और जीवित हैं (मर नहीं जाते)। म्लेच्छ

मधितिष्ठन्तु, धर्मेण च शासनमूरीकुर्वन्तु। "नराणां च नराधिपः"—इति मुद्रया स्वभाव-सिद्धाऽस्माकं राजभक्तिरुद्रेक्ष्यति, किन्तु केयं व्यर्थं प्रजा-हत्या, लुण्ठनम्, बलात्कारश्च। नहि लुण्ठकेषु कस्याऽपि प्रीतिर्भवति। (निःश्वस्य)

अहह! ग्रहा एव प्रतिकूलाः, विधिरेव वामः, समय एवाऽशुभमयः, अदृष्टमेव निकृष्टम्, भवितव्यमेव निन्दितव्यं भारतवर्षस्य। अन्यथा को वा भटम्मन्यो भारतीय–क्षत्रियाणां बालस्यापि क्रीडा-चन्द्रहास-चमत्कारमपि सोढुमलम्। परन्तु ऐक्यमेव न भवत्यस्मद्देशीयानाम्,

---

कर्तुमशक्नुवानैः सोढव्यमेव तत्राह **जीवाम** इति। अशक्तैर्जीवनं त्याज्यम्। "सतां माने म्लाने मरणमथवा दूरसरणमि"ति हि मनस्विगता प्रतीतिः। **म्लेच्छाः** = अपशब्दभाषिणः। असंस्कृतभाषाभाषिण इति यावत्। **धर्मेण** = मानवादि-प्रदर्शितशासनविधानेन। **ऊरीकुर्वन्तु** = अङ्गीकुर्वन्तु। **स्वभाव-सिद्धा** = प्राकृतिकी। भारतीया हि प्रायः प्रकृत्या राजप्रवणा आसन्। यद्यपि समये समये दुष्टराजमारणमपि कृतमेव तैः, यथा वेनेतिवृत्ते मनुनैव प्रदर्शिते स्पष्टम्। **उद्रेक्ष्यति** = एधिष्यते। **लुण्ठकेषु** = राजनामधारिषु चौरेषु।

ग्रहाः = शनैश्चरादयः। **विधिः** = दैवम्, **अदृष्टम्**–भागधेयम्। नहि सर्वज्ञातिरिक्तः कोऽपि द्रष्टुं शक्नोति तत्। **भवितव्यम्** = अवश्यभावि। नीलकण्ठनग्नत्वादिना तदवार्यता स्फुटा। आत्मानं भटं मन्यत इति **भटम्मन्यः** = "आत्ममाने खश्च"। **क्रीडाचन्द्रहासचमत्कारम्** = लीलाखड्गसञ्चालन-

---

लोग ही भारत-साम्राज्य के सिंहासन पर बैठ जायें और धर्मपूर्वक शासन करें; राजा प्रजा का देवता है, ऐसा मानने वाले हम लोग स्वभावतः राजभक्त होते हैं अतः म्लेच्छ शासकों के प्रति भी हममें राजभक्ति आ ही जायेगी; परन्तु प्रजा की यह अकारण हत्या, यह लूट, यह बलात्कार कैसा ? लुटेरों से तो कोई प्रेम नहीं करता ! (निःश्वास लेकर)

हा ! भारतवर्ष के ग्रह ही प्रतिकूल हैं, विधि ही वाम है, दिन ही बुरे हैं, भाग्य ही खराब है, भविष्य ही बुरा (निन्दा के योग्य) है, अन्यथा अपने को वीर मानने वाला कौन व्यक्ति भारतीय क्षत्रियों के बच्चे के तलवार के खेल

यदि नाम सर्वेऽपि भारताभिजन-वीर-वराः सहयुञ्जेरन् तद् वयं क्षणेन पारावारमपि मरूकुर्मः; बन्धुभिरपि कृत-वैरस्य महानीचस्य एतस्य मर्दनं तु को नाम कठिनो व्यापार ? परन्तु राजपुत्र-देशीय-महाराजानामन्यतमः प्रधान-वीरोऽयं महाराजो मरु-धराधीश्वरो यवनानामेव पार्श्वग्रहतामङ्गीकृत्य अस्माभिरेव सह योद्धुं ध्वजानुद्धूय, पुण्यनगरनेदीयस्येव प्रकाण्डभूभागे शिबिराण्यधितिष्ठति। राजपुत्र-गण-शिरोमणिरामेर-देशाधीशश्च दिल्लीश्वरस्यैव पृष्ठ-पोषकः। अयोध्याप्रान्तस्थाः क्षत्रियकेसरिणश्च पूर्णतया परवन्तः संवृत्ताः-इति श्रूयते। कोङ्कणदेशे तु विजयपुरादीनां प्रधानतम-स्थानानां यवना एवाऽध्यक्षाः, वङ्गदेशे तु प्रायः क्षत्रिया एव न सन्ति, सन्तोऽपि च युद्ध-विद्यां न जानन्ति। केवलमेक आयुष्माञ्छिववीर एव धर्मे बलात्कारमेत-

---

कौतुकम्। **मरूकुर्मः** = शुष्कतामापादयामः। **पार्श्वग्रहताम्** = पक्षपातिताम्। **प्रकाण्डभूभागे** = विशालप्रदेशे, नात्र प्रशंसावाच्ययं प्रकाण्डशब्दः, येन परनिपातः सम्भाव्येत। **आमेरदेशाधीशः** = अम्बराधिपतिः। **क्षत्रियकेसरिणः** = सिंहसदृशा राजानः, **परवन्तः** = पराधीनाः।

का चमत्कार सह सकने में भी समर्थ है ? परन्तु हमारे देशवालों में तो एकता ही नहीं होती। यदि भारतवर्ष के सभी वीर पुरुष संगठित हो जायें, तो हम क्षण भर में ही समुद्र को भी मरुस्थल में परिणत कर दें, अपने बन्धु बान्धवों से भी वैर करने वाले इस महानीच को समाप्त करना कौन कठिन काम है ? किन्तु राजस्थान के राजाओं में अन्यतम, प्रमुख वीर, मरुदेश के महाराज, यवनों का ही पक्ष ग्रहण कर के, हम लोगों से ही लड़ने के लिये, झण्डा फहरा कर, पूना नगर के पास ही एक बड़े भूभाग में पड़ाव डाले पड़े हैं। राजपूतों के शिरोमणि, आमेरनरेश भी दिल्ली के सुल्तान के ही पक्ष के समर्थक हैं। अयोध्या-प्रान्त के क्षत्रिय, सुनते हैं, पूर्णतया पराधीन हो गये हैं। कोंकण देश में बीजापुर आदि प्रमुख स्थानों पर यवन ही राज्य कर रहे हैं। बङ्गाल में तो प्रायः क्षत्रिय ही नहीं हैं, जो हैं, भी वे युद्ध करना नहीं जानते। केवल अकेले आयुष्मान्

मसहमानः सर्वदा यवनैर्युद्धाय सज्जति, न चैतस्य ऋते परमात्मनः कोऽपि साहाय्यं विदधाति।

हा भारत ! किं लुण्ठकैरेव भोक्ष्यसे ? हा वसुन्धरे ! किं दीन-प्रजानां रक्तैरेव स्नास्यसि ? हा सनातनधर्म ! किं विलयमेव यास्यसि ? हा चातुर्वर्ण्य ! किं कथावशेषमेव भविष्यसि ? हा मन्दिर-वृन्द ! किं धूलिसादेव सम्पत्स्यसे ? हा साङ्गवेद ! किं भस्मतामेव प्राप्स्यसि ? अहह !! धिग् धिग् ! रे ! कलिकाल ! यस्त्वं रक्षकानेव भक्षकान् विदधासि !

हन्त भगवन् ! "महति दुराचारे प्रवृत्तोऽवतरामि" इति प्रतिज्ञात-वानसि, तत् किमितोऽप्यधिकं दुराचारमपेक्षसे ? अहह !! परस्कोटया मूर्त्तयो भज्यन्ते, असङ्ख्यानि मन्दिराणि भूमिसात् क्रियन्ते, राशीकृतानि वेदादि-पुस्तकानि ज्वालाजालैर्ज्वाल्यन्ते, कुलीनानामपि कन्यकाः

अवतरामि = मानवे लोके गृहीतदेहो भवामि।
'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ! ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥'

शिवाजी ही, धर्म का अपमान सहन न करते हुए यवनों से युद्ध करने के लिये सदैव सन्नद्ध रहते हैं, और भगवान् के सिवा अन्य कोई भी इनकी सहायता नहीं करता।

हा भारतवर्ष ! क्या लुटेरे ही तुम्हारा उपभोग करेंगे ? हा वसुन्धरे ! क्या दीन-दुःखी प्रजा (सन्तान) के रक्त से ही नहाओगी ? हा सनातनधर्म ! क्या विलीन ही हो जाओगे ? हा वर्णव्यवस्थे ! (ब्राह्मणादि चारों वर्णों !) क्या तुम्हारी सिर्फ कहानी ही रह जायेगी ? हा मन्दिरसमूह ! क्या धूल में ही मिल जाओगे ? हा ! छः अङ्गों सहित वेद ! क्या समाप्त ही हो जाओगे ? हा ! धिक्कार है ! रे कलियुग, तूने रक्षकों को ही भक्षक बना दिया है।

हा भगवन् ! आपने दुराचार बढ़ जाने पर अवतार लेने की प्रतिज्ञा की है, तो क्या आपको इससे भी अधिक दुराचार की अपेक्षा है ? हा ! करोड़ों मूर्तियाँ तोड़ी जा रही हैं, असङ्ख्य मन्दिर मिट्टी में मिलाये जा रहे हैं, ढेर के ढेर वेदादि ग्रन्थ अग्नि की लपटों के समूह में जलाये जा रहे हैं; कुलीन लोगों की

कदर्य्यहतकैः कुत्सिताभिप्रायेण बलादाच्छिद्यन्ते । शिरश्छेदानाम्, नयनोत्पाटनानाम्, करकर्तनानाम्, जिह्वा-कर्षणानाम्, उदर-विदारणानाम्, शूलारोपणानां च क्रीडा इव क्रियन्ते । याः प्रजाः पूर्वं राजभिरौरस-प्रजा इव प्राणाधिक-प्रेम्णा समपाल्यन्त; ता अधुना निरर्थं निर्दयं लुण्ठ्यन्ते, पात्यन्ते, घात्यन्ते, ज्वाल्यन्ते च । अहह ! नाधुनाऽपि तव हृदये दया सञ्चरति ? भगवन् ! किमिति दीनबन्धु-पदेन सम्बोध्यसे ? यासां भारतीय-प्रजानां दीनतामवलोक्य ग्रावाणोऽपि रुदन्ति ; तासामुपरि करुणामयीं दृष्टिमपि न क्षिपसि ? हन्त ! कियच्छयिष्यसे ? अहह ! अस्माकं महाक्रन्दनकोलाहलैरपि न विद्राव्यते तव निद्रा ? हा ! तवापि कथं व्यामोहः ? गरलं तु धूर्जटिना पीतम्, मधु च दानवैरास्वादि, किन्तु चित्रं यद्, एष

इति हि भगवदीया प्रतिज्ञा । कदर्य्यहतकैः = पापात्मभिः । कुत्सिताभिप्रायेण = बलात्कारकरणाभिलाषेण । उरसो जाता औरस्यः, ताश्च ताः प्रजा औरसप्रजाः = स्वोत्पन्नसन्तानानि । "हृदयादधिजायते" इति श्रुतिः । इवेनोपमा । ग्रावाणोऽपि रुदन्ति अतिशयोक्तिः । गरलम् = विषम् । धूर्जटिना = शम्भुना । मधु = मद्यम् । आस्वादि = कवलीकृतम् । व्यामोहः = मदातिरेक-

---

भी कन्याएँ पापियों द्वारा बुरे इरादों से (बलात्कार के अभिप्राय से) बल-पूर्वक छीनी जा रही हैं । सिर काटने, आँख निकालने, हाथ काट देने, जबान खींच (काट) लेने, और भालों पर उछालने के खेल-से किये जा रहे हैं । जिस प्रजा का पहले, राजा लोग अपनी औरस सन्तान की भाँति प्रेम-पूर्वक-प्राणों से भी अधिक मानते हुए पालन करते थे, वही प्रजा आज अकारण निर्दयतापूर्वक लूटी जाती है, मारी जाती है, और जलाई जाती है । हा ! तुम्हारे हृदय में अब भी दया का सञ्चार नहीं होता ! भगवन् ! तुम्हें दीनबन्धु कह कर क्यों सम्बोधित किया जाता है ? जिस भारतीय प्रजा की दीनदशा देखकर पत्थर भी रो देते हैं, उस पर तुम अपनी करुणामयी दृष्टि भी नहीं डालते ? हा ! कितना (कब तक) सोओगे ? हमारे भीषण रुदन की चीख-पुकार से भी तुम्हारी नींद नहीं टूटती ? हा ! तुम्हें भी कैसा व्यामोह हो गया है ? विष तो शङ्कर ने पिया था और मद्यपान देवताओं ने किया था, पर

विलक्षणस्त्वयि दृश्यते व्यामोहः। त्वं हि राजत-प्रासादो वा क्षीर-सागरो वा दन्ति-दन्त-पर्यङ्को वा कुण्डलितानन्तभोगाऽऽभोगो वा इति किमपि न वेवेक्षि। अगणित-फणावलि-फूत्कृतैरिव वीज्यमानो विमल-कमलोदर-सोदर-सौन्दर्याभ्यां कमल-कोमल-कमला-करतलाभ्यां पादयोः पीडयमानो निःशङ्कं तस्मिन्नेव कोमलतमवेषे शेषे शेषे।

जन्या विचारशून्यता। कार्यकारणयोर्भिन्नदेशत्वादसङ्गतिरलङ्कारः। रजतस्य विकारो राजतः, स चासौ प्रासादः = हर्म्यम्। क्षीरस्य सागरः। दन्ति-दन्तस्य = करिकरस्य, पर्यङ्कः = पल्यङ्कः। कुण्डलितः = कुण्डलाकृतिमुपगतः, अनन्तभोगः = शेषदेहः, स एव आभोगः = अधिष्ठानम्। वेवेक्षि = पृथक् पृथग् विचारयसि। "विजिर् पृथग्भावे" इतिना निपातेनाभिहितत्वान्न राजत-प्रासादादिशब्देषु द्वितीया। एषु टीकाकृतां बहुव्रीहिप्रदर्शनं किमर्थकमिति बुद्धि-मद्भिरवधारणीयम्। अगणितैः = असङ्ख्यातैः, फणावलीनां फूत्कृतैः = फूत्कारशब्दैः। वीज्यमान इव = आसेव्यमान इव। उत्प्रेक्षा। विमलस्य = निर्मलस्य, कमलस्य = पद्मस्य, उदरसोदरम् = मध्यतुल्यम्, सौन्दर्यम् = सुषमा, ययोस्ताभ्याम्। कमलवत् कोमलाभ्यां कमलायाः = लक्ष्म्याः, करतला-भ्याम्। निश्शङ्कम्, अनेन फणावलिवायुसहनक्षमता ध्वनिता। कोमलतमः = नितान्तमृदुः, वेषः = नेपथ्यं, यस्य तस्मिन्। वेषमात्रं कोमलं कृत्यं त्वकोमल-मिति ध्वनिः। शेषे = अनन्ते, शेषे = स्वपिषि। अगणितैरित्यारभ्यानुप्रासः शब्दालङ्कारः। विमलकमलोदर-सोदरसौन्दर्याभ्यामित्यनेन कमलाकरतलयो-र्लालित्यमीषद्रक्तवर्णत्वं च व्यञ्जितम्, कमलाकोमलेत्यनेन च मृदुत्वम्, कोमल-

---

आश्चर्य है कि नशा तुम्हें चढ़ा है। एक विलक्षण व्यामोह तुममें दिखाई दे रहा है। तुम यह भी नहीं समझ पाते कि यह चाँदी का महल है या क्षीर-सागर, हाथीदाँत का पलँग है या कुण्डलित शेषनाग के फनों की शय्या। शेषनाग के अगणित फनों की फुफकार तुम्हें पँखा सा झल रही है, लक्ष्मी के निर्मल कमल के मध्यभाग के समान सुन्दर कमल के समान कोमल हस्तयुगल तुम्हारे चरणों की सेवा कर रहें है, और तुम निःशङ्क होकर उसी कोमलतम वेष

तत् किं जगतः शेषे तव निद्रया भङ्क्ष्यते? अथवा तस्यैव महागरलस्य महामद्यस्य च भगिन्या कनकाङ्गिन्या समालिङ्गित इति पन्नग-कुल-मूलस्य शेष-नागस्य गरलावलीढैर्निश्वासैः प्रतिरोम-कुहरं रञ्जित इति च कलयति काञ्चन मूर्च्छाम्, मत्ततां च। कथमन्यथा क्षीरधि-वेष्टित एव क्षीरधि-कन्यया रमेथाः? किं तु मैवम्, क्षमस्वैना-मनल्प-जल्प-कल्पनाम्। सर्वत्रैवासि, सर्वान् पश्यसि, सर्वं वेत्सि,

---

तमाभ्यामपि ताभ्यां सम्पर्के भगवच्चरणयोः पीडैव सञ्जायते नितान्तकोमलत्वा-दिति। **जगतः** संसारस्य। **शेषे** = समाप्तौ। **भङ्क्ष्यते** = नङ्क्ष्यते। "भञ्जो आमर्दने" भावे तङ्। **तस्यैव** = पुराणादिषु सुप्रसिद्धस्यैव। **महागरलस्य** = सागरोत्थस्य हालाहलस्य। **महामद्यस्य** = वारुण्याः। **भगिन्या** = सहोदरया। समुद्रमन्थने हालाहलादिभिः साकं लक्ष्मीरपि निःसृतेति पुराणेषु स्फुटम्। **कनकाङ्गिन्या** = सुवर्णशरीरया। अतिगौरवर्णयेति यावत्। "धत्तूरः कनकाह्वयः" इति धत्तूरवाची कनकशब्दः। धत्तूरवद्विषमिश्रिताङ्ग्येति ध्वन्यमानोऽर्थः। **इति** = हेतोः मूर्च्छां मत्ततां च कलयसीत्यनेन सम्बन्धः। इतरथा हेतुमाश्रयति-**पन्नगकुलमूलस्य** = सर्पान्वयप्रसूतेः। **शेषनागस्य** = अनन्तस्य। **गरलावलीढैः** = विषमिश्रैः। **प्रतिरोमकुहरम्** = सर्वेषु लोमच्छिद्रेषु। **रञ्जितः** = व्याप्तः। **काञ्चन** = अनिर्वाच्याम्। केवलानुभवैकशरणाम्। पित्रा समुद्रेण वलयितस्य हरेः तत्कन्यकया रमणं मत्तताकृत्यान्नातिरिच्यते। **अनल्पजल्पकल्पनाम्** = बहुविधभाषणरचनाम्। **सर्वत्रैवासि**, विभुत्वात्। **सर्वान् पश्यसि** =

वाले शेषनाग पर सो रहे हो; तो क्या संसार के समाप्त हो जाने पर ही तुम्हारी नींद टूटेगी? अथवा उसी हालाहल (विष) और महामद्य (वारुणी) की बहिन कनकाङ्गिनी (१. सोने के से अंगों वाली अर्थात् गौरवर्ण की और २. धतूरे के समान विषपूर्ण अंगोंवाली) लक्ष्मी से आलिङ्गित होने के कारण, और सर्पकुल के मूल शेषनाग के विषपूर्ण निश्वासों से सारे रोमकूपों के व्याप्त हो जाने के कारण तुम्हें मूर्च्छा आ गई है, और तुम मतवाले हो गये हो, अन्यथा चारों ओर समुद्र से घिरे होते हुए भी समुद्र की कन्या के साथ (उसके पिता के सामने) रमण कैसे करते? लेकिन नहीं ऐसा नहीं है। मेरी, बढ़ चढ़ कर की गई बकवाद की कल्पना को क्षमा करो। तुम सभी जगह हो सभी

सर्वेषां दयसे इति सन्त्यत्र परस्सहस्राणां प्रामाणिकानां वचनानि। येषु विश्वस्य तव सत्ताऽङ्गीक्रियते; कथं तेष्वेव विश्वस्य तवेदृग्गुणिता नाङ्गीकरिष्यते? परमहह! पश्यन्नपि विदन्नपि न दयसे। हन्त! किं कथ्यते, जगदीश्वरोऽसि! तत् किं गजोद्धार-धावन-स्थगितोऽसि? यन्न धावसि। विप्र-रावण-हनन-वनवास-व्रीडितोऽसि? यन्नावतरसि। कंसच्छेदनायास-स्मरणेन वा तूष्णीकोऽसि? चिरन्तन इति वली-

---

सर्वद्रष्टृत्वात्। सर्वं वेत्सि, सर्वज्ञत्वात्। सर्वेषां दयसे, "अधीगर्थदयेषाम्" इति षष्ठी। अत्र = विभुत्वसर्वज्ञत्वादिगुणगणनिलयस्य भगवतः सत्तायाम्। प्रामाणिकानाम् = वेदादीनाम्। नाङ्गीकरिष्यते, यदि वेदादिनिवेद्यमाना तदीया सत्ता सती, तर्हि तन्निवेद्यमानास्तदीया गुणा अपि सन्त्येवेति तात्पर्यम्। जगदीश्वरोऽसि = महाप्रभुरसि। महाप्रभुत्वादेव स्वतन्त्रोऽसीत्यत एव वचनानर्होऽसीति व्यङ्ग्यपरम्परा।

पाणिनेर्न नदी गङ्गा यमुना न स्थली नदी।
प्रभुः प्रभुत्वमापन्नः स्वातन्त्र्यमवलम्बते॥

इत्यादिष्वयमर्थो व्यक्तीकृतः। गजोद्धारे = हस्तिरक्षायाम्। धावनेन = शीघ्रगत्या, स्थगितः = खिन्नः। विप्रस्य = ब्राह्मणस्य, रावणस्य = पौलस्त्यस्य, हननेन वनवासेन च व्रीडितः = लज्जितः। ब्रह्महत्या हि परं व्रीडा-

---

को देखते हो, सब कुछ जानते हो, और सभी पर दया करते हो, यह सिद्ध करने के लिये हजारों आप्त वाक्य (वेदादि) मिलते हैं। जिन आप्त वाक्यों में विश्वास कर के तुम्हारी सत्ता स्वीकार की जाती है, उन्हीं में विश्वास कर के तुम्हारे ये गुण भी कैसे न स्वीकार किये जायें? किन्तु हा! देखते हुए भी, जानते हुए भी, दया नहीं करते। क्या कहें, सारे संसार के ईश्वर हो। (महाप्रभु और समर्थ स्वामी हो इसलिये कुछ कहा नहीं जाता) दौड़ते क्यों नहीं? क्या गज का उद्धार करने के लिये दौड़ने से थक गये हो? अवतार क्यों नहीं लेते? क्या रावण को मारने (ब्रह्महत्या) और वनवास से लज्जित हो? क्या कंस को मारने में हुए परिश्रम का स्मरण हो जाने से चुप हो गये हो?

पलित-विग्रहो वा सम्पन्नोऽसि, न ज्ञायते तत्त्वम्। यादृशं तादृशमेव त्वां वयं नमस्कुर्मः।

हा विश्वम्भर! काश्यां विश्वनाथ-मन्दिरं धूलीकृतमेतैः। हा माधव! तत्रैव बिन्दुमाधव-मन्दिरस्य बिन्दुमात्रमपि चिह्नं न प्राप्यते! हा गोविन्द! तव विहार-भूमौ श्रीवृन्दावने गोविन्द-देव-मन्दिरस्यापि इष्टकावृन्दं स्वच्छन्दं भषकैराक्रम्यते। प्रभो! दयस्व, दयस्व, कदा तव कौमोदकी मोदं जनयिष्यति? कदा तव चापस्तापं विलयं यापयिष्यति? कदा तव नन्दको नन्दयिष्यति? कदा तव चक्रं

जनिका। **चिरन्तनः**=पुरातनः। **वलीपलितविग्रहः**=जराजायमानश्वैत्योपलक्षितदेहः। **न ज्ञायते तत्त्वम्**, अतिदुरूहत्वाद् भगवन्मायायाः।

इष्टकाः=अश्मविशेषाः। "ईंट" इति भाषायाम्। क्षिपकादिगणपाठादित्वाभावः। **भषकैः**=कुक्कुरतुल्यैर्म्लेच्छैः। **कौमोदकी**=भगवद्गदा। **चापः**=शार्ङ्गम्। **नन्दकः**=भगवत्खड्गः। **चक्रम्**=सहस्रारः सुदर्शनः। **दुष्टचक्रम्**=दुष्टसमूहम्। अत्र "अहह कथमिव समायातः" इत्यारभ्य करुणरसप्रवाहः। भग्नमन्दिरप्रजादय आलम्बनविभावाः, धर्मध्वंसन-मूर्तिखण्डन-भारतीयपीडनादय

या पुराण पुरुष होने के कारण वृद्धावस्था के कारण तुम्हारे बाल पक कर सफेद हो गये हैं? तुम्हारा तत्त्व समझ में नहीं आता। तुम जैसे भी हो, उसी रूप में हम तुम्हें प्रणाम करते हैं।

हा विश्वम्भर! काशी के विश्वनाथ मन्दिर को इन म्लेच्छों ने धूल में मिला दिया; हा माधव! वहीं (काशी) के विन्दुमाधव मन्दिर का अब विन्दुमात्र चिह्न भी नहीं मिलता; हा गोविन्द! तुम्हारी क्रीड़ास्थली वृन्दावन के गोविन्द देव मन्दिर की ईंटों पर स्वतन्त्रतापूर्वक कुत्ते विचरण कर रहे हैं, प्रभो! दया करो, दया करो। तुम्हारी कौमोदकी नामक गदा हमें कब मुदित करेगी? तुम्हारा शार्ङ्ग नामक धनुष हमारे तापों को कब समाप्त करेगा? तुम्हारा नन्दक नामक खड्ग हमें कब आनन्दित करेगा? तुम्हारा सुदर्शन चक्र

दुष्टचक्रं चङ्क्रमिष्यते ? मा स्मास्मदपराधान् स्मार्षीः, पाहि, पाहि, भगवन् ! पाहि"

एवं भावयत एव तस्यान्तर्दुःखमिव जलरूपेण द्रावयन्ती, कपोलं क्षालयन्ती, श्मश्वग्राद् बिन्दूभूय कूर्चं सिञ्चन्ती, भूतलमाविलं चकाराश्रु-जल-धारा।

तं तथा ध्याननिष्ठमिव यवन-यतिं मन्यमाना बहवोऽध्वन्याः परितोऽवातिष्ठन्त। एक ऊचे—महानेष महात्मा, अपर उवाच-अत एव भगवत्स्मरणेन पुलकितोऽस्ति, अन्योऽभाषत—ईदृश एव विचित्रो भवत्यानन्दः परमात्मस्मरणतः, तथेतरोऽब्रूत—तर्हि सर्वैस्तूष्णीकैरेव

उद्दीपनविभावाः। दैवोपालम्भनिःश्वासवैवर्ण्यादयोऽनुभावाः। निर्वेदग्लान्यादयो व्यङ्ग्यतया स्थिता व्यभिचारिणः। एतैरभिव्यक्तोऽसौ चर्वणतां गतः।

तदास्वादनिरतदशां दर्शयति—एवं भावयत इति। भावयतः = भावनया चित्तगोचरतां नयतः। कूर्चम् = दाढिका।

ध्याननिष्ठम्=समाधिनिरतम्। अध्वन्याः=पथिकाः। परितोऽवातिष्ठन्त= परिवारितवन्तः। "समवप्रवि" इत्यात्मनेपदम्। पुलकितः=रोमाञ्चितः।

दुष्टों के समूह का संहार कब करेगा ? हमारे अपराधों को याद न करो, हमारी गलतियाँ भूल जाओ, रक्षा करो, रक्षा करो, भगवन् ! रक्षा करो।"

इस प्रकार की भावना करते हुए ही उस (माल्यश्रीक) के आँसुओं की धारा ने मानो उसके आन्तरिक दुःख को जल के रूप में बहाते हुए, उसके कपोलों को धोते हुए, मूछों के अग्रभाग से बिन्दुरूप में परिणत हो कर, उसकी दाढ़ी को भिगोते हुए, पृथिवी को गीला कर दिया।

इस प्रकार ध्यानमग्न से माल्यश्रीक को, मुसलमान फ़कीर समझकर, अनेक राहगीरों ने घेर लिया। उनमें से एक ने कहा, 'यह कोई बहुत बड़ा महात्मा है;' दूसरा बोला, 'इसीलिये भगवान् का स्मरण करके पुलकित हो गया है;' अन्य ने कहा, 'भगवान् का स्मरण करने से इसी प्रकार से अद्भुत आनन्द की

स्थेयं न स्याद् यथा ध्यानभङ्ग एतस्य''—इति मन्दस्वरेणाऽऽलपतामेवैतेषां तस्य ध्यानभङ्गो जातः। नेत्रे उन्मील्य च भावना-सहस्रैर्येषु वर्धित-महामर्ष-ज्वाला-जटाल आसीत्; तानेवापश्यत् लशुन-गन्धैः श्वास-प्रश्वासैर्वमिमुत्तोजयतः परिपन्थिपथिकान्। ततो द्विगुणितकोपो ज्वलदङ्गार-प्रतिम-नयनो वाद्यमुत्तोल्य सहुङ्कारं ताडयितुमिवोदस्थात्। तेषु चेतस्ततः पलायन-परेषु शास्तिखान-भवनान्निवृत्तो महादेव-पण्डितोऽप्यकस्मादुपस्थाय "किमिव स्वामिन्! किमिति कुपितोऽसि" इति पर्यप्राक्षीत्। स तु तमेव ताडयितुमिव वाद्यमुदतू-

---

भावनासहस्रैः = बहुविधविचारणाभिः। येषु = यवनेषु। वर्द्धितस्य = वृद्धिं प्रापितस्य, महामर्षस्य = महाक्रोधस्य, ज्वालाभिः = अर्चिभिः, जटालः = संवलितः। लशुनस्य = रसोनस्य गन्धो येषु तैः। वमिम् = उद्‌गीर्णिम्। उत्तेजयतः = उद्दीपयतः। परिपन्थि-पथिकान् = सपत्नाध्वनीनान्। ज्वलता = दीप्यता, अङ्गारेण प्रतिमा = सादृश्यम् ययोस्तादृशे। उत्तोल्य = उत्थाप्य। सहुङ्कारम् = हुंशब्द-सहितम्। ताडयितुम् = प्रहर्तुम्। अकस्मात् = सहसा। उपस्थाय = समीपमागत्य। पर्य्यप्राक्षीत् = पृष्टवान्। तमेव = महादेव-

---

अनुभूति होती;' और किसी दूसरे ने कहा, 'तो सब लोग शान्त रहो, जिससे इनका ध्यान न भङ्ग होने पाये'। ये लोग आपस में धीरे धीरे यही बात कर रहे थे कि माल्यश्रीक का ध्यानभङ्ग हो गया। आँखें खोलने पर, उन्होंने, सामने उन्हीं शत्रुओं को देखा जिनके सम्बन्ध में हजारों प्रकार की बातें सोचकर, जिनको लक्ष्य बना कर, उनकी क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो रही थी, और जो लहसुन की ऐसी दुर्गन्ध से युक्त श्वास—प्रश्वासों से वमन को उत्तेजित कर रहे थे (अर्थात्-जिनके श्वास—प्रश्वास से लहसुन की ऐसी दुर्गन्ध आ रही थी कि समीपस्थ व्यक्ति को उबकाई आने लगे और वमन हो जाये), उन्हें देखकर माल्यश्रीक का क्रोध दूना हो गया और आँखें जलते हुए अङ्गारों की तरह लाल हो गई। वह बाजा उठाकर, हुंकारता हुआ, इस प्रकार उठा मानो मारने को उठा हो। राहगीरों के इधर-उधर भाग जाने पर, शाइस्ता खाँ के महल से लौटे महादेव पण्डित ने भी एकाएक आकर, 'क्या है बाबा, क्यों नाराज हो रहे हो?' यह

तुलत् । महादेवस्तु भीत इव पलायितः काञ्चन महान्धकारावृत-वीथिं प्रविष्टः, तत्पश्चादेव चायमपि तस्मिन्नेवान्धकारसमुद्रे निमग्नः ।

प्रधान-मार्गमपहाय ध्वान्त-मार्गेण सानुसन्धानं प्रतिनिवर्त्तनमेव महादेवस्याभीष्टमासीत्, तदेव च मुद्रयाऽनयाऽनायासेन सम्पन्नम् ।

ततस्तु वीथिकातो वीथिकाम्, मार्गान्मार्गमुल्लङ्घमानः सपद्येव दूरमायातः । अथ महादेवः स्थित्वा कञ्चित् कालं यवनयतिमपेक्षाञ्चकार । तस्मिन्ननागच्छति चान्धकारे 'मार्गभ्रष्टोऽयमन्यतो गतः' इति निश्चित्य, "आस्तां तावत्, सङ्केतितस्थले तेन सह योक्ष्यामि"

पण्डितमेव । अन्योन्यानभिज्ञानबोधनायेदम्, भीत इव, इदमपि प्रदर्शनफलकम् । महता = प्रबलेन, अन्धकारेण = तमसा, आवृताम् = सञ्छन्नाम् वीथिम् = मार्गम् । "वीथिः पङ्क्तौ गृहाङ्गे च रूपकान्तरवर्त्मनोरिति" मेदिनी ।

प्रधानमार्गम् = राजपथम् । ध्वान्तमार्गेण = अन्धकाराच्छन्नेन पथा । सानुसन्धानम् = गम्भीरावलोकनपुरस्सरम् । मुद्रयाऽनया = अनेन प्रकारेण व्याजात्मना । अनायासेन = निष्परिश्रमम् ।

यवनयतिम् = म्लेच्छभिक्षुवेषं माल्यश्रीकम् । अनागच्छति = अप्राप्नुवति । शत्रन्तम् । योक्ष्यामि = युक्तो भविष्यामि ।

पूछा । उस फकीर ने बाजा कुछ इस प्रकार उठाया मानो महादेव को ही मारना चाहता हो । महादेव डरा हुआ सा भागा और किसी घने अँधेरे से ढकी गली में घुस गया । वह फकीर भी उसके पीछे ही उसी अँधेरे के समुद्र में डूब गया ।

महादेव मुख्य सड़क छोड़कर अँधेरे रास्ते से रास्ते को खूब अच्छी तरह देखता हुआ लौटना चाहता था, और उसकी यह इच्छा, फकीर की मुद्रा को देखकर भागने के बहाने से अनायास ही पूरी हो गई ।

उसके बाद एक गली से दूसरी गली, एक रास्ते से दूसरे रास्ते होता हुआ यवनभिक्षु (माल्यश्रीक) दूर निकल आया । महादेव ने रुक कर कुछ देर मुसलमान–फ़कीर (का वेष धारण करने वाले माल्यश्रीक) की प्रतीक्षा की और जब वह नहीं आया तो उन्होंने यह समझा कि वह निश्चय ही रास्ता भूल कर किसी दूसरी ओर निकल गया है । महादेव मन में 'अच्छा, अब उससे पूर्व-निश्चित

इति मनस्येवावधार्य, निर्भयोऽन्धकार एव नगरस्य वर्त्तमानदशामवलोकयन्निव प्रचलितः।"

अस्मिन् समये प्रायश एतद्वीथि-वासिनः सर्वेऽपि सुप्ताः, द्वारो रुद्धाः, स्थाने स्थाने विचरन्तः प्रहरिणो वा तदुच्चाह्वानोद्बुद्धा अट्टालिकासु पिञ्जरावलम्बिताः शुकसारिकादयो वा क्वचित् क्वचित् शब्दायन्ते। सर्वतः सरणिषु ससणत्कारं समीरणः सरति।

गाढोऽयमन्धकारः कज्जलस्य रेणु-पटलमिव सर्वत उड्डीयते। गगनं मसीमिव वर्षति। महादेवस्तु परिचित-सकल-पुण्यनगर-मार्गजालः, वीथिकान्तरं प्रविष्टः। पूर्वं पूर्णतया पर्य्यटितचरमिदं नगरमिति अन्धतमसेऽपि सुखेन पर्य्यटितुमशकत्। तत्रैकस्मिन् गृहे, गवाक्षे दीप एको मन्दं मन्दं ज्वलति। तस्मिन्नवतमसे तत एव गच्छन्,

---

द्वारः = द्वाराणि। तेषाम् = प्रहरिणाम्, उच्चेन = तारेण, आह्वानेन = आकारणेन, उद्बुद्धाः = जागृताः। सरणिषु = मार्गेषु। ससणत्कारम् = सणदित्यनुक्रियमाणशब्देन सह। समीरणः = वायुः। सरति = गच्छति।

कज्जलस्य = अञ्जनस्य। रेणुपटलम् = धूलिनिकरः। इवेत्युत्प्रेक्षा। मसीमिवेत्यत्रापि। परिचितम् = पूर्वज्ञातम्, सकलम् = समस्तम्, पुण्यनगरस्य मार्गजालम् = वर्त्मसमूहो येन सः। अन्धतमसे = गाढान्धकारे। पर्य्यटितुमशकत् = भ्रमितुं समर्थोऽभूत्। गवाक्षे = वातायने। ज्वलति स्मेत्यध्याहृत्येदृशेषु स्थलेषु व्याख्येयम्। तात्कालिकीं वर्तमानतामाश्रित्य वा

सङ्केतित स्थान पर ही मिलूँगा' यह सोचकर, निर्भय होकर, अँधेरे में ही, नगर की वर्तमान दशा देखते हुए से चल दिये।

इस समय इस गली के प्रायः सभी निवासी सोये हुए हैं; दरवाजे बन्द हैं, कहीं कहीं पहरा दे रहे पहरेदारों, या उनकी तेज आवाज़ सुनकर जग जाने वाले, अट्टालिकाओं में पिंजड़ों पर टँगे शुक-सारिकादि पक्षियों के स्वर कभी-कभी सुनाई पड़ जाते हैं। सभी ओर गलियों में सन-सन करती हवा चल रही है।

घना अन्धकार सब ओर काजल की धूल सी उड़ा रहा है। आकाश स्याही की वर्षा सी कर रहा है। पूनानगर के सारे गली-कूचों से सुपरिचित महादेव एक दूसरी गली में प्रविष्ट हुए। वे इस नगर को पहले ही कई बार खूब अच्छी तरह घूम कर देख चुके थे। अतः घने अँधेरे में भी आसानी से घूमते रहे। इस गली के एक मकान में झरोखे (खिड़की) पर रखा एक दीपक मन्द-मन्द जल

तद्द्वार-सम्मुख-द्वार-वेदिकायां पुञ्जीभूतमन्धकारमिव, मूर्छितं भल्लूकमिव, सुप्तं वायस-समूहमिव, राशीकृतं कृष्ण-सर्प-सङ्घातमिव, आकुञ्च्य स्थापितं कृष्ण-कम्बलमिव च किमपि श्यामश्याममद्राक्षीत् । निकट आगत्य निपुणं निरीक्षमाणश्च दृष्टवान्, यदेकः प्रहरी स्वपिति, दिल्लीश-नामाङ्कित-रजतपट्टिका-भूषितं तस्योष्णीषमेकतोऽर्द्धस्खलितं विशीर्यते । खड्गः शिरसः समीपे दूरत एव स्थापितोऽस्ति, उपानदेका वेदिका-प्रान्त-लम्बित-पाद-च्युता अधः पतिता । मुख-निर्गताभिर्लालाभिः सिक्तो बाहुः, धूलि-धूसरितानि

प्रयोगः । एवमन्यत्रापि । यथा पञ्चतन्त्रे "अस्ति गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरुरि"त्यादौ । अस्तीत्यस्य विभक्तिप्रतिरूपकस्याव्ययस्य सर्वकालप्रयोगविषयस्य सत्त्वे तु तत्र निर्वाहेऽप्यत्र प्रकृतोक्तरीत्यैव कार्यमिति वेदितव्यम् । तस्मिन्नवतमसे किमपि श्यामश्याममद्राक्षीदिति सम्बन्धः । **अवतमसे** = क्षीणान्धकारे, दीपप्रकाशात् । उत्प्रेक्षते—**पुञ्जीभूतमन्धकारमिव** । **मूर्च्छितम्** = विसंज्ञम् । **आकुञ्च्य** = मोटयित्वा । दिल्लीशनाम्नाऽङ्किता रजतनिर्मिता । **पट्टिका** = "पेटी" इति भाषा, तया भूषितम् । **एकतः** = एकस्मिन् पार्श्वे । सार्वविभक्तिकस्तसिः । **अर्धस्खलितम्** = अर्धभ्रष्टम् । **विशीर्यते** = विकीर्यते । शिथिलबन्धनं भवतीति यावत् । **उपानत्** = पादुका । "अथ पादुका । पादूरुपानत् स्त्री"त्यमरः । **वेदिकायाः** = उपवेशस्थानस्य, **प्रान्ते**=निम्नभागे, लम्बितात् । **पादात्**=अङ्घ्रेः, **च्युता** । = **पतिता** । **लालाभिः**=सृणिकाभिः । "सृणिका

रहा था । उस हल्के अँधेरे में, उधर से ही जाते हुए महादेव ने उस दरवाजे के सामने चबूतरे पर पुञ्जीभूत अन्धकारसी, मूर्च्छित रीछसी, सोए हुए कौओं के झुण्डसी, काले सर्पों के एकत्रीकृत समूहसी और मोड़कर रखे हुए काले कम्बलसी कोई काली चीज देखी । महादेव ने निकट जाकर ध्यान देने पर देखा कि एक प्रहरी सो रहा है और उसकी अधखुली पगड़ी एक ओर पड़ी है । पगड़ी पर जो रजत-पट्टिका लगी थी, उस पर दिल्ली के सुल्तान का नाम अङ्कित था । तलवार सिर के पास ही अलग रखी थी । उसका एक पैंर चबूतरे के बाहर लटक रहा था और उस पैरका जूता नीचे गिर गया था। उसके मुँह से निकली

नील-वसनानि च स्वेदैराक्लिद्यन्ते। तदालोक्य किञ्चिद्धसन्निव महा-देवो–"मूर्खोऽयं यातैक–यामायामेव यामिन्यां सुप्तः"—इति मनस्ये-वोक्त्वा शनैस्तस्योष्णीषं खड्गं चापजहार।

ततश्च दक्षिणतो वणिग्वीथौ प्रविश्य यावत् किञ्चित् प्रयाति; तावत् पृष्ठतः समश्रावि कश्चित् पादध्वनिः। दत्तकर्णोऽवधार्य च संशयितवान् यत् 'किमेतदपहरन्तं मां कोऽप्यद्राक्षीत्?'

अथ दिल्लीश–नामाङ्कित–रजत–पट्टिकामादाय कक्ष–गुटिकायां संस्थाप्य, उष्णीषिकामेतामेकस्यां गवाक्षिकायामुत्क्षिप्य खड्गं कोषान्निस्सार्य स्वयमेकस्मिन् निविडान्धकारे कोणे परिपन्थिनः पन्थान-

---

स्यन्दिनी लाले"त्यमरः। धूलिधूसरितानि = रजोमिश्राणि। स्वेदैः = घर्मजलैः। आक्लिद्यन्ते = आर्द्रीक्रियन्ते। यातैकयामायाम् = व्यतीतैकप्रहरायाम्।

वणिग्वीथौ = वणिजामावासमार्गे। दत्तकर्णः = अवहितश्रोत्रः। अपहरन्तम् = मुष्णन्तम्। अद्राक्षीत् = दृष्टवान्।

कक्षगुटिकायाम् = बाहुमूलस्थापितलघुपोटलिकायाम्। गवाक्षिकायाम् = वातायनिकायाम्। कोषात् = असिबन्धात्। निविडोऽन्धकारो यस्मिन् तादृशे = घनतमसि। कोणे = गृहैकदेशे, अवेक्षमाणः = प्रतीक्षां कुर्वन्।

लार से उसका हाथ गीला हो रहा था और उसके धूलधूसरित गन्दे काले कपड़े पसीने से गीले हो रहे थे। उसे देखकर कुछ हँसते हुए से महादेव ने मन ही मन 'यह मूर्ख एक पहर रात बीतते ही सो गया' कह कर, धीरे से उसकी पगड़ी और तलवार उठा ली।

उसके बाद दाहिनी ओर की वणिकों की गली में प्रवेश करके कुछ दूर चलते ही महादेव को पीछे से किसी की पदचाप सुनाई दी। कान लगा कर ध्यान देकर, उन्होंने संदेह किया कि 'इसकी पगड़ी और तलवार चराते हुए मुझे किसी ने देखा तो नहीं है।'

तदनन्तर वे उस रजतपट्टिका को, जिस पर दिल्ली सुल्तान का नाम अङ्कित था, लेकर काँख (बगल) में दबी पोटली में रख कर, उस पगड़ी को एक खिड़की में फेंक कर, म्यान से तलवार खींच कर, उस घने अन्धकार में, एक कोने में, दुश्मन के आने की राह देखते हुए खड़े हो गये।

मवेक्षमाणः समस्थित। ततो मुहूर्त्तं यावन्नाश्रूयत कोऽपि ध्वनिः; निपुणं निरीक्षमाणेनापि च नाऽऽलोकि कश्चन जनः।

ततस्तु नैज एव भ्रम इति विभाव्य पुनरग्रे प्रातिष्ठत, न्यविशत च वीथिकातो वीथिकाम्। तावदकस्माद् वामत उपवीथिकायामेव कस्यचन जागरूकस्य, 'जाग्रत !. भो जाग्रत ! सन्तमसमिदं निबिडम्" इत्याद्याम्रेड्य वदतस्तारध्वनिमश्रौषीत्। मा स्म मामीक्षिष्टेति च दक्षत एकामुपवीथिकां प्राविक्षत्, किन्तु दैवाद् यामिकोऽप्येष घुणाक्षर–न्यायेन तामेव प्रविष्टः।

महादेवस्तु, अग्रे रुद्धो मार्गः, पश्चाच्चोच्चैश्चीत्कुर्वन् यामिकहतकः समायातीति कान्दिशीकः, मार्गान्तरमलभमानः, उच्चामेकां

समस्थित = स्थितोऽभूत्। नैजः = स्वीयः। भ्रमः = भ्रान्तिः। न्यविशत = प्रविष्टः। उपवीथिकायाम् = उपपदव्याम्। जागरूकस्य = जागरणशीलस्य। आम्रेड्य = द्विस्त्रिरुद्घुष्य। तारध्वनिम् = उच्चैः शब्दम्। मा स्म मामीक्षिष्ट = मा स्म मामवलोकयत्, "माङि लुङ्"। दैवात् = अदृष्टात्।

चीत्कुर्वन् = चीत्कारं कुर्वन्। कान्दिशीकः = भयद्रुतः। मार्गान्तरम् =

जब थोड़ी देर तक कोई आवाज नहीं सुनाई दी और ध्यान से देखने पर भी कोई आदमी नहीं दिखाई दिया तो 'मुझे ही भ्रम हो गया था' यह सोचकर वे आगे बढ़ गये और एक गली से दूसरी गली में प्रविष्ट हो गये। इसी बीच में एकाएक बाईं ओर की गली से 'जागते रहो, बड़ा घना अँधेरा है' इत्यादि पदसमूह को बार-बार दुहराने वाले पहरेदार का उच्च स्वर सुनाई दिया। महादेव उस आवाज को सुनकर, इस आशङ्का से कि वह पहरेदार उन्हें देख न ले, दाहिनी ओर की एक गली में प्रविष्ट हो गये, किन्तु संयोग से वह पहरेदार भी घुणाक्षर न्याय से उसी गली में आ गया।

महादेव ने यह देखकर कि (यह गली आगे जाकर समाप्त हो जाती है अर्थात्) आगे रास्ता नहीं है और पीछे से यह पहरेदार जोर-जोर चिल्लाता हुआ चला आ रहा है, भागना चाहा, पर कोई दूसरा रास्ता न मिलने पर वे

वेदिकामारुह्य, निष्कोष-निस्त्रिंश-हस्तः सतर्कः समतिष्ठत। तावत् प्रहरी तु तथैवाऽऽम्रेडमाम्रेडं तार-स्वरेण रटन्, पार्श्वस्थ-गृहिणां च कपट-क्षुत-डक्कार-च्छिक्काः श्रृण्वन्, कर-कलित-काच-मञ्जूषा-ऽन्तःस्थ-दीप-प्रकाशेन पादाग्रस्थ-हस्त-चतुष्टयमात्रपरिमाणामिव भुवं पश्यन् अलसनयनः, "कदेयं होरा समाप्नुयात्? कदा वा गत्वा शयीय?"—इतीव चिन्तयन् महादेवाध्युषित-वेदिकाया दूरादेव निवृत्तः। महादेवस्तु "नैतस्य जीवनमधुना समाप्तम्, चिरायुरेषः" इति मनस्येव निर्धारयन्, पुनर्मार्गान्तरं प्रविश्य, झटिति आकुलाभ्या-

---

अन्यं पन्थानम्। **निष्कोषनिस्त्रिंशहस्तः** = नग्नखड्गकरः। **सतर्कः** = सावधानः। **पार्श्वस्थगृहिणाम्** = समीपस्थगृहस्थानाम्। **कपटेन** = व्याजेन, क्षुतादयः—**क्षुतम्** = कासः। "खांसना" इति हिन्दी। **छिक्का** = "छींक" इति भाषायाम्। **करे** = हस्ते, **कलिता** = धारिता, या **काचमञ्जूषा** = रक्तवर्त्तिका, **तदन्तःस्थितस्य** = तदन्तराल-वर्त्तमानस्य दीपस्य, प्रकाशेन। **पादाग्रस्थम्** = पुरो विद्यमानम्, हस्तचतुष्टयमात्रपरिमाणं **यस्यास्तादृशीम्** = चतुर्हस्तमिताम्। **अलसे** = निद्रातुरे, नयने यस्य सः। **होरा** = घण्टा। निर्दिष्टकाल इत्यर्थः। **समाप्नुयात्** = समाप्तिं गच्छेत्, **शयीय** = स्वापं कुर्याम्। न

एक ऊँचे चबूतरे पर चढ़कर, हाथ में नंगी तलवार लेकर सावधान होकर खड़े हो गये। उसी प्रकार वार-वार उच्चस्वर से पुकारता हुआ, समीप के घरों में रहने वाले लोगों की खाँसने, डकारने और छींकने की बनावटी आवाजें (जिन आवाजों के बहाने वे उस पहरेदार को अपने जागते रहने की प्रतीति कराते थे) सुनता हुआ, हाथ में ली हुई काचमञ्जूषा (लालटेन) के अन्दर जल रहे दीपक के प्रकाश में अपने पैरों के पास की केवल चार हाथ भूमि को देखता हुआ, उनींदे नेत्रों वाला, 'कब घण्टा बीते (मेरी डयूटी समाप्त हो) और मैं जाकर सोऊँ' यह सोचता हुआ सा वह पहरेदार भी जिस चबूतरे पर महादेव खड़े थे, उसके पास न जाकर, दूर से ही लौट गया।

महादेव मन ही मन "इसका जीवन अभी समाप्त नहीं हुआ है, यह दीर्घायु है" ऐसा सोचते हुए, फिर दूसरे रास्ते में प्रविष्ट होकर, तत्क्षण,

मिव पद्भ्यां गच्छंस्तडागमेकमाससाद। यत्र चोच्चावचायां भुवि भग्न-मन्दिरेष्वेकं शिवमन्दिरमिव प्रविश्य, "अस्ति कश्चिदत्र संन्यासी ?" इत्यपृच्छत्। ततस्तु तस्मादेकः स एव यवन--भिक्षुः, अपरौ च द्वौ संन्यासिनौ निर्गतौ। तैश्च सह तत्रैवैकस्मिन् पाषाणे उपविश्य बहुश आलप्य एकेनैवं समालपत्-

महा०—उद्वाहः कदा भविता ?

संन्या०—श्वः।

महा०—अथ वरयात्रा-समयः कः ?

संन्या०—यातैक-यामायां यामिन्याम्।

महा०—कति सहचरा अनुमता नगराधिकारिभिः ?

संन्या०—वादकाद्यतिरिक्तास्त्रिंशत्।

समाप्तम्, अन्यथा समीपमागमिष्यत्। तडागम्=जलाशयम्। उच्चावचायाम्=निम्नोन्नतायाम्। शिवमन्दिरमिव, कतिपयचिह्नानुमेयशिवमन्दिरत्वम्। अत एवेवकारसार्थक्यम्। एकेन, साकमिति शेषः। विनाऽपि सहार्थशब्दयोगं तृतीयेति 'वृद्धो यूना'निर्देशवेद्यम्।

घबराये हुए से, लड़खड़ाते पैरों से चलते हुए, एक तालाब के पास पहुँचे। वहाँ की ऊँची-नीची भूमि में, अनेक टूटे मन्दिरों में से शिव मन्दिर के समान प्रतीत होने वाले एक मन्दिर में जाकर उन्होंने "यहाँ कोई संन्यासी है ?" ऐसा पूछा। उसके बाद उस मन्दिर से एक तो वही मुसलमान फकीर और दो अन्य संन्यासी निकले। महादेव ने उनके साथ वहीं एक शिला पर बैठकर उन दोनों संन्यासियों में से एक से इस प्रकार बातचीत की।

महादेव—शादी कब होगी ?

संन्यासी—कल।

महादेव—बारात जाने का समय क्या है ?

संन्यासी—रात का एक पहर बीत जाने पर।

महादेव—कोतवाल ने कितने लोगों को साथ जाने की अनुमति दी है ?

संन्यासी—बाजा बजाने वालों को छोड़कर तीस व्यक्तियों को।

महा०—भद्रम्, वयमपि सह योक्ष्यामः ।

तावदकस्मात्, महादेवस्य कण्ठमिव लक्ष्यीकृत्य क्षिप्तः किञ्चिदेव लक्ष्यभ्रष्टः, कश्चिद् भयानक-भल्लः स्कन्धे निपपात बाण एकः। स्कन्धस्थोत्तरीयवस्त्रे ओत-प्रोतमिवैनमालोक्य यावत् सर्वे सचकितमुत्तिष्ठन्ति; तावच्छक्तिरप्येका महादेव-वक्षस्थलं चुचुम्ब । ताञ्च कञ्चुकान्तःस्थित-वर्म्माघातेन सझणत्कारं परतः पतितामालक्ष्य यावत् ते पश्यन्ति, तावद् धृतखड्गमेकं प्रांशुं पिचण्डिलं यवनमपश्यन् ।

स च—"तिष्ठ रे महाराष्ट्र-कुल-लाञ्छन ! कपट-दूत ! सर्वां शृणोमि ते दुर्वृत्त-वार्त्ताम् । किन्तु चान्द्रखाने जीवति न त्वादृशा

योक्ष्यामः = सम्मिलिता भविष्यामः । भयानकभल्लः = तीक्ष्णाग्रभागः । बहुव्रीहिः । स्कन्धे तिष्ठतीति स्कन्धस्थं तादृशं चोत्तरीयवस्त्रम् = उपरि धारणीयं प्रावरणम्, तस्मिन् । ओतप्रोतम् = विद्धानुविद्धम् ।

सचकितम् = साश्चर्यम् । शक्तिः = "नेजा" इति, "वरछी" "इति वा भाषा । कञ्चुकान्तःस्थितम् = चोलकान्तर्निहितम्, यद् वर्म = कवचम्, तदाघातेन सझणत्कारम् = झणत्कारशब्दसहितं यथा स्यात् तथा धृतखड्गम् = गृहीतासिम् । प्रांशुम् = प्रोन्नतम् । पिचण्डिलम् = तुन्दिलम् । "तुन्दिलस्तुन्दिभस्तुन्दी बृहत्कुक्षिः पिचण्डिलः" इत्यमरः ।

दुर्वृत्तवार्त्ताम् = दुर्व्यवहारवृत्तान्तम् । 'दुर्वृत्त' इति पृथक् सम्बोधनं

महादेव—हम लोग भी साथ हो लेंगे ।

तब तक अकस्मात्, मानो महादेव के गले को निशाना बनाकर फेंका गया एक तीखी नोक वाला भयानक बाण थोड़ा सा लक्ष्य भ्रष्ट होकर अर्थात् निशाने से थोड़ा सा हटकर महादेव के कन्धे के ऊपर गिरा । कन्धे पर डाले गये दुपट्टे से उलझ या फँस से गये उस बाण को देखकर, आश्चर्य चकित होकर, सभी लोग उठ ही रहे थे कि एक बरछी भी महादेव के वक्षस्थल में आ लगी । वह कुर्त्ते के अन्दर पहने गये कवच से टकराकर झन्-झन् शब्द करती हुई दूसरी ओर जा गिरी । वे लोग उसे देख ही रहे थे कि हाथ में तलवार लिये हुये एक लम्बा तुन्दिल (बड़े पेट वाला) मुसलमान दिखाई पड़ा और उसने, "ठहर रे ! महाराष्ट्र कुल के कलङ्क ! कपट पूर्वक दूत का वेष धारण करने वाले ! मैं तेरी सारी कुचेष्टाओं की बातों को सुन चुका

जम्बूक-वराकाः कृतकार्या भवन्ति'' इत्याक्ष्वेड्य सचन्द्रहासः श्येन इवाभिपत्य खड्गं तद्वाम-बाहौ प्राक्षिपत् ।

परं महादेवस्तु न 'टिड्ढाणञ्' पण्डितः, किन्तु युद्ध-पण्डितः, खड्ग-विद्यायां च तथा निष्णातोऽस्ति, यथा महाराष्ट्र-देशे एतस्य परस्सहस्राः शिष्या अपि निज-निस्त्रिंश-बलेन रिपूणां शतेन सह योद्धुमभिमन्यन्ते । यद्यपि पाञ्चालाः सैन्धवाः मारवाः राजपुत्र-देशीया अपि च असि-चालन-विद्यायां जगत्प्रसिद्धाः सन्ति, तथा च

वा । **जम्बूकवराकाः** = दयनीयशृगालसदृशाः । **भवन्ति**—"वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद् वा" । **सचन्द्रहासः** = सासिः । **श्येन इव** = शशादन इव । "अथ शशादनः । श्येनः पत्री"त्यमरः । उपमालङ्कारः ।

टिड्ढाणञ्पण्डितः = "टिड्ढाणञ्द्वयसज्दध्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः" इति समग्रं सूत्रं ङीब्विधायकं दुःखोच्चारणम् । ईदृक्सूत्रमात्ररटनपटुः पण्डितो-मन्यतेऽद्यत्वे, अयं न तादृशशुष्कपण्डित इत्याकूतम् । **युद्धपण्डितः** = सङ्ग्राम-विद्याभिज्ञः । **निष्णातः** = कुशलः, "निनदीभ्यां स्नातेः कौशले" । **रिपूणां शतेन सह**, एकाकीति शेषः । अन्यथा परस्सहस्राणां रिपुशतेन युद्धकरणं किं वैशिष्ट्यमाश्रयेत् । **अभिमन्यन्ते** = अभिमानं वास्तविकं कुर्वन्ति । **पाञ्चालाः**-पञ्चालदेशराजाः । **सैन्धवाः** = सिन्धुदेशीयाः । **मारवाः** = मरुदेशीयाः ।

हूँ; किन्तु चाँद खाँ के जीवित रहते हुये तुम्हारे समान क्षुद्र सियार अपने कार्य में सफल नहीं होंगे," यह कहकर, गरज कर, तलवार लेकर, बाज पक्षी की तरह झपट कर महादेव की बाईं भुजा पर तलवार चला दी ।

किन्तु महादेव 'टिड्ढाणञ्' के पण्डित नहीं अपि तु युद्ध के पण्डित हैं । वे तलवार चलाने की विद्या में इतने निपुण हैं कि महाराष्ट्र देश में उनके हजारों शिष्य भी अपने को, केवल अपनी तलवार से अकेले ही सैकड़ों शत्रुओं से युद्ध कर सकने में समर्थ मानते हैं । यद्यपि पाञ्चाल, सिन्धु, मारव और राजपूताना के वीर भी तलवार चलाने की कला में संसार भर में प्रसिद्ध हैं,

निपतन्ति तेषां प्रबला असयः यथा सुबहून् कदलीस्तम्भान् क्रमेलक-पादास्थीनि, किमधिकं लोह-दण्डानपि च ते सकृदसिक्षेपणेन निकृन्तन्ति, परं झटितिकारितेयं महाराष्ट्राणामेव। येऽतिसत्त्वरतया चन्द्र-हास-चालनपरा हैहया इव बहुबाहवः समालोक्यन्ते। सर्वश्चैष महा-राष्ट्र-देशीय वीरता-महिमा शिववीरकृत एवेति सोऽयं चञ्चल-चपला-चमत्कारमिव चपलस्वरु-सारेणेव सृष्टं कल्पान्त-सप्तजिह्वस्येवैकं

सुबहून् = अत्यधिकसङ्ख्याकान्। क्रमेलकपादास्थीनि=उष्ट्र-चरणकीकसानि। सकृदसिक्षेपणेन = एकवारं खड्गप्रहारेण। निकृन्तन्ति=खण्डयन्ति। झटिति-कारिता = शीघ्रकरणम्। अतिसत्वरतया = नितान्तशीघ्रतया। हैहया इव = कार्त्तवीर्या इवेत्युपमा। सहस्रं बाहवो हि कार्तवीर्यस्याऽऽसन्। बहु-बाहवः = अनेकभुजाः। महाराष्ट्रदेशीयानां वीरताया महिमा = महत्त्वम्। चञ्चलचपलाचमत्कारमिव = चपलविद्युद्विच्छुरणमिव। चपलश्चासौ स्वरुः = वज्रम्, "शतकोटिः स्वरुरि"त्यमरः, तस्य सारेण = तत्त्वांशेन। सप्त जिह्वा यस्य सः सप्तजिह्वः = दहनः, ताश्च—

"काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी च देवी लेलिह्यमाना इति सप्त जिह्वाः॥"

इति मुण्डके प्रसिद्धाः। कल्पान्ते सप्तजिह्वस्येति विग्रहः। कल्पान्तविशेषणेन

और उनकी प्रवल तलवारें इस प्रकार चलती हैं कि अनेक कदलीस्तम्भों, ऊँटों के पैरों की हड्डियों, अधिक क्या कहा जाये, लोहे की छड़ों को भी वे एक ही बार में काट डालते हैं, टुकड़े टुकड़े कर देते हैं; किन्तु क्षिप्रकारिता (तेजी से-तलवार चलाने की निपुणता) तो महाराष्ट्र के वीरों की ही विशेषता है, जो अत्यन्त शीघ्रता से खड्ग चलाने के कारण कार्तवीर्य की भाँति सहस्रबाहु दिखाई देते हैं। महाराष्ट्र देश की इस सारी वीरता की महिमा का श्रेय शिवाजी को ही है।

महादेव पण्डित ने अपने हाथ में ली हुई चञ्चल बिजली की चमक के समान, मानो चपल वज्र के सार भाग से निर्मित, प्रलय-कालीन अग्नि की

जिह्वा-विशेषं निज-कर-कलितं महाचन्द्रहासं तथा प्राहिणोद्; यथा चान्द्रखानस्यासिं कन्धरां च एकेनैवाऽऽघातेन द्विरकरोत्। उक्तवांश्च यद्–"अरे रे शास्तिखान! मिथ्या-तिरस्कारेणैवाद्य यवन-वीर-श्मश्रूपममेतं चान्द्रखानं धर्मराजाध्वन्यध्वनीनं कारितवानसि। एक एवाऽऽसीदेष त्वत्पार्श्वे विचार्यकारी नीतिज्ञश्च। तदस्मिन् मदसि-विलीढे को नाम कठिनो वारवधू-कर-शराव-चुम्बन-चञ्चुरस्य तव विजयः?"–इति।

तदालोक्य च चकितेनेव यवन-भिक्षुणा कथितम्–"परमेष विघ्न इव

भीषणताऽऽधिक्यं प्रतिपादितम्। **एकम्** = अद्वितीयम्। जिह्वाविशेषमिवेत्युपमा। **निजकरकलितम्** = स्वहस्तधारितम्। **प्राहिणोत्** = अक्षिपत्। **असिम्** = चन्द्रहासम्। **कन्धराम्** = ग्रीवाम्। उत्थितहस्तस्थितासिना साकं ग्रीवाकर्तनेन सुमहद् वैलक्षण्यमसिचालने प्रदर्शितम्। **द्विरकरोत्** = खण्डद्वयमकार्षीत्। **अरे रे शास्तिखान!** बुद्धया सन्निधापितस्य तस्य सम्बोद्धयमानता। **यवनवीराणाम्** = यवनभटानाम्, **श्मश्रूपमम्** = ओष्ठस्थलोमतुल्यम्। अतिप्रधानमित्यर्थः। "यवन-वीरों की मूँछ के समान" इति हिन्दी। **धर्मराजाध्वनि** = यममार्गे। **अध्वनीनम्** = पान्थम्। **विचार्य करोतीति** तथाभूतः। **मदसिना** = मत्खड्गेन, **विलीढे** = आस्वादिते। मारित इति यावत्। **वारवधूनाम्** = वेश्यानाम्, करस्थितानां **शरावाणाम्** = मद्यभाण्डानाम्। **चुम्बने** = आस्वादने, **चञ्चुरस्य** = चपलस्य। वेश्याभिः समं मद्यपानाऽऽसक्तस्येति यावत्।

(सात जिह्वाओं में से एक) जिह्वा के समान भीषण तलवार इस प्रकार चलाई कि एक ही प्रहार में चाँद खाँ की तलवार और गर्दन के दो टुकड़े कर दिये। फिर महादेव बोले—'अरे रे शाइस्ता खाँ! तूने मिथ्या तिरस्कार करके ही आज यवन वीरों की मूँछ के समान इस चाँद खाँ को यमराज के पथ का पथिक बनवा दिया। इसके मेरी तलवार द्वारा चाट लिये जाने पर, वेश्याओं के हाथों के प्यालों को चूमने में चपल तुझ को जीतने में अब कठिनाई ही क्या है?

यह देखकर चकित से यवन भिक्षु ने कहा—'परन्तु यह तो हम लोगों के

विभात्यस्मद्विवाहोत्सवस्य; यतः प्रमुखोऽयं राजसभायाम्, श्व एवैतद्विषये घण्टाघोषो भविष्यति।"

श्रुत्वैतद् महादेव उवाच--"मा स्म भूद् विचिकित्सा काऽपि। अद्यायं राजसभायामनादृतः कानिचिद् दिनान्यगच्छत्यप्यस्मिन् न कोऽपि सन्धेक्ष्यति एतस्य जीवन-विषये। तत्सत्वरमेष आसन्नेऽस्मिन् शुष्ककूपे निक्षेपणीयः, उपरिष्टाच्चास्य पाषाण-कर्पर-मृत्पिण्ड-खण्डान् निपात्य, तथाऽऽच्छादनीयो यथा निपुणं निरीक्षणेनापि न स्याच्छक्योऽवलोकयितुम्।"

तदाकर्ण्य च सपद्येव ते तथा विदधिरे। महादेवश्च शनैः शनैः पुनरप्यालप्य, कतिभिश्चिच्छोणित-शोण-विन्दुभिरङ्कितं दक्षिणबाहु-

---

विचिकित्सा = संशयः। अनादृतः = तिरस्कृतः। सन्धेक्ष्यति = सन्देहं करिष्यति। आसन्ने = समीपस्थे। पाषाणानाम् = प्रस्तराणाम्, कर्पराणाम् = शकलितमृद्भाण्डानाम्। मृत्पिण्डानाम् = लोष्टानाम्, खण्डान्।

शोणितशोणबिन्दुभिः--रक्त-रक्त (वर्ण) पृषतैः। अङ्कितम् = चिह्नितम्।

विवाहोत्सव में विघ्न सा प्रतीत होता है, क्योंकि यह (चाँद खाँ) राज-सभा का प्रमुख सभासद था और कल ही इसके विषय में डौंडी (डुग्गी) पिटेगी।

यह सुनकर महादेव बोला—

'आप किसी प्रकार का सन्देह न करें। आज यह राजसभा में अपमानित किया गया है, अतः यदि यह कुछ दिनों तक राजसभा में नहीं भी पहुँचेगा, तो भी कोई इसके जीवित होने के विषय में सन्देह नहीं करेगा। इसे शीघ्र ही इस समीपस्थ सूखे कुएँ में फेंक देना चाहिये और इसके ऊपर पत्थर, खपड़े और मिट्टी के ढेले डाल कर इसे इस प्रकार ढक देना चाहिये कि अच्छी तरह से देखनें पर भी इसे देखा न जा सके।'

यह सुनकर कर उन सब ने तत्क्षण वैसा ही किया। तदनन्तर महादेव (उन सब से) पुनः धीरे-धीरे बातचीत कर के, अपने दाहिने कन्धे को, जिस पर खून की कुछ लाल बूँदों के धब्बे पड़े थे, उत्तरीय से ढक कर, पुनः

मूलमुत्तरीयेणाऽऽवृत्य पुनर्मार्गाद् मार्गान्तरं प्रविशन्, घण्टापथमासाद्य, गोपुराभिमुखं प्रचलन्, केनचित् सन्दिह्यमानश्च शास्तिखान-हस्ताक्षराङ्कितं पत्रं दर्शयन्, कुशलेन गोपुराद् बहिराजगाम। अग्र एव कुटपटलीषु निलीयमान एव घनच्छायस्यैकस्य वट-वृक्षस्य तले मर्मर-श्रवण-स्तब्ध-कर्णम् अनिमेष-नयनाभ्यां सम्मुखमवलोकयन्तम् अश्वमेकमारूढं वीरमेषमात्मानं प्रतीक्षमाणं गौरसिंहमद्राक्षीत्। तत्समीपे च दासेरकेणैकेन गृहीत-वल्गमपरमपि निजार्थमानीतमाजानेयमपश्यत्। ततस्तेन किञ्चिदालप्य, अविगणित-परिश्रमः स्नातोत्थित इव स्फूर्ति-स्फुरित-गात्रोऽनूनोत्साहः स्मय-

---

उत्तरीयेण = प्रावरणेन। आवृत्य = आच्छाद्य। घण्टापथम् = राजमार्गविशेषम्। गोपुराभिमुखम् = अनुपुरद्वारम्। कुटपटलीषु = वृक्षसमूहेषु। घना = निविडा, छाया यस्य तस्य। मर्मरस्य = शुष्कपर्णध्वनेः, श्रवणेन = आकर्णनेन, स्तब्धौ = शङ्कूभतौ, कर्णौ यस्य तम्। अनिमेषनयनाभ्याम् = निमेषपतनोत्पतनशून्यनेत्राभ्याम्। आत्मानम् = महादेवपण्डितरूपं शिववीरम्। प्रतीक्षमाणम् = प्रतिपालयन्तम्। दासेरकेण = दास्या अपत्यं पुमान् दासेरकस्तेन भृत्येन। गृहीतवल्गम् = धारितकविकम्। आजानेयम् = कुलीनमश्वम्। अविगणितपरिश्रमः = अज्ञातखेदः। पूर्वं स्नातः पश्चादुत्थित इति स्नातोत्थितः। "पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेने"ति

एक रास्ते से दूसरे रास्ते में प्रविष्ट होते हुए, राजमार्ग पर आकर, बहिर्द्वार की ओर चलते हुए, किसी के द्वारा शङ्का किये जाने (टोके जाने पर) शाइस्ता खाँ के हस्ताक्षरों से युक्त पत्र दिखाते हुए, सकुशल गोपुर के बाहर आ गए। वृक्षों के झुरमुट में घुसते ही आगे ही, एक घनी छाया वाले वटवृक्ष के नीचे पत्तों की मर्मरध्वनि सुनने के कारण चौकन्ने होकर निर्निमेष नेत्रों से सामने देख रहे, एक घोड़े पर चढ़े हुए, वीरवेष धारण किये हुए गौरसिंह को अपनी प्रतीक्षा करते हुए देखा। उन्हीं (गौरसिंह) के समीप, अपने (अर्थात् महादेव के) लिये लाये गये एक दूसरे घोड़े को देखा, जिसकी लगाम एक नौकर ने पकड़ रखी थी। तदनन्तर गौरसिंह से कुछ बात करके, थकान की

मानमुखो वामहस्तेन रश्मिं संयम्य दक्षेणाश्वग्रीवामास्पृश्याऽविलक्षितोत्पतनः सपदि तत्पृष्ठमारूढः। "रात्रौ कश्चनास्मत्पण्डितः समायास्यतीति पत्रद्वारा प्राप्तास्मत्सन्देशः शिबिरस्थो यशस्विसिंहमहाराजः पण्डितं प्रतीक्षते" इति कुशल-प्रश्नाद्यनन्तरं गौरेणोक्तश्च, तेन सह मन्दं मन्दमालपन् कृतायासोऽप्यनायस्तः तामेव दिशं प्रातिष्ठत।

\+ \+ \+

समासः। स इवेत्युपमा। स्फूर्त्या = स्नानादिजन्यलाघवविशेषेण, स्फुरितम् = चञ्चलतां गतम्, शीघ्रकार्यकरणशीलतां प्राप्तम्, गात्रम् = शरीरं यस्य सः। अनूनः = अधिकः, उत्साहो यस्य सः। स्मयमानमुखः = ईषद्धास्यमयाननः। रश्मिम् = वल्गाम्। संयम्य=संस्तभ्य। आस्पृश्य=स्पर्शं कृत्वा। अविलक्षितम = अनवलोकितम्, उत्पतनम् = अश्वपृष्ठोत्पतनम्, यस्य सः। यशस्विसिंहमहाराजः = "जसवन्तसिंह" इति लोके ख्यातो योधपुर–शासकः। कृतायासोऽपि = विहितपरिश्रमोऽपि। अनायस्तः = श्रमशून्यः। तामेव दिशम् = यशस्विसिंहाध्युषित-हरितमेव।

परवाह न करते हुए, स्नान करके उठे हुए से, स्फूर्ति से फड़कते हुए अङ्गों वाले, उत्साह से परिपूर्ण महादेव, मुस्कराते हुये, बायें हाथ से लगाम को सँभाल कर, दाहिने हाथ से घोड़े की गर्दन थपथपाकर, इस प्रकार कूद कर उसकी पीठ पर झट सवार हो गये कि कोई देख भी न पाया।

कुशल आदि पूछने के बाद, गौरसिंह के यह कहने पर कि "पत्र द्वारा हमारा यह सन्देश पाकर कि रात्रि में हमारे एक पण्डित जी आपसे मिलने आयेंगे, महाराज जसवन्त सिंह हमारे पण्डित जी की शिविर में प्रतीक्षा कर रहे हैं", उसके (गौरसिंह के) साथ धीरे-धीरे बातचीत करते हुए, परिश्रम कर चुकने के बावजूद भी, बिना थकान का अनुभव किये हुए, उसी (शिविर की) दिशा में चल दिये।

तत्र राजपुत्र-राजो यशस्विसिंहः शिबिरान्तःपट-भवनेष्वन्यतमे कलितोपबर्हाश्रयः, केनचिद् भृत्येन मन्दं मन्दं वीज्यमानः, उपधान-स्थापित-बाहुमूले कमल-दल इव दक्ष-कर-तले, ईषदरुण-पाण्डुरं सायंसमय-मृगाङ्क-मण्डलमिव वदनं संस्थाप्य, पुरः-स्थित-खड्गमालोकमालोकं वामहस्ततर्जन्यङ्गुष्ठाभ्यां च वामश्मश्रवग्रं परिमृजन्नेवमचिन्तयत्—

राजपुत्रराजः = "राजपूताना"नाम्ना प्रसिद्धस्य देशस्य नरेशः। **शिबिरस्य** = सेनानिवेशस्य, **अन्तः** = मध्ये, यानि **पटभवनानि** = उपकार्याः, तेषु। **कलितोपबर्हाश्रयः** = कृतोपधानावलम्बः। **वीज्यमानः** = व्यजन-वायुना सेव्यमानः। उपधाने स्थापितं बाहुमूलं यस्य तस्मिन्। **कमलदल इव** = पद्मपलाश इव, सप्तम्यन्तम्। **दक्षकरतले** = दक्षिणहस्ततले। **ईषदरुण-पाण्डुरम्** = किञ्चिद् रक्तपीतम्। सायंकालिकः शशाङ्क उभाभ्यामपि वर्णाभ्यां भूषितो भवत्येव। मुखं च क्रोधेन रक्तम्, खेदेन च पीतम्। **सायंसमय-मृगाङ्क-मण्डलमिव** = सूर्यास्तवेलोदितचन्द्रबिम्बमिव। **वदनम्** = आननम्। **आलोकमालोकम्** = दर्शं दर्शम्। णमुलन्तम्। "नित्यवीप्सयोरि"ति द्वित्वम्। **तर्जनी चाङ्गुष्ठश्चेति द्वन्द्वः।** वामहस्तस्य तर्जन्यङ्गुष्ठाभ्याम्। यद्यपि "द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानामि"त्येकवद्भावः समपेक्षितस्तथाऽपि सर्व-द्वन्द्वस्थलीयैकवद्भावस्य वैकल्पिकत्वमतमनुसृत्येदमभिहितमिति न च्युतसंस्कृ-तिदोषोद्भावनं युक्तम्। चस्य परिमृजन्नित्यनेन सम्बन्धः। **वामश्मश्रवग्रम्** = वामभागीयमुखकेशप्रान्तम्। आततं यथा स्यात् तथा अयितुं शीलमेषामित्यात-**तायिनः** = वधोद्यताः, "सन्नद्धे त्वाततायी वधोद्यते" इत्यमरः।

उधर शिविर में एक तम्बू में मसनद का सहारा लेकर बैठे हुए राज-पूताना-नरेश जसवन्त सिंह, जिन्हें एक नौकर धीरे-धीरे पंखा झल रहा था, (दाहिने) कन्धे को मसनद पर टिकाए हुए, दाहिने हाथ की कमल पत्र के समान हथेली पर, कुछ अरुणिमा लिये हुए पीले, सन्ध्याकालीन चन्द्रमण्डल के समान मुख को रखे हुए, सामने रखी हुई तलवार को देख-देख कर बायें हाथ की तर्जनी और अँगूठे से बाईं मूँछ के अग्रभाग को स्पर्श करते (मूँछ पर ताव देते) हुए इस प्रकार सोच रहे थे—

"समायातं घोरं कलियुगम्, नात्र संशयः। यैराततायिहतकै-र्दृशाऽप्यवलोकितमन्नादि अस्मत्पूर्वजैः शुनकेभ्यो वितीर्णम्; तेऽधुना साञ्जलि जयजयध्वनिपुरस्सरमभिवाद्यन्ते। येभ्यश्चर्मकार-मण्ड-लेष्वस्माभिर्वासभूमिरदीयत; तेषां विजय-पताका अधुना वङ्गेषु, कलिङ्गेषु, अङ्गेषु, मगधेषु, मत्स्येषु, मैथिलेषु, काशीषु, कोशलेषु, कान्य-कुब्जेषु, चोलेषु, पाञ्चालेषु काञ्चीषु, शौरसेनेषु, सिन्धुषु, सौराष्ट्रेषु च दोधूयन्ते। येऽस्मदिष्टदेव-निन्दकाः सजिह्वाच्छेदमस्माभी राज्याद् निरवासिषत; तेऽद्य जीवतामेव चास्माकं काश्यादिषु मन्दिराणि

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः।
क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते आततायिनः॥' इति स्मरणात्।

दृशाऽप्यवलोकितम् = नेत्रेणापि दृष्टम्। स्पर्शादिस्तु कथैव का? शुन-केभ्यः = कुक्कुरेभ्यः, वितीर्णम् = दत्तम्। चाण्डालादिदृष्टान्नपानादिपरित्या-गस्यापि मानवाद्यभिहितत्वेन, "न नीचो यवनात् परः" इति स्मृत्या सर्वथा गर्हि-तैर्यवनैर्दृष्टानामन्नादीनां सर्वथा भोजनाभाव एव युक्त इति विवेकः। अभि-वाद्यन्ते = नमस्क्रियन्ते। चर्मकारमण्डलेषु = पादूकृत्समुदायेषु। "पादूकृ-च्चर्मकारः स्यादि"त्यमरः। वासभूमिः = निवासस्थानम्। इष्टदेवनिन्दकाः = इन्द्राग्न्यादिनिन्दारताः। सजिह्वाच्छेदम् = सरसनोत्कर्तनम्। न येन पुन-रेवमविनयं कुर्युः। निरवासिषत = निस्सारिताः। आपानभूमीकुर्वन्ति =

"घोर कलियुग आ गया है, इसमें सन्देह नहीं। जिन गये गुजरे आत-तायियों की आँखों से देखे (मात्र) गये अन्नादि तक को भी हमारे पूर्वज कुत्तों को दे दिया करते थे, उन्हीं का अब हाथ जोड़कर जय-जय की ध्वनि के साथ अभिवादन किया जाता है; जिन्हें हम लोग रहने के लिये चमारों की बस्ती में जमीन दिया करते थे, उन्हीं की विजयपताकाएँ अब वङ्ग, कलिङ्ग, अङ्ग, मगध, मत्स्य, मिथिला, काशी, कोसल, कान्यकुब्ज, चोल, पाञ्चाल, काञ्ची, शूरसेन, सिन्धु और सौराष्ट्र (देशों या राज्यों) में फहरा रही हैं। अपने इष्टदेव के जिन निन्दकों को हमने जुबान कटवा कर राज्य से निर्वासित कर दिया था। वे ही अब, हमारे जीवित रहते हुए भी, काशी आदि स्थानों में मन्दिरों को तोड़ रहे हैं और तीर्थों को मदिरालय बना रहे हैं; लक्ष्मी के समान

मर्दयन्ति, तीर्थान्यापानभूमीकुर्वन्ति । कमला इव विमलाचाराः कुलीन-कन्याः कदर्थयन्ति । सगात्र-कम्पं साश्रुपातं सकरुणं "त्रायस्व, त्रायस्वे"ति आम्रेडन-पराणां परम-पूज्यपाद-वेद-विदुषामपि शोणितै-र्भुवं शोणयन्ति । अहह ! धिगस्मादृशान् क्षत्रिय-कुलकलङ्कान्; ये तेषां मानवाकाराणां क्रव्यादानां रुधिरैर्देवान् पितॄंश्च न तर्पयामः, अपितु तत्साहाय्य-दानेन स्वधर्म-रक्षण-परान् स्वबन्धूनेव चिक्लेशयि-

---

सुरापानशालीकुर्वन्ति । **कमला इव** श्रिय इवेत्युपमा । **विमलाचाराः** = सदाचारिणीः । **कुलीनानाम्** = सद्वंशजातानाम्, **कन्याः** = अविवाहिता बालिकाः । (प्रायो यवना अविवाहिता एवागृह्णन् बालिका इत्यत एव "अष्टवर्षा भवेद् गौरी" इत्यादिवचांसि धर्मशास्त्रे सम्मेल्य तदानीन्तना बुद्धि-मन्तो बालविवाहं प्रचारितवन्त इति वेदितव्यम् ।) **सगात्रकम्पम्** = सशरीर-वेपनम् । क्रियाविशेषणम् । **आम्रेडनपराणाम्** = वारं वारं कथयताम् । **परम-पूज्यपादाश्च ते वेदविद्वांसस्तेषाम्** = नमस्करणीयचरणश्रोत्रियाणाम् । **भुवम्** = धराम् । **शोणयन्ति** = रक्तां कुर्वन्ति । **मानवाकाराणाम्** = मनुष्य-शरीरधारिणाम् । **क्रव्यादानाम्** = आममांसभक्षणतत्पराणाम्, रक्षसाम् । **रुधिरै-र्देवान् पितॄंश्च न तर्पयामः**, एतेषां हननेन देवानां च पितॄणां च महती तृप्तिः स्यादित्येवमुक्तिः । तत्र दोषलेशाभावसूचनाय तु तर्पयाम इत्यभिहितम् । एवं कृते पुण्यमेव भवेदिति वास्तवं तत्त्वम् । **स्वधर्मरक्षणपरान्** = हिन्दूधर्मरक्षा-

---

निर्मल आचरण वाली कुलीन कन्याओं को भ्रष्ट कर रहे हैं; काँपते हुए शरीर और अश्रुधार बहाते हुए नेत्रों वाले, करुण स्वर में, रक्षा करो, रक्षा करो" की रट लगाने वाले, परमपूज्य वेद के विद्वानों के भी रक्त से पृथ्वी को रक्तिम बना रहे हैं । हा ! धिक्कार है । मेरे समान क्षत्रियकुल के कलङ्कभूत राजाओं को, जो उन मनुष्याकृति राक्षसों (यवनों) के रक्त से देवों और पितरों का तर्पण नहीं करते, प्रत्युत उन्हीं को सहायता प्रदान कर, अपने धर्म की रक्षा में तत्पर अपने ही बन्धुओं को कष्ट देना चाहते हैं । हा ! हमारा सारा देश

षामः। हा ! सर्वोऽप्यस्मद्देशः परतन्त्र एवं संवृत्तः। केवलं महाराष्ट्र-देशे स्वातन्त्र्यस्य उद्यानं विकसितमवलोक्यते। अहह ! तदप्येतेऽनुदारा भूदारा इव उल्लुलूषन्ति, परन्तु न्यक्कार-विषया वयमेव; ये तुच्छानामेषामुच्छलतां म्लेच्छ-हतकानां चाटुकारा इव, किमिदमित्य-विगणय्य, प्राप्त-सङ्केता एव स्वबन्धु-सर्वस्वमेव कृत्रिम-कोप-ज्वालाभि-र्दिधक्षामः। अथवा किं कुर्मः ? पूर्वजचरणा एवास्माकं महा-महिम-मर्यादामुल्ललङ्घिरे। आसीदेष आमेराधीशो वीरवरो महामानो मान-सिंह एव; यो बहूनां पैतृकीं पारम्परीणां प्राणाधिक-मूल्यां सर्वस्व-हाने-

---

निरतान् शिवराजप्रभृतीन्। स्वबन्धून् = देशभ्रातॄन्। एव = केवलम्। चिक्लेशयिषामः = क्लेशयितुमिच्छामः। परतन्त्रः = पराधीनः। उद्यानम् = वाटिका। विकसितम् = कुसुमितम्। अनुदाराः = उदारताशून्याः। भूदारा इव = वराहा इव। "क्रोडो भूदार" इत्यमरः। उल्लुलूषन्ति = उल्लवितु-मिच्छन्ति। न्यक्कारविषयाः = तिरस्कारपात्राणि। तुच्छानाम् = अतिनीचा-नाम्। उच्छलताम् = उच्छृङ्खलानाम्। चाटुकारा इव = मिथ्या-श्लाघका इव। प्राप्तसङ्केता एव = आदेशप्राप्तिसमकालमेव। कृत्रिम-कोप-ज्वालाभिः, वास्तविकक्रोधकारणाभावादिति भावः। दिधक्षामः = दग्धुमिच्छामः। महा-महिम्नाम् = अतितेजस्विनाम्, मर्यादाम् = सीमाम्। उल्ललङ्घिरे = अति-चक्रमुः। आमेराधीशः = अम्बराधिपतिः। पारम्परीणाम् = परम्पराप्राप्ताम्,

---

गुलाम ही हो गया है। केवल महाराष्ट्र देश में (ही) स्वतन्त्रता का उद्यान फल-फूल रहा है (विकसित दिखाई दे रहा है)। आह ! उसे भी क्रूर यवन सूअरों की भाँति नष्ट कर देना चाहते हैं। परन्तु धिक्कार के विषय तो हम लोग ही हैं, जो इन तुच्छ, उच्छृङ्खल यवनापसदों के खुशामदियों की भाँति, 'हम यह क्या करने जा रहे हैं' यह विचार किये विना ही, उनका सङ्केत मात्र पाकर, अपने ही वन्धुओं के सर्वस्व को ही बनावटी क्रोध (रूपी अग्नि) की ज्वाला से जला देना चाहते हैं। अथवा हम लोग ही क्या करें ? हमारे पूज्य-पाद पूर्वजों ने ही हमारी महामहिमशालिनी मर्यादा का उल्लंघन किया है।

यह आमेर नरेश (जयपुर के महाराज) वीरवर महामानी मानसिंह ही तो थे, जो अनेक भारतीयों की पैतृक परम्परा प्राप्त, प्राणों से भी अधिक

नापि रक्षणीयां धमार्थकाममूलभूतां स्वतन्त्रतासम्पत्तिं वलादाच्छिद्य खङ्गधारासारैरखिलान् आत्मानं चान्धीकृत्येव दुराचार-यवनराजहस्ते समर्पयति स्म। अथवा कस्तस्य दोषः? क्रूरतमोऽयं कलिः, अभद्राणि भाग्यानि, अभव्यं भाव्यम्, पतनोन्मुखी सम्पत्तिः, विधूतप्रायो धर्मः, ध्वस्ता धीरता, चञ्चला चक्रवर्त्तिता, स्रस्ता च स्वतन्त्रता, तद् महतां विनिन्दनेन व्यर्थोऽयं वदन-मलिनीकारः" इत्यादि बहुशश्चिन्तयत एव तस्य कतिभिश्चिदश्रुबिन्दुभिः श्मश्रुमूलमसिच्यत। यावच्चैष उपधानं परित्यज्य, जानुद्वयं सम्पात्योपविश्य, करपृष्ठाभ्यां नेत्रे सम्मृज्यो-

---

मूलपुरुषक्रमायातामिति यावत्। **प्राणाधिकमूल्याम्** = जीवनतुल्याम्, आधारभूतामिति यावत्। **सर्वस्वहानेनापि** = निखिलत्यागेनापि। **रक्षणीयाम्** = पालनीयाम्। **स्वतन्त्रतासम्पत्तिम्** = स्वातन्त्र्यलक्ष्मीम्। **बलात्** = प्रसह्य। **आच्छिद्य** = सङ्खण्डच। **खङ्गधारासारैः** = असिपतनवर्षैः। **अन्धीकृत्येव** = विचारविरहितीकृत्येव। **अभद्राणि** = अमङ्गलानि। **अभव्यम्** = अशोभनम्। **भाव्यम्** = भवितव्यम्। **पतनोन्मुखी** = विनाशप्रवणा। **विधूतप्रायः** = विध्वस्तकल्पः। **चक्रवर्त्तिता** = साम्राज्यम्। "चक्रवर्ती सार्वभौमः" इत्यमरः। **स्रस्ता** = पतिता। **वदनमलिनीकारः** = मुखकालिमानयनम्।

श्मश्रुमूलम् = कूर्चिकाग्रम्। **असिच्यत** = सिक्तमक्रियत। शोकादश्रुपतन-

---

मूल्य वाली, सर्वस्व खोकर भी रक्षा करने योग्य, धर्म, अर्थ और काम की मूल आधार, स्वतन्त्रता रूप सम्पत्ति को, उनसे बलपूर्वक छीनकर, तलवार की धार की मूसलाधार वर्षा से, सभी को तथा स्वयं को भी, अन्धा सा करके, दुराचारी यवन सम्राट् के हाथों में समर्पित कर देते थे। अथवा, उनका भी क्या दोष है? यह कलियुग महाक्रूर है; हम लोगों का भाग्य अच्छा नहीं है; भविष्य खराब है; हमारी सम्पत्ति पतनोन्मुख है, हमारा धर्म प्रायः नष्ट हो चुका है, धैर्य ध्वस्त हो चुका है, चक्रवर्तित्व चञ्चल हो गया है और स्वातन्त्र्य समाप्त हो गया है, अतः अपने महान् पूर्वजों की निन्दा करके अपना मुख मलिन करना निरर्थक है।"

इसी प्रकार अनेक बातें सोचते-सोचते उनकी (जसवन्त सिंह की) मूँछों

त्तरीयाञ्चलेन बाष्पमपाकृत्य सम्मुखमवलोकयति; तावदन्यतमः प्रतीहारः प्रविश्य, सजयध्वनि करौ सम्पुटीकृत्य प्रावोचद्–"देव ! शिववीर-प्रेषितो महादेव-पण्डितो दिदृक्षतेऽत्रभवतः।" तदूरीकृत्य च 'ओम् ! प्रवेशय' इत्युक्तवति महाराजे प्रतीहारोऽपि तथाऽकरोत्। ततः प्रतीहारेण सह प्रविष्टमात्रे महादेव-पण्डिते, यशस्विसिंहः प्रणम्य आसन्न-स्थानमुपवेशार्थं दक्षकरेण निर्दिष्टवान्। तं च स्वेदात् क्लिन्नवदनमवलोक्य सम्यगुपवीजयितुं व्यजनिनमिङ्गितवान्।

मारब्धमिति यावत्। अथ शोकावस्थां दर्शयति—यावच्चैष इति। अन्यतमः = अनेकेष्वेकः। सजयध्वनि = जय-शब्दपुरस्सरम्, क्रियावि०। सम्पुटीकृत्य = संयोज्य। अत्रभवतः = पूजनीयान्। ऊरीकृत्य = स्वीकृत्य। आसन्न-स्थानम् = समीपवर्तिदेशम्। "समीपे निकटासन्नावि"त्यमरः। दक्ष-करेण = दक्षिणहस्तेन। स्वेदात् = घर्मजलात्। क्लिन्नवदनम् = आर्द्राननम्। उपवीजयितुम् = व्यजनेन सेवितुम्। व्यजनिनम् = व्यजनचालकम्।

का मूल भाग आँसुओं की बूँदों से सिंच गया (उनकी मूँछें अश्रुसिक्त हो गई)।

महाराज जसवन्त सिंह ने मसनद छोड़कर, दोनों घुटनों को टेक कर, बैठ कर, हाथों के पृष्ठ भाग से नेत्रों को पोछ कर, उत्तरीय के आँचल से आँसुओं को पोछ कर, सामने देखा ही था, कि प्रतीहार ने प्रवेश करके, 'जय–जय' कहते हुए हाथ जोड़कर निवेदन किया—'देव ! शिवाजी के द्वारा भेजे गये महादेव पण्डित आपका दर्शन करना चाहते हैं।' प्रतीहार की बात स्वीकार करके, महाराज जसवन्त सिंह के, 'हाँ, ले आओ' यह कहने पर, प्रतीहार ने भी वैसा ही किया।

तदनन्तर प्रतीहार के साथ महादेव पण्डित के प्रविष्ट होते ही, जसवन्त सिंह ने, प्रणाम कर, दाहिने हाथ से सङ्केत करके बैठने के लिये समीपस्थ स्थान की ओर निर्देश किया, तथा महादेव पण्डित के मुख को पसीने से

तेन वीज्यमानमपगत-परिश्रमं च कुशलादिकमपृच्छत् । स च यथोचितमालप्य विशेष-वार्ता आलपितुं राजप्रश्नं प्रतीक्षमाण इव तस्थौ ।।

ततस्तयोरेवमभूदालापः ।

यशस्विसिंहः—पण्डितवर ! महाराष्ट्र-राजस्य पत्रं तु प्राप्तवानेवास्मि । तत्र तेन यद् यदलेखि तत् तत् पठितवानस्मि । तदधिकं भवतः किं प्रस्तोतव्यमिति निरूप्यताम् ।

महादेवपण्डितः–मरुराज ! नाहं तत्रभवता किमपि प्रस्तोतुं प्रेषितोऽस्मि, अपि तु शोकं प्रकाशयितुम् ।

यश०–तत् किं पुण्यनगरेण सह प्रधानचिक्कनदुर्गोऽपि हारित इति शोकः ?

इङ्गितवान् = चेष्टया बोधितवान् । अपृच्छत् = पृच्छधातोर्द्विकर्मकत्वात्...

भीगा हुआ देखकर पंखा झलने वाले को ठीक से पंखा झलने के लिये इशारा किया ।

उसके बाद जसवन्तसिंह ने, महादेव पण्डित, जिनको पंखा झलने वाला पंखा झल रहा था और जिनका परिश्रम दूर हो गया था, से कुशल वृत्तान्त पूछा ।

महादेव पण्डित यथोचित बातचीत करके विशेष बातें करने के लिये, महाराज जसवन्तसिंह के प्रश्न की प्रतीक्षा करते हुये बैठे रहे । उसके बाद उन दोनों व्यक्तियों में इस प्रकार की बातचीत हुई ।

जसवन्त सिंह—पण्डितप्रवर ! महाराष्ट्रराज शिवाजी का पत्र तो मुझे मिल ही गया है, उसमें उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह मैंने पढ़ लिया है, उससे अधिक (आगे) आप जो कुछ कहना चाहते हों, कहिये ।

महादेव पण्डित—मरुराज ! महाराज शिवाजी ने मुझे आप के पास कुछ कहने के लिये नहीं, अपितु शोक प्रकट करने के लिये भेजा है ।

जसवन्त सिंह—क्या उन्हें पूना नगर के साथ ही मुख्य चाकन दुर्ग के भी हार जाने का शोक है ?

महा०—तस्य हस्ते वहवो दुर्गाः सन्ति-इति दुर्गार्थं न खिद्यते।

यश०—अथ किं भारत-चक्रवर्त्तिना दिल्लीश्वरेण युद्धरूपा महती विपदुपतिष्ठते—इति लोकः ?

महा०—क्षत्रियराज! विपत्समये धीरतात्यागः शिवेन नाभ्यस्तः।

यश०—तत् किमिति शोकः ?

महा०—[उच्चैर्निरश्वसत्]

यश०—कथ्यताम् कथ्यताम्, किमिति शोकः ?

महा०—भगवन्! यः क्षत्रियता-धूर्धरः, येन राजन्वतीयं भूः, योऽस्मादृशानामभिमान-भाजनम्, यस्मिन् धर्म-धुरन्धरा आग्रह-

---

परिश्रमं कुशलादिकमित्यत्र च द्वितीया। प्रस्तोतव्यम्=वक्तव्यम्। क्षत्रिय-राज=क्षत्रिय एव केवलं न, राजाऽपि। किमिति=कस्माद्धेतोः। उच्चैर्निरश्वसत्, महान् शोको यो वाचामगोचर इति दर्शयितुं किमप्यनभिधाय निश्वासग्रहणम्। क्षत्रियतायाः=क्षात्रस्य निखिलविपन्नरक्षणरूपस्य,

---

महादेव पण्डित—शिवाजी के हाथ (अधिकार) में अनेक दुर्ग हैं। अतः वे दुर्ग के लिये खिन्न नहीं हैं।

जसवन्त सिंह—तो क्या उन्हें इस बात का शोक है कि भारतचक्रवर्ती दिल्लीश्वर के साथ युद्धरूप महाविपत्ति उपस्थित हो गई है ?

महादेव पण्डित—क्षत्रियराज! विपत्ति के समय में धैर्य छोड़ देने का अभ्यास शिवाजी ने नहीं किया है।

जसवन्त सिंह—तो फिर वे शोकग्रस्त क्यों हैं ?

[महादेव पण्डित ने ऊँची (लम्बी) निःश्वास ली।]

जसवन्त सिंह—कहिये, कहिये, उन्हें किस बात का शोक है ?

महादेव पण्डित—"भगवन्! जो क्षत्रियत्व की धुरा को धारण करते हैं, जिनकी उपस्थिति के कारण यह पृथिवी राजन्वती (अच्छे राजा वाली) कही जाती है, जिन पर हम जैसे लोगों को अभिमान है, धर्मधुरन्धर (धर्मात्मा)

ग्रहिलाः, यं पीयूष-पूरमिव चक्षुश्चषकैश्चिराय पिपासामहे, यः सनातन-धर्मरक्षाया एकमात्रं शरणम्, यश्च भारतीय-वीरकुल-मुकुटमणिः, तमेवाद्य कदर्य्य-हतकानां पाटच्चराणां जाल्मानां धर्म-ध्वंसिनामेतेषां दासपदलाञ्छनमालोक्य शोकाकुलो महाराष्ट्र—राजः !

ततो यशस्विसिंहस्तु स्फुटमेष मां धिक्करोतीति किञ्चित् कुपितः, सतां न्यक्करणीयमेव भारत-विद्रोहि-यवन-वशवर्त्तिताकार्यं करोमीति ग्लानः, विचित्रेयमुत्थानिकैतत्प्रस्तावस्येति चकितः मामेष निरुत्तर-

---

धुरम् = भारं धरतीत्येवम्भूतः, अनित्यत्वात् 'ऋक्पूरब्धूरि'त्यादिना समासान्ताभावः। राजन्वती = सुराजवती, "राजन्वान् सौराज्ये"। "सुराज्ञि देशे राजन्वानि"त्यमरः। अभिमानभाजनम् = अभिमानकारणीभूतः। यस्मिन्, सति। भावसप्तमी। धर्मधुरन्धराः = धार्मिकाः। आग्रहग्रहिलाः = धर्मपक्षपातिनः। पीयूषपूरम् = अमृतप्रवाहम्। चक्षुश्चषकैः = पानपात्राभेदतां गतैर्नयनैः। एकमात्रम् = अद्वितीयम्। भारतीयवीरकुलस्य = हैन्दवीयशूरसमूहस्य, मुकुटमणिः = मस्तकरत्नम्। पाटच्चराणाम् = चौराणाम्। जाल्मानाम् = असमीक्ष्यकारिणां धूर्त्तानाम्। दासपदलाञ्छनम् = भृत्यशब्दचिह्नितम्। एतादृशापवादगोचरतामुपगतमिति यावत्। सतां न्यक्करणीयम् = सद्भिस्तिरस्करणीयम्। "कृत्यानां कर्त्तरि वे"ति वैकल्पिकषष्ठी। भारतविद्रोहि-

---

व्यक्ति जिनके अत्यधिक आग्रही या पक्षपाती हैं, जिन (आसेचनक दर्शन महाराज) को हम नेत्र रूपी प्यालों से पीयूषप्रवाह की भाँति देर तक पीते रहना चाहते हैं, जो सनातन धर्म के एकमात्र रक्षक और शरणस्थल हैं, जो भारतीय वीरों के कुल के मुकुटमणि हैं, उन्हीं को आज इन कायर, चोर, जालिम धर्मध्वंसक यवनों के दासपद से लाञ्छित हुए देखकर महाराष्ट्रराज शिवाजी शोकाकुल हैं।"

यह सुनकर जसवन्त सिंह ने, 'यह मुझे साफ़ साफ़ धिक्कार रहा है', यह सोचकर कुछ क्रुद्ध हो कर, 'मैं भारत के द्रोही यवनों की दासता का ऐसा कार्य ही करता हूँ, जो सज्जनों द्वारा निन्दनीय है', यह सोचकर, ग्लान

यतीति ह्रीणः, किमितोऽपि कथयेदिति च सकुतूहलः, स्वेदापसारणच्छलेन विविध-भाव-भङ्ग-तरङ्गितमाननं पटान्तेन साच्छादनं प्रोञ्छन् उपधानं क्रोडे संस्थाप्य, तदुपरि च स्थापित-कफोणिः, यावत् पुरः पश्यति, तावत् पुनरारभत तथैव वक्तुं महादेवः—

"महाराज! दिक्करि-कर - दोधूय्यमान-यशःपुञ्ज - पुण्डरीकस्य स्वातन्त्र्य-पोतकर्णधारस्य क्षत्रिय-कुल-कमल-दिनेशस्य उदयपुराधीश-

---

णाम् = आर्यावर्तघातिनां यवनानाम्, वशवर्तिता = अधीनतास्वीकरणम्, सैव कार्यम्। ग्लानः = क्षीणहर्षः। "ग्लै हर्षक्षये" इत्यस्माद् "गत्यर्थाकर्मके"ति कर्तरि क्तः, "संयोगादेरातो धातोर्यण्वत" इति नत्वम्। उत्थानिका = भूमिका। चकितः = भीतः। निरुत्तरयति = उत्तरशून्यं करोति। ह्रीणः = लज्जितः। इतोऽपि, अधिकमिति शेषः। स्वेदापसारणच्छलेन = घर्मजलदूरीकरणव्याजेन। विविधानाम् = अनेकेषाम्, भावानाम् = शोकग्लान्यादीनाम्, भङ्गैः = आविर्भावतिरोभावैः, तरङ्गितम् = समुत्पन्नलहरिम्, आकुलीभूतमिति यावत्। साच्छादनम् = सगोपनम्, प्रोञ्छन् = "पोंछते हुए" इति हिन्दी। क्रोडे = भुजाभ्यन्तरे। स्थापितकफोणिः = धृतकूर्परः। "स्यात् कफोणिस्तु कूर्परः" इत्यमरः। दिक्करिणाम् = दिङ्मातङ्गानाम्। करैः = शुण्डादण्डैः, दोधूय्यमानम् = वारं वारं सञ्चाल्यमानम्, यद्यशःपुञ्ज एव = यस्य कीर्तिव्रात

होकर, 'इन पण्डित जी की अपनी बात को कहने की यह प्रस्तावना विचित्र ही है', यह सोचकर, चकित होकर, 'यह मुझे निरुत्तर किये दे रहे हैं', यह सोचकर, लज्जित होकर, 'अब आगे और क्या कहेंगे', यह सोचकर, कुतूहलाक्रान्त हो कर; पसीना पोछने के बहाने, अपने नाना-प्रकार के विचारों से तरङ्गित मुख को, वस्त्र के छोर से छिपाते और पोछते हुए मसनद को गोद में रखकर, उस पर हाथ की कुहनी टेककर ज्योंही सामने देखा कि महादेव पण्डित ने पुनः उसी प्रकार कहना प्रारम्भ कर दिया—

"महाराज! जिनका यशःपुञ्ज रूपी कमल दिग्गजों की सूँड से वार-वार हिलाया जाता है (अर्थात् जिनका यश दिग्दिगन्त तक व्याप्त है), जो स्वत-

श्रीप्रतापसिंहस्य कुल-प्रसूतं स्त्री-रत्नं यस्यार्द्धाङ्गम्, विद्युद्विनिन्दक-कृपाणकरैः, घनश्मश्रु-कूर्च-समाच्छन्न-कन्धरैः, वाम-पाद-कलित-राजतैककटकैः, दक्षकर-कलित-कनकवलय-द्वयैः, पीतरक्त-श्यामारुणार्जुन-

---

एव, पुण्डरीकम्=सिताम्भोजम्, यस्य तादृशस्य । समस्तभूखण्डव्यापियशस इति वाच्योऽर्थः । स्वातन्त्र्यमेव=स्वतन्त्रतैव, पोतः=नौः, तत्कर्णधारस्य=तन्नाविकस्य । क्षत्रियकुलमेव=क्षात्रान्वय एव, कमलम्=पद्म, तद्दिनेशस्य=तदुदयकारणस्य खेचराधिनायकस्य । उदयपुराधीशश्चासौ श्रीप्रतापसिंहस्तस्य श्रीप्रतापः सुप्रतापः सूर्यवंश्यः क्षत्रिय आसीदर्कवर-साम्राज्यकाले । तत्पितृव्यजस्य श्रीमानसिंहस्य भगिनी "जोधाबाई" अर्कवर (अकबर) पट्टमहिष्यभूदिति श्रीप्रतापदेवो मानसिंहमपमानितवान् । कदाचिदसहभोजनेनेति सुमहान् सङ्ग्रामो हल्दीघट्टे सञ्जात इत्यादि सुप्रसिद्धमेव भारतीयेतिवृत्तेषु । स्त्रीरत्नम्=स्त्रीषु श्रेष्ठा । "रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेऽपी"ति नानार्थेऽमरः । अर्द्धाङ्गम्=अर्द्धदेहः, स्त्रीत्यर्थः । विद्युद्विनिन्दकानि=चपला-जुगुप्सा-करणानि, कृपाणानि=असयः, करे येषां तैः । घनेन=सान्द्रेण, श्मश्रुणा=दाढिकया, कूर्चेन=उत्तरोष्ठस्थकेशेन, च समाच्छन्नाः=व्याप्ताः,=कन्धराः येषां तैः । वामपादे=दक्षिणेतरचरणे, कलितः=धारितः, राजतः=रजतनिर्मितः, एकः=अद्वितीयः, कटको यैस्तैः, इयं तत्रत्यप्रथेति भाति । दक्षकरे=दक्षिणहस्ते, कलितं कनकवलयद्वयम्=हिरण्यकङ्कणयुगलम् , यैस्तैः । पीतादिभिश्चित्रान्युष्णीषाणि येषां तैः पीतादीनि चित्राणि उष्णीषाणि येषां तैरिति वा । अरुणम्=ईषद् रक्तम् ,

---

न्त्रता रूपी जलयान के कर्णधार और क्षत्रियकुलरूपी कमलों के सूर्य हैं; उदयपुर-नरेश श्रीप्रतापसिंह के कुल में उत्पन्न महिलारत्न जिनकी धर्मपत्नी हैं, जो ऐसे सैंकड़ों वीरों द्वारा 'जय-जय' ध्वनिपूर्वक वरण किये गये मरुदेश के राजसिंहासन को पदाक्रान्त (चरणाधिष्ठित) कर विराजमान हैं, जिनके (जिन वीरों के) हाथों में बिजली को भी मात करने वाली कृपाणें हैं, जिनकी गर्दनें घनी मूँछ-दाढ़ी से ढकी हैं, जो बायें पैरों में चाँदी के एक-एक कड़े को पहने हुए हैं तथा

कर्बुर-पाण्डुर-धूसर-पाटल-चित्र-विचित्रोष्णीषैः,विविध-मणिमयहाटक-माला—सङ्घट्ट—किरणाङ्किताधिक--विकट-वक्षःस्थलैः, रणाङ्गण-विपोथित-प्रत्यर्थि-सार्थ-मुकुट-मौक्तिक-मण्डलारचित-कुण्डलैः, सिंहसंहननैः, मधुनयनैः, परश्शत-वीरवरैः सजयजयध्वनि व्रियमाणं मरुदेश-राज-सिंहासनं पदा समाक्रम्य यो विराजते, यत्कथोपकथनै राजपुत्र-देश-कामिन्यो बालकान् शाययन्ति; एष दिल्लीकलङ्कोऽवरङ्गजीवोऽपि

अर्जुनम् = धवलम्। "वलक्षो धवलोऽर्जुनः" इत्यमरः। कर्बुरम् = चित्रम्, अनेकवर्णमिश्रणरूपं न तु स्वतन्त्रम्। पाण्डुरम् = ईषत् पीतं श्वेताभम्, धूसरम् = मृण्मिश्रश्वेतम्, "भूरा" इति हिन्दी। पाटलम् = पाटलपुष्पवर्णम्। 'गुलाबी' इति हिन्दी। विविधानाम् = अनेकप्रकाराणाम्' मणिमयहाटकमालानाम् = हीरकादिजटितसुवर्णस्रजाम्,सङ्घट्टस्य = व्रातस्य,किरणैः = मयूखैः,अङ्कितम् = लाञ्छितम्, अत एव अधिकम् = बहु, विकटम् = निम्नोन्नतम्, वक्षःस्थलम् = उरःस्थलं येषां तैः। रणाङ्गणे = सङ्ग्रामभूमौ, विपोथितानाम् = विनाशितानाम्, प्रत्यर्थिनाम् = शत्रूणाम्, सार्थस्य = व्रजस्य, मुकुटानाम् = उष्णीषाणाम्, मौक्तिकमण्डलैः = मुक्ताप्रकरैः, अरचितानि = निर्मितानि, कुण्डलानि येषां तैः। सिंहसंहननैः = वराङ्गरूपोपेतैः। "वराङ्गरूपोपेतो यः सिंहसंहननो हि सः" इत्यमरः। अतीव सुन्दरैरित्यर्थः। मधुनयनैः = मत्तनेत्रैः। परश्शतैः = अगणनीयैः, वीरवरैः = श्रेष्ठैर्बलिभिः, व्रियमाणम् = स्वीक्रियमाणम्। यत्कथानाम् = यच्चरितानाम्, उपकथनैः = वर्णनैः। बालकान्

दाहिने हाथों में सोने के दो-दो कड़े धारण किए हुए हैं, जिनकी पगड़ियाँ पीली, लाल, काली, अरुण, सफेद, चितकबरी, हल्की पीली, मटमैली, गुलाबी आदि विभिन्न रंगों की हैं, जिनके वक्षःस्थल विविध प्रकार की मणियों से युक्त सोने की मालाओं की किरणों से अङ्कित होने के कारण और अधिक भयङ्कर प्रतीत होते हैं, जिन्होंने युद्ध- भूमि में मारे गये शत्रुसमूह के मुकुटों के मोतियों से कुण्डल बना लिये हैं, जिनका शरीर सिंह के समान है और जिनकी आँखें नशीली हैं; जिन (महाराज जसवन्त सिंह) की कहानियाँ सुना-सुनाकर

सिप्रातीरे यद्बाहुविक्रममवलोक्य, क्षणमनिमेषो विस्मृतात्मदेहो विस्मितस्तस्थौ; सदैव यतो बिभेति, साहाय्यं च समपेक्षते, अस्मिन् विश्वस्मिन्नपि भारते वर्षे, नगरे नगरे ग्रामे ग्रामे गृहे गृहे मन्दिरे मन्दिरे च यस्य क्षेमाय विजयाय बलवृद्ध्यै राजसमृद्ध्यै विपुल-सम्पत्त्यै रिपुनिकर-हत्त्यै च द्विजवरा हस्तावुन्नमय्य, सनाम-सङ्कीर्त्तन-माशीराशीनुच्चारयन्ति, 'अस्मास्वपि केचन वीरा ऊर्जस्वलयशसस्ते महापुरुषाः सन्ति' इति यं वारं वारं स्मारं स्मारं वयं सर्वेऽप्यभिमन्यामहे; स एव महावीरः, स एव भारत-रत्नम्, स एव राजकुल-भूषणम्, स एव च धर्मधारिधौरेयः अद्य यवनानां पक्षमवलम्ब्य स्वकीयानामेव

शाययन्ति=स्वापयन्ति, तच्चरितक्रूरतां निशम्य भीता बालाः स्वपन्तीति तत्त्वम् । **सिप्रातीरे**=सिप्रातटे । उज्जयिनीभूषणायिता मालवविहारिणी सिप्रा नदी । **विस्मृतात्मदेहः**=अविगणितस्वशरीरः । **विस्मितः**=विलक्षः । **विश्वस्मिन्नपि**=सम्पूर्णेऽपि । **क्षेमम्**=कल्याणम्, लब्धसंरक्षणरूपम् । **रिपुनिकरस्य**=शत्रुव्रजस्य, **हतिः**=मारणम्, तस्यै । हत्त्यै, इत्यत्र "अनजि चे"ति वैकल्पिकं द्वित्वम् । **ऊर्जस्वलयशसः**=विपुलकीर्त्तयः । **धर्मधारिधौरेयः**=धार्मिकाग्रेसरः । **स्वकीयानामेव**=स्वदेशीयानां स्वगो-

---

राजपूताने की महिलायें बच्चों को सुलाया करती हैं, शिप्रा नदी के किनारे जिनके भुजपराक्रम को देखकर दिल्लीकलङ्क औरङ्गजेब भी थोड़ी देर के लिये निर्निमेष, आत्मविस्मृत और विस्मित हो गया था, और वह जिनसे सदैव डरता रहता है, तथा जिनकी सहायता की अपेक्षा करता है; इस सम्पूर्ण भारतवर्ष में नगर-नगर, ग्राम-ग्राम, घर-घर और मन्दिर-मन्दिर में जिनके कल्याण, विजय, बल-वृद्धि, राज्यसमृद्धि, विपुल सम्पत्ति की प्राप्ति और शत्रुसमूह के नाश के लिये, श्रेष्ठ ब्राह्मण, दोनों हाथ उठाकर, नाम लेकर, आशीर्वाद उच्चारण करते हैं; जिनको हम लोगों में भी कुछ 'वीर और महिमाशाली महापुरुष हैं', इस प्रकार वार-बार स्मरण कर, हम सब लोग अभिमान (स्वाभिमान का अनुभव) करते हैं; उन्हीं महावीर, भारतरत्न, राजकुलभूषण, धार्मिकों में श्रेष्ठ महाराज

शिरांस्युच्छेत्तुं चतुरङ्गिणीं सेनां सज्जितवानस्तीत्यवलोक्य क्षुभितं महाराष्ट्र-राजस्य हृदयम् ।"

यशस्विसिंहं किञ्चिल्लज्जया तिर्यग्वदनं विमनायमानमिवावलोक्य पुनः—

"वीरवर! साधारणोऽहं दूतः, महाराजैः सह कथमालपनीयमिति भाषण-परिपाटीमपि न जानामि-इति भाषण-भङ्गीवैधुर्य्य-प्रयुक्तोऽपराधो भवेच्चेत् क्षन्तव्यः, किन्तु निरीक्ष्यताम् किमर्थेयं रण-सज्जा? किमर्थं एष महोपकार्या–सन्निवेशः? किमिति भयानक-भल्ला भासन्ते? किमिति चञ्चलाश्चन्द्रहासाश्चमत्कुर्वन्ति? कमश्वयितुमेते सादिनः? कं च भस्मसात्कर्तुं ज्वालाजटिल एष भव-

---

त्राणां च । उच्छेत्तुम्=कर्त्तितुम् । क्षुभितम्=आविलम्, व्याकुलमित्यर्थः । तिर्यग्वदनम्=साचीकृतमुखम् । भाषणपरिपाटीम्=कथनशैलीम् । भाषण-भङ्गीवैधुर्य-प्रयुक्तः=कथन-प्रकार-शून्यताजन्यः । किमर्था=किम्प्रयोजनिका । महोपकार्यासन्निवेशः=महाशिविरविन्यासः । अश्वयितुम्=अश्वैराक्रमितुम् । सादिनः=अश्वारोहाः । भस्मसात्कर्तुम्=दग्धुम् । ज्वाला-

---

ने आज यवनों का पक्ष लेकर अपने ही लोगों का सिर काटने के लिये चतुरङ्गिणी सेना सजाई है, यह देखकर महाराष्ट्रराज शिवाजी का हृदय क्षुब्ध हो रहा है।"

जसवन्तसिंह कुछ लज्जित से होकर, मुँह घुमाकर, अनमने से हो गये। उन्हें इस प्रकार अन्यमनस्क सा देखकर महादेव पण्डित पुनः कहने लगे—

"वीरवर! मैं सामान्य दूत हूँ। महाराजाओं के साथ किस प्रकार बातचीत करनी चाहिये, यह (वार्तालाप का ढंग) भी मैं नहीं जानता हूँ, अतः यदि, अपनी बात को ठीक तरह से कह सकने की कला न जानने के कारण, वार्तालाप में कोई अशिष्टता या अपराध हो गया हो, तो क्षमा कीजिये। किन्तु यह देखिये कि युद्ध की यह तैयारी किस लिये है? ये भीषण भाले क्यों चमक रहे हैं? ये चञ्चल तलवारें क्यों चमचमा रही हैं? तथा आपकी यह

त्कोप-दावानलः ? किं ये भवन्तमाशिषो ब्रुवन्ति; तेषामेव रक्तै रेणुकाराशिमरुणयितुम् ? ये भवन्माहात्म्य-समाकर्णनेन मोदन्ते; तेषामेव मेदोभिर्मेदिनीं मेदस्विनीं निर्मातुम् ? ये भवन्तं निजकुलावतंसं मन्यन्ते; तेषामेव वंशं ध्वंसयितुम् ? ये निरर्थं दीनान् लुण्ठन्ति, कुलीन-कन्या अपहरन्ति, मन्दिराणि निपातयन्ति, सद्यो वृक्णैः प्रजानां मस्तकैर्नयनैश्च चिक्रीडन्ति; तानेव वैदिक-मर्य्यादा-विलोपन-व्रतिनो वैरिहतकान् वा वर्द्धयितुम् ? महाराज ! यथा श्येनो वज्र-निष्पेष-निष्ठुरैर्निज-चञ्चु-चरणाघातैर्दीनान् भयविह्वलान् पतत्रिणो निहत्य व्याधाय समर्पयति, स्वयं च वधमात्रफलभाग् भवति,

---

जटिलः = ज्वालावर्द्धितः, ब्रूञो दुह्यादित्वेन भवन्तमाशिष इत्युभयस्यापि कर्मत्वं वोध्यम् । रेणुकाराशिम् = धूलिव्रातम् । अरुणयितुम् = रक्तयितुम् । मेदोभिः = विस्रैः । "मेदस्तु पलतेजः पलोद्भवम् । विस्रमस्थिकरस्नेहवरं गौतममित्यपी"ति वैजयन्ती । मेदिनीम् = धरणीम् । मेदस्विनीम् = विस्रमयीम् । निर्मातुम् = कर्त्तुम् । निजकुलावतंसम् = स्वान्वयसम्भूतम् । निरर्थम् निष्प्रयोजनम् । लुण्ठन्ति = चोरयन्ति । सद्योवृक्णैः = तत्काल-कृत्तैः । चिक्रीडन्ति = वारं वारं क्रीडां कुर्वन्ति । वैदिकमर्यादायाः = आर्यपद्धतेः, विलोपनम् = विनाशनमेव, व्रतं तद् येषामस्तीति तान् । "अत इनिठनौ" । वर्द्धयितुम् = वृंहयितुम् । श्येनः = पक्षिघाती पक्षी । वज्रनिष्पेषनिष्ठुरैः = कुलिश-पतन-कठोरैः । निजचञ्चु-चरणाऽऽघातैः = स्वत्रोटिपादमारणैः । भयविह्वलान् =

उद्दीप्त क्रोधाग्नि किसको भस्मसात् करना चाहती है ? क्या जो आपको आशीर्वाद देते हैं, उन्हीं के रक्त से धूलि को रञ्जित करने के लिये ? जो आपको अपने कुल का भूषण समझते हैं, उन्हीं के वंश का विध्वंस करने के लिये ? जो अकारण ही असहायों को लूटते हैं, मन्दिरों को ध्वस्त करते हैं, तत्काल काटे गये प्रजा के मुण्डों और नेत्रों से वार-वार खेलते हैं, उन्हीं वेद की मर्यादा को लुप्त कर देने का व्रत धारण करने वाले नीच शत्रुओं को बढ़ावा देने के लिये ? महाराज ! बाज पक्षी अपनी चोंच और चंगुल के वज्रपात के समान

तथाभूतं व्रतं न शोभते श्रीमति, यन्निरर्थं स्वतन्त्रा अपि प्रजा विजित्य, केवलमविचार–व्यभिचार–प्रचाराय धूर्तानामेषां यवनानां हस्ते समर्प्यन्ते । क्षत्रिय-व्याघ्र ! किमहं कथयामि ? स्वयमेव विवेच्योऽयं विषयः ।"

अथ कांश्चित् क्षणान् शिरःकण्डूयनैरेव यापयित्वा किञ्चिदह्रीणोऽपि त्रपां संवृण्वन्निव शनैरवादीद् मरुराजः ।

यशस्वि०—दूतवर ! साधु, तव भाषण–भङ्गीमत्यन्तं प्रशंसे । न तव भाषणे गौरवमवगूर्य्यते, पदवैधुर्यं ध्रियते, प्रसादो निरस्यते, संशयापादक—पद—प्रचयो वा प्रचीयते । विलक्षणं तव पाटव-

---

भीतिकातरान् । पतत्रिणः = पक्षिणः । द्वितीयान्तम् । व्याधाय = मृगयवे । समर्पयति = ददाति । व्याधाः श्येनान् पालयन्ति, तद्द्वारा चाखेटं कारयन्तीति लोकप्रसिद्धम् । वधमात्रस्य = केवलमारणस्य, फलं भजति तथाभूतः । अविचारस्य = अविवेकस्य, व्यभिचारस्य = मर्यादालङ्घनस्य च प्रचाराय । क्षत्रियव्याघ्र ! = राजन्यश्रेष्ठ ! विवेच्यः = विचारणीयः ।

शिरःकण्डूयनैः = शिरःखर्जनैः । लज्जितस्योत्तरदौर्बल्ययुतस्य च ग्लानिसूचकमिदम् । त्रपाम् = ह्रियम् । संवृण्वन् = आच्छादयन् । गौरवम् =

कठोर प्रहार से दुर्बल और भयभीत पक्षियों को मारकर व्याध को सौंप देता है और स्वयं केवल हिंसा के फल का ही भागी होता है, (किन्तु) उक्त बाज पक्षी के समान आचरण श्रीमान् को शोभा नहीं देता, कि आप अकारण ही स्वतन्त्र प्रजा को भी जीतकर, केवल अविवेक और दुराचार के प्रचार के लिये, इन धूर्त यवनों के हाथ में सौंप रहे हैं । क्षत्रियश्रेष्ठ । मैं क्या कहूँ ? इस विषय पर आप स्वयं ही विचार करें ।"

इसके पश्चात् कुछ क्षणों तक सिर खुजलाते हुए से, कुछ लज्जित होते हुए भी लज्जा को छिपाते हुए से जसवन्तसिंह, मन्द स्वर से बोले––

जसवन्त सिंह––दूतवर ! शाबाश । तुम्हारी वार्तालाप की कला की मैं बहुत सराहना करता हूँ । तुम्हारी उक्तियों से गौरव का अभिघात नहीं होता,

मालापेषु, गहन-गहनैः, कोमल-कोमलैः, मधुर-मधुरैः, वाचां विलासैर्मनो हरसि। यदेव वक्तुं प्रवर्त्तसे; तन्मूर्तिमिव पुरो विलिखसि, यदेव वक्तुमीहसे; तदासार-प्रसारैरिव परितः प्लावयसि। धन्यः शिवो यस्त्वादृशान् कल्पना-केसरिणो दूतत्वे नियुनक्ति। त्वदुक्ति-श्रवण-विरिरंसैव न भवत्यस्माकम्।

महा०—महाराज! एष साधारणोऽस्ति दूतो न जानीते उचितमनुचितं वेति सर्वथा क्षमा-भिक्षुरेष जनः। (इति नतकन्धरः समास्थित।)

श्रेष्ठचम्। **अवगूर्यते** = हिनस्ति। **पदवैधुर्यम्** = उत्थिताकाङ्क्षासाशमनाय समपेक्षितपदशून्यता। न **ध्रियते** = नावतिष्ठते। **प्रसादः** = स्पष्टार्थतात्मा गुणः। **निरस्यते** = क्षिप्यते। "असु क्षेपणे"। **संशयापादकानाम्** = सन्देहजनकानाम्, पदानाम्, **प्रचयः** = आधिक्यम्। **प्रचीयते** = वर्धते, निरर्थकपदराहित्यमिति यावत्। **पाटवम्** = पटुता। **गहनगहनैः** = अतिगम्भीरार्थैः, **तन्मूर्त्तिम्** = तत्स्वरूपम्। **ईहसे** = वाञ्छसि। **तदासार-प्रसारैः** = तद्धारासम्पातप्रपातैः। गौणोऽयं प्रयोगः। "धारासम्पात आसारः" इत्यमरः। **कल्पनाकेसरिणः** = नवनवविचारमृगेन्द्रान्, तादृशविचारपटूनिति यावत्। **त्वदुक्तेः** = त्वद्भाषणस्य, **श्रवणात्** = आकर्णनात्, **विरिरंसा** = विरन्तुमिच्छा।

उनमें पदों की न्यूनता का अनुभव भी नहीं होता है, उनमें न तो प्रसाद गुण का अभाव है और न संशयात्मक शब्दों का बाहुल्य, तुम्हारी वार्तालाप की कुशलता अद्भुत है। अत्यन्त गूढ़, सुकोमल और मधुरतम वचनविन्यास से तुम मन को मुग्ध कर देते हो। जो भी कहना प्रारम्भ करते हो, मानो उसका चित्र ही सामने खींच देते हो। जो चाहते हो उसे मानो वर्षा की धारा से सर्वतः आप्लावित कर देते हो। शिवाजी धन्य हैं, जिन्होंने तुम्हारे जैसे कल्पनाकुशलों (प्रतिभाशालियों) को दूत नियुक्त किया है। तुम्हारी बातों को सुनने से हमारा मन ही नहीं ऊबता है।

महादेव पण्डित—महाराज! मैं साधारण दूत हूँ, उचित या अनुचित नहीं जानता, अतः सर्वथा क्षमा-प्रार्थी हूँ।

(यह कह कर महादेव पण्डित सिर झुकाये बैठे रहे।)

यश०—अथ प्रकृतमाकलय। न खल्वस्माभी राजपुत्र-देशीय-क्षत्रियैर्भयेन वा, लोभेन वा, कस्याप्युपचिकीर्षया वा, अपचिकीर्षया वा यवन-हस्तेष्वात्मा समर्पितः। अस्माभिरेव वारसहस्रं यवनाः खङ्गैः खण्डशः कृताः, अस्माभिरेव वारं वारं ते आसिन्धुकूलं विद्राविताः, पारतन्त्र्य--कलङ्कमसहमानानामस्माकमेव नवनीतकोमला रमण्यो ज्वाला-जाल-जटालेषु ज्वलनेषु आत्मानं ज्वलयाम्बभूवुः। एवमेवाऽऽपदोऽनुभवतामस्माकं वत्सराणां शतकानि व्यतीतानि। न जानीमहे किमिवेहितं भगवत्या महामायायाः, यदितोऽपि अधिकार–वैशिष्टय-मेव कलयति भारत-विद्रोहि-सन्दोहः। वयं च अनिच्छन्तोऽपि आत्म-

---

क्षमाभिक्षुः = क्षमाप्रार्थी। नतकन्धरः = नमितग्रीवः। समास्थित = स्थितोऽभूत्। "समवप्रविभ्यः स्थः" इत्यात्मनेपदम्।

उपचिकीर्षया = उपकर्तुमिच्छया। अपचिकीर्षया = अपकर्तुमिच्छया। वाराणां सहस्रं वारसहस्रम् = अनेकवारम्। आसिन्धुकूलम् = सिन्धुनदतटपर्यन्तम्। अभिविधावाङ्। विद्राविताः = उत्सारिताः। पारतन्त्र्यम् = पराधीनतैव, कलङ्कः, तम्। नवनीतकोमलाः = हैयङ्गवीनमृद्वङ्ग्यः। ज्वालाजालैः = कीलमालाभिः, जटालेषु = उपचितेषु। ज्वलनेषु = दहनेषु। ईहितम् = चेष्टितम्। महामायायाः = 'अजामेकामि''ति श्रुतायाः सकलजगदुद्भवस्थितिनिरोधलीलाया अगणितगुणगणसमुचितकलेवराया अपि त्रिगुणात्मिकायाः। अधिकारवैशिष्ट्यम् = विशिष्टमधिकारम्। कलयति =

जसवन्त सिंह—अच्छा, अब वार्तालाप के मुख्य विषय पर आओ। हम राजस्थान के क्षत्रियों ने भय से या लोभ से, या किसी का उपकार या अहित सोचकर, यवनों के हाथों में अपने को नहीं सौंप दिया है। हम लोगों ने ही हजारों वार यवनों को तलवारों से टुकड़े-टुकड़े किया, हम लोगों ने ही कई वार इनको सिन्धु के तट तक भगाया है, पराधीनता के कलङ्क को सहन न करने वाले हम लोगों की ही नवनीत के समान कोमल ललनाओं ने ज्वालाओं के समूह से प्रदीप्त अग्नि में आत्माहुति दी है। इसी प्रकार की आपत्तिओं को सहन करते हुए हमें सैकड़ों वर्ष बीत गये। न जाने भगवती महामाया को क्या

नस्तद्धस्तगतानेव पश्यामः। अधुना तु विश्वस्मिन्नपि राजपुत्रदेशे तेषां तथाऽधिकारोऽस्ति; यत् केवलमात्मोच्छेदायैव तैः सह विरोधः स्यात्—इति किमिव क्रियेत ? भाग्यैरेतेषां कदर्य्याणां परस्परमैक्यमपि नास्ति अस्माकम् । तद् यथोचितं निर्वहामः ।

महा०—महाराज ! सम्यगवैमि, मा स्म भूद् राजपुत्रदेशे तादृशं यौष्माकीण-बलम्, परमस्मिन् देशे तु यवनानामधुनाऽपि तथा प्रबलोऽधिकारो न संवृत्तोऽस्ति। शतशो दुर्गाणि सन्ति, यवन-रुधिर-तृषित-खड्गप्रचयोद्भासित-भुजाः सहस्रशो महाराष्ट्रव्याघ्राः सञ्चरन्ति।

धारयति। **भारतविद्रोहिसन्दोहः** = हैन्दवप्रत्यर्थिनिकरः, यवना इत्यर्थः। **आत्मोच्छेदाय** = स्वविध्वंसनाय। **कदर्य्याणाम्** = कुत्सिताचरणानाम्। **निर्वहामः** = समयं यापयामः।

युष्माकमिदं यौष्माकीणं तच्च तद् **बलम्** = सामर्थ्यम्। शैषिकेऽणि "तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकावि"ति युष्माकादेशः। **यवनानाम्** = म्लेच्छानाम्, **रुधिरस्य** = लोहितस्य **तृषितानाम्** = पिपासितानाम्, **खड्गानाम्** = असीनाम्, **प्रचयैः** = निकरैः, **उद्भासिताः** = चञ्चद्भासः, **भुजाः** = बाहवो येषां ते।

अभीष्ट है कि इतने पर भी भारतवर्ष के शत्रुओं का समूह, और भी अधिक अधिकार प्राप्त करता जा रहा है और हम लोग न चाहते हुये भी अपने को उनके हाथ (अधिकार) में देख रहे हैं। इस समय तो समस्त राजपूताने पर उनका ऐसा अधिकार है कि उनसे विरोध करने का अर्थ केवल अपना विनाश करना ही है। इस दशा में क्या किया जाये ? इन दुराचारियों के भाग्य से हम लोगों में परस्पर एकता भी नहीं है, अतः हम समय के अनुरूप ही किसी प्रकार निर्वाह कर रहे हैं।

महादेव—महाराज ! मैं (आप की बात को) भली-भाँति समझता हूँ। भले ही राजपूताने में आप लोगों की वैसी सामर्थ्य न हो, परन्तु यहाँ तो (महाराष्ट्र में) अभी तक यवनों का उतना प्रबल अधिकार नहीं हो पाया है। सैकड़ों दुर्ग हैं; यवनों की रक्त की प्यासी तलवारों से सुशोभित भुजाओं वाले सहस्रों

एषां च सर्वोऽपि वीरता-धुरन्धरान् क्षत्रियकुलमणीन् भारत-गौरवा-श्रयान् दत्त-म्लेच्छ-हस्तावलम्बनान् युष्मानवलोक्य रोदिति। युष्मदग्रे सर्वोऽपि बद्ध-कर-सम्पुटः। राज्यमेतदखिलं भावत्कम्, शिव-वीरोऽपि भवता स्वसेनापतिष्वेवान्यतमोऽङ्गीक्रियताम्, दिल्लीश्वरेण च सह युद्धमारभ्यताम्। यो यौवराज्य-समय एव महासमरे चित्रार्पित इव चकितीकृतो भवता, यः प्राप्त-साम्राज्य-सिंहासनोऽपि बिभ्यदिव श्रीमन्तमितस्ततो महायुद्धेषु सम्प्रेष्य श्रीमदनिष्टं शुश्रूषते; स सर्वदा दण्डेनैव शिक्षणीय आर्यैः। अस्मिन् महा-

---

महाराष्ट्रव्याघ्राः = श्रेष्ठा महाराष्ट्रदेशीयाः। **सर्वोऽपि,** अस्य 'मध्ये' इत्यादौ, 'जनः' इति चान्ते शेषः। **दत्तम्लेच्छहस्तावलम्बनान्** = यवनसाहाय्य-कारिणः। **बद्धकरसम्पुटः** = कृतहस्ताञ्जलिः। **भावत्कम्** = भवदीयम्। **अङ्गीक्रियताम्** = स्वीक्रियताम्। सेनापतिमेव जानीहीति यावत्। **यौवराज्यसमये** = राज्याधिकारप्राप्त्यवसरे। **चित्रार्पित इव** = चित्रलिखित इव। **चकितीकृतः** = साश्चर्यीकृतः। यशस्विसिंहेनावरङ्गजीवस्य चादौ प्रत्यक्षं युद्धमभूत्, पश्चादपि चान्तःकलह आसीदितीतिवृत्तेषु प्रसिद्धम्। **प्राप्तसाम्राज्य-सिंहासनोऽपि** = लब्धचक्रवर्त्तित्वपदोऽपि। **बिभ्यदिव** = भयं कुर्वाण इव। वत इति शेषः। **शुश्रूषते** = श्रोतुमिच्छति। **दण्डेनैव** = न तु सामादिभिः।

महाराष्ट्रकेसरी घूम रहे हैं। इनमें से सभी वीरश्रेष्ठ, क्षत्रियकुलभूषण और भारत की प्रतिष्ठा के आश्रयभूत आप को म्लेच्छों का सहायक बनते देखकर रो रहे हैं। आप के आगे सभी बद्धाञ्जलि हैं। यह सम्पूर्ण राज्य आप का है। शिवाजी को भी आप अपने सेनापतियों में से एक मान लीजिए और दिल्लीश्वर से युद्ध छेड़ दीजिये। जिसे आपने युवराज होते ही महायुद्ध में चित्रलिखित की भाँति चकित कर दिया था, जो सम्राट् का सिंहासन प्राप्त करके भी (आप से) डरता हुआ-सा आपको इधर-उधर महायुद्धोंमें भेज कर, आपका अनिष्ट सुनना चाहता है, उसको तो आप दण्ड से ही शिक्षा दीजिये।

कार्ये श्रीमत्प्रतिवेशी आमेर–देशाधीशो न सह युङ्क्ते भवता चेन्निज-भक्तो महाराष्ट्रराज एव विधेयो विधीयताम्। ऐक्यं नास्तीति मा स्म भूच्छोक: श्रीमताम्। उद्योगेनैक्यमारभ्यताम्।

शिवो भारतीयानां पारतन्त्र्यं नावलुलोकयिषति। राज्यलोभस्तु तस्य नास्ति इति विजये राज्यमिदमप्यत्र भवतामेव भवेत्, किन्तु यथा भारत-द्रुहां यवनानां प्राबल्येन प्रत्यहं धर्मलोपो न स्यात्, तथैव शिवस्याभिप्राय:।

यश०––राज्यं त्वस्माकमपि बह्वस्ति। वयमपि गर्द्धाभिभूता न स्म:। शिवस्योद्देश्यं चाखिलं प्रशस्यमस्ति। वयमपि शिवमवलोक्य क्षत्रियकुलस्य च सारवत्तामाकलय्य मोदामहे, किन्तु शिवस्य व्यापा-

---

श्रीमत्प्रतिवेशी = भवत्पार्श्वदेशस्थ:। **सहयुङ्क्ते** = सहयोगं करोति। **विधेय:** = आज्ञाकारी।

पारतन्त्र्यम् = वैदेशिकाधिपत्यम्। **अवलुलोकयिषति** = द्रष्टुमिच्छति। **भारतद्रुहाम्** = हैन्दवद्रोहकारिणाम्। क्विवन्तम्। **प्रत्यहम्** = प्रतिदिनम्।

गर्द्धया = अतिलोभेन, **अभिभूता:** = तिरस्कृता:। **प्रशस्यम्** = अति-श्लाध्यम्। **सारवत्ताम्** = बलयुक्तताम्। **व्यापारेषु** = कार्येषु।

इस महान् कार्य में यदि आपके पड़ोसी आमेर के राजा आपको सहयोग नहीं दें, तो अपने भक्त शिवाजी को ही सेवक बना लीजिये। 'एकता नहीं है,' यह चिन्ता आप न करें। (एकता के लिये) उद्योग करके एकता का प्रारम्भ कीजिये।

शिवाजी भारतीयों की परतन्त्रता नहीं देखना चाहते। राज्य का लोभ तो उन्हें है नहीं, अत: विजय प्राप्त हो जाने पर यहाँ भी आप का ही राज्य रहे, किन्तु जैसे भी हो, भारत के द्रोही यवनों की प्रतिदिन की प्रबलता से धर्म का लोप न हो, यही शिवाजी का अभिमत है।

जसवन्तसिंह—राज्य तो हमारा भी बहुत (बड़ा) है, लोभ से तो हम भी आक्रान्त नहीं हैं और शिवाजी का सम्पूर्ण उद्देश्य भी श्लाध्य है। हम भी शिवाजी को देखकर तथा क्षत्रिय वंश की शक्ति को सोचकर प्रसन्न होते हैं,

रेष्वेकमेवास्मभ्यं न रोचते, यदेष चौराणां लुण्ठकानां च वृत्त-मनुसरति इति।

महा०––महाराज ! मैवम्, किं कुत्रापि कुतश्चिदपि समश्रौषीत् श्रीमान्; यद् निरपराधान् पथिकान् लुण्ठति महाराष्ट्र-राजः ? आहोस्वित् कस्यापि भित्तिं भित्त्वा धनमपजहार श्रीमान् ? किन्तु लुण्ठकानामेषामत्याचारमसहमानो लुण्ठका यथा न लुण्ठेयुस्तथैतान् दण्डयति। सन्ति प्रबलाः परिपन्थिनः, भवादृशाश्च तेषामेव दत्तहस्तावलम्बनाः। धर्मो हि सर्वथा रक्षणीयः। सतीत्वध्वंसनमन्दिरावपातादिरूपो घोरतरो दुराचारः सर्वथा प्रतिरोद्धव्यः। आततायिनश्चावश्यमेव दण्डनीयाः––इति क्वचन परवशतया नीतिविशेषस्यापि आश्रयोऽपेक्ष्यत इति किमियं लुण्ठकता ?

अस्मभ्यं न रोचते = अस्मत्प्रीतिकरो न भवति। "रुच्यर्थानां प्रीयमाणः" इति सम्प्रदानसंज्ञा।

समश्रौषीत् = सम्यक् श्रुतवान्। निरपराधान् = दोषरहितान्। भित्तिम् = कुड्यम्। भित्त्वा = त्रोटयित्वा। सन्धिं कृत्वेति यावत्। अपजहार = चोरयामास। एषाम् = यवनानाम्। दण्डयति = पीडयति। परिपन्थिनः = विरोधिनः। सतीत्वध्वंसन-मन्दिरावपातादिरूपः = पातिव्रत्यविनाशन-देवालयविध्वंसरूपः। आततायिनश्चावश्यं दण्डनीयाः।

किन्तु शिवाजी के कार्यों में एक ही हमें अच्छा नहीं लगता कि वे चोरों और लुटेरों के आचरण का अनुकरण करते हैं।

महादेव––महाराज ! ऐसा मत कहिए। क्या आपने कहीं भी किसी से भी यह सुना है कि शिवाजी निर्दोष यात्रियों को लूटते हैं ? या उन्होंने किसी की दीवाल खोदकर धन चुराया है ! किन्तु इन लुटेरों (यवनों) के अत्याचारों को सहन न कर सकने वाले वे (शिवाजी) इन लुटेरों को ऐसा दण्ड देते हैं, जिससे ये लूट ही न सकें। शत्रु प्रबल हैं, और आप जैसे लोग भी उन शत्रुओं की ही सहायता करते हैं; जैसे भी हो धर्म की रक्षा करनी है, सतीत्व का अपहरण, मन्दिरों का विध्वंस आदि दारुण दुराचार रोकना है और आततायियों

दिल्ली-कलङ्कस्तु प्राधान्येन श्रीमन्तमेव द्वेष्टि। श्रीमानपि तद् दुराचारमसहमानः शिवापेक्षयाऽप्यधिकतरस्तच्छत्रुः। श्रीमताऽपि शठे शाठ्यमिति मुद्रया कूटनीतिरङ्गीक्रियेत चेत्, किमियं लुण्ठकता स्यात्?

यश०—[दीर्घमुष्णं निःश्वस्य] अथ मां किमभिदधाति शिवराजः?

महा०—मरुराज! स श्रीमतः साहाय्यमभयं च वाञ्छति।

"आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्।
नाऽऽततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन॥"

"आततायी वधार्हणः" इत्यादिभिः शतशः स्मृतिपुराणेतिहासवचनैस्तेषां दण्डनीयत्वं सुव्यक्तम्। परवशतया = परवत्तया, आवश्यकतयेति यावत्। नीतिविशेषस्य = "व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः" इत्येवंरूपस्य।

अधिकतरः = श्रेष्ठतरः। तच्छत्रुः, "शठं प्रति चरेच्छाठ्यमि"ति समाश्रयतः शत्रुत्वं मित्रव्याजाच्छन्नं न दोषावहम्।

"रामकृष्णेन्द्रादिदेवैः कूटमेवाऽऽदृतं पुरा"

इत्यादिवचनशतेन नीतिकारैः सेतिहासप्रदर्शनं समर्थितमावश्यकं चेदमिति मन्तव्यम्।

को दण्ड देना भी अनिवार्य है, अतः कहीं कहीं विवशता के कारण विशिष्ट नीति के आश्रय की अपेक्षा होती है, तो क्या यह लुटेरापन है?

दिल्लीकलङ्क औरङ्गजेव तो आप से ही द्वेष करता है। श्रीमान् भी उसके अनाचार को न सहन करने के कारण उसके शिवाजी से भी वड़े शत्रु हैं। यदि आप भी 'दुष्ट के साथ दुष्टता' के सिद्धान्त के अनुसार कूटनीति का सहारा लें तो क्या यह लुटेरापन होगा?

जसवन्त सिंह—(दीर्घ और उष्ण निश्वास लेकर) तो शिवाजी मुझसे क्या कहते हैं?

महादेव—महाराज! वे आप से सहायता तथा अभय चाहते हैं।

यश०–दिल्लीश्वरेण सह कृतप्रतिज्ञः कथमन्यथा विधास्यामि ?

महा०—भगवन्! ये हि रोदं रोदं पादयोर्विलुण्ठतामपि "त्रायध्वं त्रायध्वम्" इति सहाहाकार-चीत्कारैः रोदसी रोदयतामपि दारा अपहरन्ति, इष्टदेव-प्रतिकृतीश्चूर्णयन्ति, बालान् वृद्धांश्च सकष्टं घ्नन्ति; तेषामेषां दुर्विनीतानामाततायिनां बलेनापि च्छलेनापि च दण्डनं परम-पुण्यमेव; न पापम्। स्वयमेव धर्म–मर्म–गौरव–लाघवाभ्यामालोचनीयोऽयं विषयः।

यश०—[चिरं तूष्णीं चिन्तयित्वा, आत्मनोऽप्यवरङ्गजीवस्य राज्यप्राप्तेरपि पूर्वसमयमारभ्याद्यावधि अन्तरेव जाज्वल्यमानं क्रमतो गुप्तरूपेणैव प्रवर्द्धमानं क्वचित् क्वचित् स्फुटमुपदृश्यमानं कथं कथमपि वीरवर-जयसिंहादिभिरुपशम्यमानं

रोदं रोदम् = रुदित्वा रुदित्वा। रोदसी = द्यावापृथिव्यौ। रोदयताम् = विलापयताम्। दाराः = स्त्रीः। हेमचन्द्रानुसारि-पूर्वप्रदर्शित-टावन्तस्य शसि। "पुं भूम्नि दारा" इति कोशोक्तस्य तु दारानित्येव। इष्टदेवप्रतिकृतीः = रामादिप्रतिमाः। छलेनापि = कूटनीत्याऽपि। धर्ममर्मगौरवलाघवाभ्याम्, धर्मस्य हि सूक्ष्मा गतिः, कियन्तोऽधर्मत्वेनाऽऽपाततो भासमाना धर्माः, कियन्तश्च धर्मत्वेन भासमाना अधर्माः, इति शतशः स्मृतिवचनैः स्पष्टीकृतम्।

जाज्वल्यमानम् = अतितरां ज्वलत्। क्रमतः = शनैः शनैः। प्रवर्द्धमा-

---

जसवन्त सिंह—मैंने दिल्लीश्वर से प्रतिज्ञा की है, उसके विपरीत कार्य कैसे कर सकूंगा ?

महादेव—भगवन्! जो रो-रो कर पैरों पर गिरने वालों, 'रक्षा करो, रक्षा करो' इस प्रकार हाहाकार करते हुये चीत्कार से पृथिवी और आकाश को रुलाने वालों की भी स्त्रियों को बलपूर्वक अपहरण कर लेते हैं, इष्टदेव की मूर्तियों को चकनाचूर कर देते हैं, बालकों और वृद्धों को (भी) कष्ट देकर मार डालते हैं, ऐसे इन उच्छृङ्खल आततायियों को बल से और छल से भी दण्ड देना परम पुण्य ही है, पाप नहीं। धर्म के मर्म का, गौरव और लाघव द्वारा विवेचन करके आप स्वयं इस विषय पर विचार करें।

महावैरं विचार्य नैजमपि च महादेवसदृशमेव सिद्धान्तं विभाव्य सर्वं मनस्येव निगीर्य्य प्रकृतानुरूपमाह–]

"दूतप्रवर ! दिल्लीश्वरं "महाराष्ट्रैः सह योत्स्ये" इति कथयित्वा समायातोऽस्मि, तद् योत्स्ये।"

"महा०—सत्यं योत्स्यते, स्व-वंश-जातानामेव क्षत्रिय-बालकानां वक्षश्छुरिकाभिर्विदारयिष्यते। सद्यश्छिन्न-ब्राह्मण-कन्धरा-विगलद्-रुधिरप्रवाहैर्भगवती वसुमती स्नपयिष्यते। यवनहस्तेषु अधिकारं समर्प्य महामांसदिग्धा च भारतभूर्द्रक्ष्यते"

नम् = वृद्धिं गच्छत् उपशम्यमानम् = निर्वाप्यमाणम्। निगीर्य्य = निपीय। गोपयित्वेति यावत्। प्रकृतानुरूपम् = स्थित्यनुकूलम्। दिल्लीश्वरम्, कथयित्वेत्यस्य कर्म।

वक्षः = उरःस्थलम्। छुरिकाभिः = कृपाणीभिः। विदारयिष्यते = भेत्स्यते। सद्यश्छिन्नेभ्यः = तत्कालकृत्तेभ्यः, ब्राह्मणकन्धराभ्यः = विप्रग्रीवाभ्यः। विगलताम् = पतताम्, रुधिराणाम् = लोहितानाम्, प्रवाहैः = धाराभिः। वसुमती = धरणी। स्नपयिष्यते, रक्तरञ्जिता विधास्यत

जसवन्तसिंह बड़ी देर तक मौन रह कर, सोच कर, औरङ्गजेब के राज्य प्राप्त करने के भी पहले से लेकर आज तक अन्दर ही अन्दर सुलगने वाली क्रमशः गुप्त रूप से ही बढ़ने वाली, कहीं-कहीं स्पष्ट दिखाई पड़ जाने वाली और किसी प्रकार वीरवर जयसिंह आदि राजाओं के द्वारा शान्त की गई शत्रुता को स्मरण कर, तथा अपने सिद्धान्त को भी महादेव पण्डित के सिद्धान्त के समान ही समझकर, सब कुछ मन ही मन पीकर, प्रकृत विषय के अनुरूप बोले—

जसवन्त सिंह—दूत प्रवर ! मैं दिल्लीश्वर से यह कह कर आया हूँ कि मराठों के साथ युद्ध करूँगा, इसलिये मैं युद्ध करूँगा।

महादेव पण्डित—आप सचमुच युद्ध करेंगे, अपने वंश के ही क्षत्रिय-बालकों के वक्षस्थल को कटारों से फाड़ेंगे, तत्काल काटी गई ब्राह्मणों की गर्दन से बहते हुए रक्त की धारा से भगवती वसुन्धरा को स्नान करायेंगे, यवनों के हाथों में अधिकार समर्पित कर गोमांस से आर्द्र भारतभूमि को देखेंगे।

इति प्रस्फुरिताभ्यामधराभ्यामरुणिमाञ्चिताभ्यां च प्रस्फारिताभ्यां नयनाभ्यामचकथत् ।

यशस्विसिंहस्तु तदाकर्ण्य स्थगित इव चकित इव ह्रीत इव अवहेलित इव आक्षिप्त इव पुत्तलीकृत इव क्षणमधः क्षणं पुरः क्षणं त्रिवली-मण्डिते महादेव-ललाटे क्षणं च नासाग्रे दत्तदृष्टिः अवागिव स्तब्धवागिव मन्त्रित इव च तूष्णीमेव तस्थौ ।

महा०—-धर्ममर्मज्ञ ! प्रार्थनामात्रमस्मादृक्षाणाम्, कार्यस्वीकारे तिरस्कारे वा प्रभव एव प्रमाणम् ।

इति यावत् । **महामांसेन** = गोमांसेन, **दिग्धा** = क्लिन्ना । **द्रक्ष्यते** = अवलोकिष्यते ।

प्रस्फुरिताभ्याम् = प्रचलद्भ्याम् । **अरुणिमाञ्चिताभ्याम्**--लौहित्यभूषिताभ्याम् । **प्रस्फारिताभ्याम्** =विकासिताभ्याम् । **अचकथत्** = कथयामास ।

स्थगित इव = निश्चेष्ट इव । **चकित इव** = साश्चर्य इव । **ह्रीत इव** = लज्जित इव । "ह्रीणह्रीतौ तु लज्जिते" इत्यमरः । **अवहेलित इव** = तिरस्कृत इव । **आक्षिप्त इव** = निरस्त इव । **पुत्तलीकृत इव** = कृत्रिममानवाकृतीकृत इव । **त्रिवलीमण्डिते** = रेखात्रयभूषिते । **अवागिव** = मूक इव । **स्तब्धवाक्** = जडीकृतभाषः । **मन्त्रितः** = मन्त्रैः कीलितः । **तूष्णीम्** = अभाषणपरः । किं वा

यह बात महादेव पण्डित ने फड़कते हुए अधरोष्ठों और अरुणिम तथा विस्फारित नेत्रों से कही ।

जसवन्तसिंह तो यह सुनकर निश्चेष्ट से, चकित से, लज्जित से, तिरस्कृत से, लाञ्छित से, कठपुतली से बने हुए, क्षण भर नीचे, क्षण भर सामने, क्षण भर त्रिपुण्ड से विभूषित महादेव के ललाट की ओर तथा क्षण भर नासिका के अग्रभाग की ओर देख कर मूकसे, स्तम्भितसे, तथा मन्त्र के प्रभाव में (वाक्कीलित अर्थात्) मौन कर दिये गयेसे चुप ही रहे ।

महादेव—धर्म के मर्मज्ञ ! हमारे जैसे लोग तो केवल प्रार्थना ही कर सकते हैं, कार्य की स्वीकृति या उसका तिरस्कार करना तो आप ही के हाथ में है ।

यश०—पण्डित ! भवादृशा वा भवादृशानां मन्त्रणा वा तिरस्करणीया न भवन्ति । किन्तु स्वच्छेन हृदा स्वाभिप्रेतं प्रकटयति महाराष्ट्र-राजे, नीति-गर्भं सधर्मोपदेश च मन्त्रयमाणे भवादृशे वाग्मिनि, अहमपि हृद्गतानां निज-विचाराणामाच्छादनमयुक्तं मन्ये इति तथा कथितवानस्मि । शिवस्य सर्वोऽप्युद्देशो मह्यं रोचते, परं भवानेव विचारयतु । प्रतिज्ञाविरुद्धाचरणं महतां कार्यं वा ?

महा०—महाराज ! यं भवान् दिल्लीश्वर इति ब्रूते, तस्यैव राक्षसस्योचितानि कर्म्माणि दृश्यन्ताम्—आत्मनो जनन—पोषण-हेतु-भूतस्य वली पलित सक्रन्द—नयनजल—सिक्त—श्वेत—श्मश्रुकूर्चस्य पितुः साव-

---

भाषेत, तादृशीं भाषां निशम्य । भारतीयत्वाभिमानिभिः निशम्य श्रोतव्येयमेकदा संस्कृतपण्डितवचनावली ।

मन्त्रणा = विचारणा । तिरस्करणीयाः = अनादरणीयाः । भवादृशाः, मन्त्रणा इत्युभयत्रान्वयार्थं तिरस्करणीया । इत्यत्र पुंस्त्रियोरेकशेषः । स्वच्छेन = पूतेन, स्वाभिप्रेतम् = निजाभिमतम् । नीतिगर्भम् = नयमिश्रम् । आच्छादनम् = गोपनम् । कार्यं वा ? नीचानां वेति शेषः । वास्तवं धर्म्यं पन्थानमविज्ञायापाततो निरूपयतीति स्पष्टमेव ।

राक्षसोचितानि = राक्षसैरेव कर्तुमर्हाणि । जननस्य = उत्पत्तेः, पोषणस्य = रक्षणस्य च हेतुभूतस्य = कारणतां गतस्य । वलीपलितस्य = जठरे

जसवन्त सिंह—पण्डित जी ! आप जैसे लोग तथा आप जैसे लोगों की सलाह तिरस्कार करने योग्य नहीं होती; परन्तु निर्मल हृदय से शिवाजी के अपना मन्तव्य प्रकट करने पर तथा आप जैसे वाक्पटु ब्राह्मण के धर्मसम्मत और नीतियुक्त सलाह देने पर, मैं भी अपने हार्दिक विचारों को छिपाना अनुचित समझता हूँ, अतः मैंने वैसा कह दिया (अर्थात् युद्ध करने के अपने निश्चय को आपसे स्पष्ट कर दिया)। शिवाजी के सभी उद्देश्य मुझे पसन्द हैं, परन्तु आप ही सोचिये, प्रतिज्ञा के विरुद्ध आचरण करना क्या महापुरुषों का काम है ?

महादेव—महाराज ! जिसे आप दिल्लीश्वर कह रहे हैं, उसी के राक्षसोचित कर्मों को देखिये । अपने जन्मदाता, पालन-पोषण करने वाले, पके बालों वाले

हेलं निगृह्य कारागारे स्थापनं महतां कार्यं वा ? यैः सह जननी-करस्थ-मोदकमहमहमिकया समाच्छिद्य भुक्तम्, तात ! तातेति भाषणैः क्रीडा-कौतुकैश्च पूर्वं वयो व्यत्यायितम्; तेषामेव सोदर्याणां सच्छलं सदर्पं सक्रौर्यं च मारणम्, ईदृशीभिर्हिंसाभिरपि सोद्दण्डभावं लज्जानावहनं च महतां कार्यं वा ? केवलमार्य-स्वभावानामार्य-जनानां क्लेशनार्थमेव गो-हिंसनम्, प्रतिमा-खण्डनम्, दीन-हीन-सनातन-वैदिकधर्म-शरणाना-मेवास्माकं "जीवं-जीवं" करग्रहणं महतां कार्यं वा ? वाराणस्यादिदेव-तीर्थेषु वलात् पतितानां मन्दिराणां भग्नावशेषैः कपाट-देहलीपाषाणे-

---

भङ्गीरूपरेखया धावल्येन च युक्तस्य। "पलितं जरसा शौक्ल्यम्" इत्यमरः। क्रन्देन = रोदनेन, सह यन्नयनजलम् = यदस्रम्, तेन सिक्तौ श्वेतश्मश्रुकूर्चौ यस्य तस्य। सावहेलम् = सतिरस्कारम्। बन्दिगृहे। कारागारे = जननीकरस्थ-मोदकम् = मातृहस्तस्थमिष्टान्नम्। अहमहमिकया = अहङ्कारेण "अहमहमिका तु सा स्यात् परस्परं यो भवत्यहङ्कारः" इत्यमरः। क्रीडाकौतुकैः = लीलाकौतूहलैः। व्यत्यायितम् = यापितम्। सोदर्याणाम् = भ्रातृणाम्। सोद्दण्डभावम् = सक्रूरतम्। लज्जानावहनम् = त्रपाया अनङ्गीकरणम्। आर्यस्वभावानाम् = उदारप्रकृतीनाम्। जीवंजीवं करग्रहणम् = हिन्दुभ्यो "जजिया" नामकं राजस्वं गृह्यते स्मावरङ्गजीवनकाल इति नेतिवृत्तिविदां तिरोहितम्। कपा-

---

(अत्यन्त वृद्ध) रोने से निकले हुए आँसुओं से सफेद मूँछ और दाढ़ी को सींचने वाले पिता को अपमानपूर्वक कैद कर, कारागार में रखना क्या महापुरुषों का काम हैं ? अथवा जिनके साथ, 'मैं पहले लूँगा, मैं पहले लूँगा' कह कर माता के हाथ के लड्डू खाये, भैया-भैया कहते हुए खेल-कूद में वचपन व्यतीत किया, उन्हीं सहोदर भाइयों को कपटपूर्वक, दम्भपूर्वक, और क्रूरतापूर्वक मार डालना, तथा इस प्रकार की हत्याओं (हिंसा) से भी उद्दण्डतावश लज्जित न होना क्या महापुरुषों का काम है ? अथवा, केवल उदार प्रकृति आर्यों (अर्थात् हिन्दुओं) को कष्ट देने के लिये ही गोहत्या करना, मूर्तियों को तोड़ना, तथा निर्धन, असहाय और सनातन वैदिक धर्म के अनुयायी हम लोगों से 'जजिया' नामक कर वसूलना क्या महापुरुषों का काम है ?

ष्टकादि-प्रचयैरेव स्वमज्जित-रचना च महतां कार्यं वा? अन्तस्थं किञ्चन पुरातनं वैरं संस्मृत्य खरतरयुद्धेष्वत्रभवत एव प्रेषणं भवदनिष्टचिन्तनं च महतां कार्यं वा? यशस्वि-शिवयोर्यतर एव महावीरो महाराष्ट्रयुद्धेऽस्मिन् शयिष्यते; ततर एव गिरि-गुरु-महाभार इव भारतमहावीरः प्रशममेष्यति इति विचार्य्यैव श्रीमतोऽत्र प्रेषण महतां कार्यं वा?

येषां दुराचाराणां दलनाय क्षमाऽपि क्षमां त्यजति, समुद्रोऽपि मर्य्यादामुल्लङ्घते, भगवान् नारायणोऽपि च करुणां जहाति; तेषां दुर्वृत्तानां दण्डनं भवादृशानां महाराजानामुचितम्, उत प्रतिज्ञा–

टस्य = अररस्य, देहल्याः = गृहावग्रहण्याः, पाषाणस्य = प्रस्तर-खण्डस्य, इष्टकादेश्च, प्रचयैः = समूहैः। स्वस्य मज्जितम् = "मस्जिद्" इति ख्यातं यावनदेवस्थानम्, तस्य रचना। खरतरयुद्धेषु = भयङ्करतरसङ्ग्रामेषु। यतरः = ययोरेकः। ततरः = तयोरेकः। गिरिगुरुमहाभार इव = हिमालय-भार इव।

क्षमा = पृथिवी। क्षमाम् = क्षान्तिम्। मर्यादाम् = वेलाम्। प्रतिज्ञा-

---

अथवा, वाराणसी आदि देवतीर्थों में, बल-पूर्वक गिरा दिये गये मन्दिरों के भग्नावशेष किवाड़ों, चौखटों, पत्थरों और ईंटों आदि से ही अपनी मस्जिदों का निर्माण करना क्या महापुरुषों का काम है? अथवा, मन में संजोये गये किसी पुराने वैर का स्मरण कर, भयङ्कर युद्धों में आप ही को भेजना तथा आपका अमङ्गल सोचना क्या महापुरुषों का काम है? अथवा, 'जसवन्तसिंह और शिवाजी में जो भी महायोद्धा इस महाराष्ट्र के युद्ध में धराशायी होगा, वही हिमालय सदृश गुरुतर भार सा भारतीय महावीर विनष्ट होगा,' यह सोचकर आपको यहाँ भेजना क्या महापुरुषों का काम है?

आप जैसे महाराजाओं को क्या करना उचित हैं, जिन दुराचारियों को कुचलने के लिये पृथिवी भी क्षमा छोड़ देती है, समुद्र भी मर्यादा का उल्लङ्घन कर जाता है, भगवान् विष्णु भी करुणा का परित्याग कर देते हैं,

पालन-व्याजेन महापातकवर्द्धनम् ? इति स्वयमेव विविनक्तु श्रीमान् !!

यश०--[किञ्चिद् विचिन्त्य] दूतवर ! तव वाग्मिता मां बलेन वाचंयमं विधत्ते, किन्तु शिवस्य वञ्चकता कर्णपरम्परयाऽस्मद्देशेऽपि प्रतिगृहं प्रसृताऽस्ति । कथमहमेतस्य प्रस्तावेषु विश्वसिमि ?

महा०--[सक्रोधमिव] महाराज ! महाराज !! खलु खलु प्रोच्यैवम् !!! मा स्म सनातनधर्मैकशरणं महाराष्ट्रराजमेवं मिथ्या-कलङ्क-पङ्केनाङ्कय । को ब्राह्मणः, क्षत्रियः, वैश्यः, शूद्रो वा तेन वञ्चितः ? म्लेच्छेष्वेव वा सज्जनः कोऽवमानितः ? अपि तु

पालन-व्याजेन=स्वीकृत-निर्वहण-च्छद्मना । विविनक्तु=विविच्य विचारयतु । न धर्मस्य वास्तविकं गौरवं लाघवं च त्वया विचारितमिति कटाक्षः ।

वाग्मिता = सती भाषणशैली । वाचंयमम् = मौनिनम् । वञ्चकता = कपटपटुता । अस्मद्देशेऽपि = राजपुत्रस्थानेऽपि । सकलभारतस्यैकदेशत्वकल्पना न तेषामासीदित्यपि पारस्परिककलहकारणम् ।

सक्रोधमिव, सत्यपि क्रोधकारणे नीतिनिपुणतया न क्रोधं वस्तुतोऽङ्गीकृतवानिति व्यङ्ग्यम् । मिथ्याकलङ्कपङ्केन = असत्यापवादकर्दमेन । अङ्कय =

उन कुकर्मियों को दण्ड देना, या प्रतिज्ञा पालन के बहाने महापातक को बढ़ाना ? इसका विवेक आप स्वयं करें ।

जसवन्तसिंह--(कुछ सोचकर) दूतवर ! तुम्हारी वाग्मिता मुझे बलात् मौन (निरुत्तर) किये दे रही है, किन्तु शिवाजी का छल-छद्म कर्णाकर्णिकया हमारे देश में भी हर एक घर में सुविदित है । ऐसी स्थिति में मैं उनके कथन पर विश्वास कैसे करूँ ?

महादेव—(क्रुद्ध से होकर) महाराज ! महाराज ! ऐसा मत कहिये । सनातन धर्म के एकमात्र शरणस्थल महाराष्ट्रराज शिवाजी को इस प्रकार के झूठे कलङ्क के कीचड़ से लाञ्छित मत कीजिये । किस ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र को उन्होंने छला है ? अथवा म्लेच्छों में ही उन्होंने किस सज्जन (म्लेच्छ)

धर्म–मर्यादा–घस्मराणामपि प्रत्यर्थिनां व्यर्थहिंसा सदैव एतेन निवार्यते । अहह ! देव ! न शोभते युष्मादृक्षाणां मुखादेवं कलङ्क-नम्––इत्युक्तवत एव महादेव–पण्डितस्य चक्षुषी बाष्प–बिन्दु-द्वयमुद्गिरताम् । महादेवश्च पटप्रान्तेन प्रामार्ट् ।

तदालोक्याकस्मादेव मरुराजस्यापि प्रेम-पारावार-पूराप्लुतमिव हृदयम्, वाष्पोद्गारेण सिक्तमिव पक्ष्म-पङ्क्ति-युगलम्, पुलको-दञ्चित–रोम–राजिभिः कण्टकितमिव शरीरम्, उत्साहसुधासारैश्च मुदितमिव मनः समजनि ।

चिह्नितं कुरु । **धर्ममर्यादाघस्मराणाम्** = सनातनधर्मसीमाविध्वंसिनाम् । **वाष्पबिन्दुद्वयम्** = अस्रपृषद्द्वयम्, **उद्गिरताम्** = वहिर्निस्सारयताम् । **पट-प्रान्तेन** = वसनकोणेन । **प्रामार्ट्** = परिमार्जितवान् ।

मरुराजस्य = यशस्विसिंहस्य । **प्रेमपारावारपूराप्लुतमिव** = स्नेह-समुद्र-प्रवाह-ब्रुडितमिव । **बाष्पोद्गारेण** = अश्रुप्रवाहेण । **पक्ष्मपङ्क्ति-युगलम्** = नेत्र-लोमराजि-द्वयम् । **पुलकोदञ्चित-रोमराजिभिः** = हर्षो-च्छ्रितलोमावलिभिः । **उत्साहसुधासारैः** = उत्साहपीयूषसम्पातैः ।

का अपमान किया है ? प्रत्युत वे तो धार्मिक मर्यादा के विध्वंसक शत्रुओं की भी अकारण हिंसा को बचा जाते हैं और रोकते हैं । हाँ, महाराज ! आप जैसे लोगों के मुख से इस प्रकार के लाञ्छन शोभा नहीं देते ।"

यह कहते-कहते ही महादेव पण्डित के नेत्रों से दो अश्रुबिन्दु ढुलक पड़े । महादेव ने उन्हें वस्त्र के छोर से पोंछ दिया ।

यह देखकर अकस्मात् ही जसवन्तसिंह का भी हृदय प्रेम के सागर के प्रवाह में निमग्नसा हो गया, उनकी पलकें आँसुओं की धारा से सिंच सी गई, उनका शरीर प्रसन्नता से रोमाञ्चित हो जाने वाली रोमावली से कण्टकित-सा हो गया और मन उत्साहरूपी अमृत की वर्षा से प्रमुदित-सा हो गया ।

ततश्च महाराज उन्नतं वीरासनेन स्थित्वा, "पण्डित ! क्षम्यताम्, अद्यावधि मित्रं मे महाराष्ट्रराजः, साम्प्रतमहं तमालिलिङ्गिषामि, तत् सपदि दर्शय तं क्षत्रिय-कुलावतंसम्"-इति भाषितवान्।

महादेवस्तु तदाकर्ण्य, व्यजनिनो मुखमवलोक्य, महाराजं चावलोक्य, शनै प्रोक्तवान् यद् "अचिरादेव शिवः समुपस्थास्यते श्रीचरणयोरन्तिके"। महाराजस्तु तृतीयेनाश्रवणीयं किञ्चन वचनीयमवशिष्यते इत्याकलय्य, व्यजनिनं भ्रू-सञ्ज्ञया बहिर्यापयित्वा, पुनर्महादेव-पण्डितमपृच्छत्-"कथय, कथय, कदाऽहं प्रियस्य शिवराजस्य परिष्वङ्गेन म्लेच्छ-पक्षावलम्बन-ग्लानिग्लपितमात्मानं मोदयिष्ये-" इति।

उन्नतम् = उच्चैः, क्रियाविशेषणम्। वीरासनेन = बलशालिस्थितिप्रकार-विशेषेण। आलिलिङ्गिषामि = आलिङ्गितुमिच्छामि। सपदि = शीघ्रम्।

व्यजनिनः = व्यजनचालकस्य। उभयमुखनिरीक्षणेन व्यजनी श्रोष्यतीति न वच्मि किमपीति सूचितवान्। अश्रवणीयम् = अश्रोतव्यम्। वचनीयम् = वक्तव्यम्। यापयित्वा = प्रापय्य। परिष्वङ्गेन = आलिङ्गनेन। म्लेच्छा-

---

तदनन्तर महाराज जसवन्तसिंह उन्नत वीरासन से बैठकर बोले-- 'पण्डित जी ! क्षमा कीजिये, आज से महाराष्ट्रराज शिवाजी मेरे मित्र हैं, अब मैं उनका आलिङ्गन करना चाहता हूँ, अतः शीघ्र ही उन क्षत्रियकुल भूषण से मिलाइये।'

यह सुन कर, महादेव ने पंखा झलने वाले के मुख की ओर तथा महाराज की ओर देख कर धीरे से कहा कि 'शीघ्र ही शिवा जी आपके चरणों के समीप उपस्थित होंगे।' तीसरे व्यक्ति के न सुनने योग्य कोई बात कहना बाकी है, जिसे महादेव कहना चाहते हैं', यह सोचकर, महाराज जसवन्त सिंह ने, पंखा झलने वाले को भौंहों के इशारे से बाहर भेजकर, महादेव पण्डित से पुनः पूछा-- 'कहिये, कहिये, मैं म्लेच्छों का पक्षपात करने की ग्लानि से ग्लान (अपनी) आत्मा को प्रिय शिवाजी के आलिङ्गन से कब प्रसन्न कर सकूँगा ?'

अथ महादेवस्तु नम्रीभूय, को जानीते किमिव तस्य कर्णे अचकथत्। यशस्विसिंहश्च तदाकर्ण्य सचकितं सप्रफुल्लनयनं द्विस्त्रिश्चाऽऽमस्तकमापादं च महादेवं निपुणं निरीक्ष्य ससम्भ्रममुत्थाय, तथैवोत्थितं महादेवं बाहू प्रसार्य सानन्दं परिषस्वजे। द्विस्त्रिर्गाढमालिङ्ग्य च स्वाधिष्ठितोन्नत–तूलिकास्तरणे उपधान–समीपे महादेवेनसहोपविश्य मुहूर्त्तं यावत् सगोपनं शनैः शनैर्बहु संललाप। तावत् निशीथ-समय-सूचको भेरीनादः समश्रावि। महादेवस्तु समाकर्ण्य तत् प्रतिनिविवृत्सुरिवोदतिष्ठत्, सपदि सप्रश्रयं महाराजंन्यवेदयच्च–

नाम् = यवनानाम्, पक्षावलम्बनेन = पक्षग्रहणेन, या ग्लानिः = घृणाविशेषः, तथा ग्लपितम् = क्षीणहर्षम्। मोदयिष्ये = हर्षयिष्ये।

नम्रीभूय तस्य कर्णेऽचकथदिति सम्बन्धः। किमचकथत्? तत्राह–को जानीते किमिवेति–भाषणचातुर्यं शिवस्य ग्रन्थकर्तुरेव वा।

सप्रफुल्लनयनम् = सविकसितनेत्रम्। आमस्तकम् = शिरःपर्यन्तम्। आपादम् = चरणमारभ्य। ससम्भ्रमम् = सशीघ्रतम्। परिषस्वजे = आलिलिङ्ग। द्विः = वारद्वयम्। त्रिः=वारत्रयम्। सुजन्ते इमे। स्वेनाधिष्ठिते, उन्नते = उच्चे, तूलिकास्तरणे = तूलवद्विष्टरे। उपधानसमीपे = उपवर्हान्तिके। मुहूर्त्तम् = क्षणम्। संललाप = सम्यगालापं कृतवान्। प्रतिनिविवृत्सुः = प्रतिनिर्वातितुमिच्छुः। सप्रश्रयम् = सविनयम्।

इसके बाद महादेव ने झुककर, जसवन्तसिंह के कान में न जाने क्या कहा, जिसे सुनकर जसवन्त सिंह ने आश्चर्य से आँखें फैलाकर दो-तीन बार महादेव को सिर से पैर तक भली-भाँति देख कर, शीघ्रता से उठकर, उसी प्रकार उठकर खड़े हुए महादेव पण्डित का, बाहें फैला कर सहर्ष आलिङ्गन किया। दो तीन बार गाढ़ालिङ्गन करके जसवन्तसिंह ने अपने नीचे बिछे मोटे रुईदार गद्दे पर मसनद के पास महादेव के साथ बैठ कर, धीरे धीरे, गुप्त रूप से, काफी बातचीत की। तब तक अर्धरात्रि की सूचक भेरी की ध्वनि सुनाई पड़ी। उसे सुनकर महादेव मानो लौटने की इच्छा से उठ पड़े, तथा तत्काल विनयपूर्वक महाराज जसवन्त सिंह से बोले–

"करुणाकर ! श्वो रात्री पुण्यनगरात् कियत्क्रोशान्तराल एव केनापि व्याजेन स्थीयतां महाराजेन ।"

मरुराजः समपृच्छत्–"तत् किं पुण्यनगरमाचिक्रंसते भवान् श्वः ?"

महा०––औद्वाहिकी वरयात्रा भवित्री ।

यश०–बाढम् ! अहमपि श्वो वाताहत–भीमा–शीकर–शीतलीकृते क्रमुक–कानने मृगयाभिरात्मानं विनुनोदयिष्यामि ।

महा०—आम् ! अतिसमीचीनमदः ।

यश०––[मन्दं स्मयमानो महादेवमुखमवलोक्य] धन्योऽसि पण्डित ! खरतर-फक्किकासु विप्रतिपत्तिषु च ते महाभ्यासः ।

आचिक्रंसते = आक्रान्तुमिच्छति ।

औद्वाहिकी = विवाहसम्बन्धिनी, वरयात्रा = "वरात" इत्यपभ्रंशीभूतो लोके ।

वाताहतायाः = वायुसञ्चालितायाः, भीमायाः = तन्नाम्न्या नद्याः, शीकरैः = जलकणैः, शीतलीकृते क्रमुककानने = पूगविपिने । विनुनोदयिषामि = विनोदयितुमिच्छामि ।

अतिसमीचीनम् = अतिशोभनम् = अदः = मृगयाविनोदनम् ।

खरतरफक्किकासु = कठोरपङ्क्तिषु । विप्रतिपत्तिषु = विरुद्धकोटि-

---

'दयानिधि ! आगामी रात्रि में आप किसी न किसी बहाने पूना नगर से कुछ कोसों की दूरी पर रहें ।'

मरुराज जसवन्त सिंह ने पूछा–'तो क्या आप कल पूना नगर पर आक्रमण करना चाहते हैं ?'

महादेव—वैवाहिक बारात निकलने वाली है ।

जसवन्त सिंह—अच्छा, मैं भी कल वायु से चञ्चल भीमा नदी के जलकणों से शीतल किये गये सुपारी के जङ्गलों में शिकार खेल कर अपना मनोरञ्जन करना चाहता हूँ ।

महादेव—हाँ, यह बहुत ठीक है ।

जसवन्त सिंह—[मन्द-मन्द मुस्कराते हुए, महादेव के मुख को देख कर] धन्य हैं पण्डित जी ! कठिन फक्किकाओं तथा विप्रतिपत्तियों का आपको बड़ा अच्छा अभ्यास है ।

महा०--[कन्धरां नमयित्वा स्मित्वा च] असङ्ख्यावच्छेदकतानल्प-कल्पन–कल्पतरौ तर्कशास्त्र एव मम महान् अभ्यासः, येन खङ्गा आस्माकीना अवच्छेदकाः, दुरात्मानो यवन–म्लेच्छाश्च अवच्छेद्या इति शिक्षितवानस्मि ।

यश०--किन्तु च्छात्रता चिरं त्यक्तेति तद्विद्या-शैथिल्यमपि सम्बोभवीति ।

महा०--महाराज ! भवत्कृपया छात्रतां त्यक्त्वा अध्यापकता-मङ्गीकृतवानस्मि । साम्प्रतं परस्सहस्रा मम च्छात्रा एव विवादे विजय-मासादयितुमलम् ! चिरत्यक्ताध्ययनस्यापि मे विद्यया दिल्लीश्वरोऽपि विस्मितवानस्ति ।

द्वयोपस्थापकेषु शब्देषु विपत्तिषु च । असङ्ख्यानाम् = अनेकासाम्, अवच्छेदकतानाम् = विशेषकनिष्ठधर्माणां खण्डकतानां वा, अनल्पस्य = अत्यधिकस्य, कल्पनस्य = आविष्कारणस्य, कल्पतरौ = कल्पवृक्षे, भूरिकल्पक इति भावः । तर्कशास्त्रे = न्यायशास्त्र इत्यर्थः । अवच्छेदकाः = खण्डकाः । अवच्छेद्याः = खण्ड्याः ।

छात्रता = छात्रस्य भावः । पराधीनतेति तत्त्वम् ।

अध्यापकताम् = शासनकारितां स्वतन्त्रतां च ।

विवादे = विरुद्धे वादे, शास्त्रार्थे सङ्ग्रामे च ।

महादेव—[सिर झुका कर तथा मुस्कुरा कर] असंख्य अवच्छेदकताओं की अधिकाधिक कल्पना के कल्पवृक्ष रूप तर्कशास्त्र में ही मेरा अभ्यास है, क्योंकि हम लोगों की तलवारें अवच्छेदक (काटने वाली) हैं, और दुरात्मा यवन-म्लेच्छ अवच्छेद्य (काटे जाने योग्य) हैं । मैंने यही सीखा है ।

जसवन्त सिंह—किन्तु छात्रभाव तो बहुत दिन से छूटा है, अतः विद्या में शिथिलता भी हो सकती है ।

महादेव—महाराज ! आपकी कृपा से छात्रभाव को छोड़ कर अब शिक्षक हो गया हूँ । अब मेरे सहस्रों छात्र ही विवाद में विजय प्राप्त करने के लिये पर्याप्त हैं । मेरे चिरकाल से अध्ययन छोड़ देने के बावजूद, मेरी विद्या से, दिल्लीश्वर भी विस्मित हो गये हैं ।

अथ द्वावपि हसन्तौ मन्दमन्दमालपन्तौ द्वारपर्य्यन्तमायातौ। निवर्त्तमानं महादेवमनुमन्यमानः श्रीमान् मरुधराधीशः पुनः प्रोवाच- "द्रष्टव्यम्, युद्धविषये यथाऽऽलापो जातस्तथैव विधेयम्।"

महा०—आम्, श्रीमन्! तथैव विधातुं विनिवेदयिष्यामि तत्र भवन्तम्।

यश०—आ! एवम्, विस्मृतवानस्मि। तथैव विधातुं महाराष्ट्र-राष्ट्र—सृष्टि—परमेष्ठी निवेदनीयः श्रीमान् शिववीरः।

ततो बाढमित्यभिदधद् महादेवः प्रचलितः, मरु-मेदिनी-परि-वृढोऽपि च किञ्चित् स्मयमानोऽन्तः प्रविवेश।

इति षष्ठो निश्वासः

महाराष्ट्राणां राष्ट्रस्य सृष्टेः = उत्पत्तेः, परमेष्ठी = पितामहः। मरु-मेदिनीपरिवृढः = मारवधराधिनाथः। अभिदधत् = कथयन्, अन्तः = मध्ये, उपकार्याया इति शेषः।

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्यां षष्ठनिश्वासविवरणम्

इसके बाद जसवन्त सिंह और महादेव पण्डित दोनों ही हँसते हुए धीरे-धीरे वार्तालाप करते हुए द्वार तक आये। मरुराज ने पुनः कहा—'ध्यान रखियेगा, युद्ध के विषय में जैसी बातचीत हुई है, वैसा ही कीजियेगा।'

महादेव पण्डित—हाँ महाराज! वैसा ही करने के लिये महाराज से निवेदन करूँगा।

जसवन्त सिंह—हाँ ठीक है, मैं भूल गया था। वैसा ही करने के लिये महाराष्ट्ररूपी राष्ट्र की रचना करने वाले ब्रह्मा श्रीशिवाजी से कह दीजियेगा।

तदनन्तर 'बहुत अच्छा' कहते हुए महादेव पण्डित चल दिये और मरुभूमि के शासक महाराज जसवन्त सिंह भी कुछ मुस्कराते हुए अन्दर चले गये।

शिवराजविजय का छठवाँ निश्वास समाप्त

॥ श्रीः ॥

सप्तमो निश्वासः

"अयं रेवा-कुञ्जः कुसुमशर-सेवा-समुचितः
समीरोऽयं वेला-दर-विदलदेला-परिमलः।
इयं प्रावृड् धन्या नव-जलद-विन्यास-चतुरा
पराधीनं चेतः सखि! किमपि कर्तुं मृगयते ॥"

—कविरत्नभानुदत्तः

सप्तमे निश्वासे सौवर्ण्या भविष्यतः सम्बन्धस्य प्रथमपरिच्छेदरूपमनुराग-मौत्सुक्यं च वर्णयिष्यति, तदुपक्षिपति कविरत्नभानुदत्तवचसा—अयं रेवाकुञ्ज इति। अयम्=पुरो दृश्यमानः। रेवायाः=एतन्नामिकायास्तरङ्गिण्याः, कुञ्जः=लतादिपिहितगृहविशेषः। एतेन परकीयचक्षुरविषयत्वसूचनद्वारोद्दीपकत्वं ध्वनितम्। विशिनष्टि कुञ्जम्—कुसुमानि=पुष्पाणि, शराः=वाणा यस्य मन्मथस्य। सेवायै=उपासनायै, समुचितः=अत्यन्तमुपयुक्तः। रहसि हि सेविता देवा मनोऽभिलषितमानन्दं समुपस्थापयन्तीति देवप्रियजन-प्रतीतिः। वस्तुतस्तु कुसुमशरसेवा पुङ्कर्तृकं कामिनीसन्तर्पणमेव, स्त्रीकर्तृकं च कामुकसन्तर्पणमेवेति वेदितव्यम्। तदुत्थश्चानन्दो ब्रह्मानन्दसहोदर इति नाविदितचरं विदितवेदितव्यानाम्। वेलायाम्=तटे, दरम्=ईषत्, विदलन्तीनाम्=विकसन्तीनाम्, एलानाम्=चन्द्रबालानाम्, परि-मलः=सौगन्ध्यम्, यस्मिन् तादृशः। समीरः=पवनः। अस्याप्युद्दीपकत्वं

रेवानदी के तट पर स्थित यह कुञ्ज कामदेव की सेवा (रति-क्रिया) करने के लिये अत्यन्त उपयुक्त स्थल है। यह समीर नदी तट पर लगी हुई अर्धविकसित एला (इलायची) की लताओं की मादक सुगन्ध से युक्त है। वर्षाकाल का मनोहर समय है और आकाश में

"गर्ज गर्ज क्षणं मूढ ।"

—चण्डी

"क्रामन्त्यः क्षत-कोमलाङ्गुलि-गलद्रक्तैः सदर्भाः स्थलीः
पादैः पातित-यावकैरिव गलद्बाष्पाम्बु-धौताननाः ।
भीता भर्तृकरावलम्बित—करास्त्वद्वैरि-नार्योऽधुना
दावाग्नि परितो भ्रमन्ति पुनरप्युद्यद्विवाहा इव ॥"

—स्फुटकम्

स्फुटमेव । **इयम्**=एषा । **प्रावृट्**=वर्षाकालः । **धन्या**=रमणीया । कथम्भूता प्रावृडित्याह-**नवानाम्**=नवीनानाम्, **जलदानाम्**=वारिदानाम्, **विन्यासेषु**=विभिन्नरूपेणोपस्थापनेषु, **चतुरा**=दक्षा । **सखि !** =हे आलि ! एतेन हार्दिकभावप्रकटीकरणयोग्यत्वं ध्वनितम् । **चेतः**=मानसम् । **पराधीनम्**=परस्य मनसैवेष्टस्य, आयत्तीकृतम् । **किमपि**=अनिर्वाच्यम् । **कर्तुम्**=विधातुम् । **मृगयते**=अन्विष्यति । विरहिण्या उक्तिः । अनुप्रासः ।

अत्रैव निश्वासे शास्तिखानस्य पराजयमपि दिदर्शयिषुरिति सप्तशती-सङ्गृहीतं महामायाभिहितं मन्त्रैकखण्डमपि स्मारयति- **"गर्ज गर्ज क्षणं मूढ !"** तत्र महिषासुरो वाच्यः ।

पराजिते शास्तिखाने तदीयवनितानां क्रन्दनादिकमपीहैव वर्णनीयमिति तदप्युपक्षिपति-**क्रामन्त्य** इति । कवेरुक्तिः कमपि नरपतिं प्रति । **अधुना**=सम्प्रति । **त्वद्वैरिनार्यः**=त्वदीयशत्रुवनिताः । **पुनरपि**=भूयोऽपि ।

नये-नये बादल विभिन्न रूपों में छाये हुए हैं । हे सखि ! ऐसे वातावरण में मेरा मन, जो मेरे वश में नहीं है और कभी का दूसरे के अधीन हो चुका है, कुछ (रमण) करने को आतुर हो रहा है ।'

—भानुदत्त

'रे मूढ, क्षण भर गरज ले'

—चण्डी

'हे राजन् ! इस समय आपके शत्रुओं की स्त्रियाँ पुनः विवाह करने के लिये उद्यत सी लगती हैं । दर्भयुक्त भूमि को पार करने में

अहह ! चिररात्राय भ्रान्तमस्मन्मनः पुण्यनगरान्धतमस-वीथिकासु। क्षणं तोरण-दुर्गोपत्यकोद्यान-भ्रमणैरात्मा विनोदनीय

उद्यद्विवाहा इव = समुपस्थितविवाहा इव । दावाग्निम् = वनाग्निम् । परितः = सर्वत्र । भ्रमन्ति, लाजहोमे वह्निप्रदक्षिणा प्रसिद्धा साङ्गुष्ठहस्तग्रहणं च । वनितां विशिनष्टि—क्षताभ्यः = कुशादिना विदारिताभ्यः, कोमलाभ्यः अङ्गुलिभ्यः = चरणजाभ्यः, गलत् = पतत, रक्तम् = लोहितं, येषु तैः । पादैः = चरणैः । उत्प्रेक्षते-पातितयावकैरिव = लिप्तालक्तकैरिव । सदर्भाः = कुशकाशमयीः । स्थलीः=स्थण्डिलभूमीः । होमेऽपि वेदिकामभितः कुशाः प्रस्तीर्यन्त इति न विस्मर्त्तव्यम् । क्रामन्त्यः = लङ्घयन्त्यः । गलता = प्रच्यवता, वाष्पाम्बुना = अश्रुजलेन, धौतम् = प्रक्षालितम्, आननम् = मुखं यासां ताः । होमकाले धूमव्याप्तदृष्टित्वाद् रोदनमिह च खेदात् । भीताः = भयाश्रयीभूताः । इह रिपोस्तत्र च वरादिगुरुजनादिति ध्येयम् । भर्तॄणाम् = पतीनाम्, करेषु = हस्तेषु, अवलम्बिताः, करा यासां ताः ।

अहह ! कवेरुक्तिः । लेखशैलीयमेका । चिररात्राय = चिरम् । अव्ययम् । पुण्यनगरस्य, अन्धतमसवीथिकासु = गाढान्धकारव्याप्तलघुपथेषु । तोरणदुर्गस्य, उपत्यकायाम् = अद्रेरासन्नभूमौ, उद्यानस्य = वाटिकायाः,

---

उनके पैरों की कोमल उँगलियाँ कुशों से क्षतविक्षत हो गई हैं और उनसे रक्त बह रहा है, मानो पैरों में लगा महावर गिर रहा हो; अश्रुजल के प्रवाह से उनके मुँह धुल गये हैं, और वे पति के हाथ का सहारा लिये हुए, डरी-डरी, दावाग्नि के चारो ओर घूम रही हैं।'

—स्फुट

अहा हा ! मेरा मन पूना नगर के घने अन्धकार से व्याप्त छोटी-छोटी गलियों में बहुत समय तक भ्रमित हो चुका। अब थोड़ी देर तोरण-दुर्ग की घाटी के उद्यान में घूमकर बहलाना चाहिये। देखिये, यहाँ कैसा अनुपम आनन्द प्राप्त हो रहा है।

इति दृश्यतां कीदृश आनन्द-सन्दोहोऽत्रेति। तोरण-दुर्ग-समीप एव सुदृढं सुन्दरं मारुति-मन्दिरम्, ततोऽपि पूर्वतः क्रोशार्द्धं यावद्विस्तृतं रमणीयमुद्यानम्। अर्द्धव्यतीतोऽयमाषाढः, कदाचिज्जलदपटलाच्छन्नम्, कर्हिचिच्च निर्मेघमपि सान्द्र-नीलं गगनतलमालोक्यते। क्वचिन्मयूर-नृत्यानि, क्वचिच्चातक-विरावाः, क्वचिज्जल-प्रवाहाः, क्वचिद्धारासाराः, क्वचेन्द्रगोपसंसर्गाधिक-मनोहराणि शाद्वलानि प्रतिभान्ति। पञ्चषाणि दिनानि चण्डकर-करैः संसारं सन्ताप्य अद्य कैश्चिन्मेघ-खण्डैः किमपि व्याप्तं नभः—इत्युष्णता किञ्चित् क्रशिमानमालम्बते।

भ्रमणैः = पर्यटनैः। **आत्मा** = अन्तःकरणम्। **विनोदनीयः** = आनन्दयितव्यः। **आनन्द-सन्दोहः** = आह्लादसमूहः। **सुदृढम्** = सुघटितम्, त्रोटयितुमनर्हमिति यावत्।

विस्तृतम् = विस्तीर्णम्। **आषाढः** = शुचिः, मासविशेषः। **जलदपटलाच्छन्नम्** = मेघसमूहप्रावृतम्। **सान्द्रनीलम्** = घनीभूतनीलम्, अतिनीलम्। चातकस्य **विरावाः** = शब्दाः। **धारासाराः** = धाराप्रपाताः। **इन्द्रगोपानाम्** = वर्षाकालिकरक्तवर्णकीटविशेषाणाम्, **संसर्गेण** = सम्पर्केण, **अधिकमनोहराणि** = नितान्तरम्याणि। **शाद्वलानि** = शादवन्ति क्षेत्राणि तृणपूर्णानि। "नडशादाड्ड्वलच्"। "शाद्वलः शादहरिते" इत्यमरः। **प्रतिभान्ति** = शोभन्ते। **चण्डकरकरैः** = भास्करदीधितिभिः। **क्रशिमानम्** = कृशताम्। "पृथ्वादिभ्य इमनिज् वा"। "रऋतोहलादेर्लघोः"।

तोरण-दुर्ग के समीप ही हनुमान् जी का सुदृढ़ तथा सुन्दर मन्दिर है। उक्त मन्दिर से पूर्व की ओर एक रमणीय उद्यान है, जो मील भर तक फैला है। आधा आषाढ़ व्यतीत हो चुका है। कभी मेघसमूह से ढका हुआ और कभी मेघ रहित आकाश घने नीले रंग का दिखाई पड़ता है। कहीं मयूरों के नृत्य, कहीं पपीहों की पुकारें, कहीं जल-प्रवाह, कहीं जल की धारा का गिरना, और कहीं वीरबहूटी से युक्त होने के कारण अधिक मनोहर लगने वाले हरी घास के मैदान सुशोभित हो रहे हैं। आकाश, पाँच-छः दिन सूर्य की प्रचण्ड किरणों से संसार को तपाकर आज कुछ मेघखण्डों से घिर गया है, अतः गर्मी कुछ कम हो गयी है।

मारुतिमन्दिरा कित्ञ्चिद् दूरं वाटिकामध्ये सुदृढौ द्वौ स्तम्भौ, तयोरुपरि तिर्य्यग् विन्यस्तो दारु-स्तम्भः, एतन्मध्यत एव विलम्बमानं शृङ्खला-युग-द्वयम्, एतत् प्रान्ते च विलम्बमाना प्रतिकोणासक्तैकशृङ्खला सुरुचिरा पीठिकेति सुभगेयं दोलिका। सर्वतोऽप्यस्यां शिल्पि-शिल्प-चमत्कारः। विविधा लताश्च स्तम्भौ वेष्टयित्वा पारस्परिक-सर्वाङ्गीण-संश्लेषेणेव प्रफुल्लास्तथाऽवतिष्ठन्ते; यथा विविध-कुसुममयी भ्रमद्-भ्रमर-निकर-झङ्कृता दोलिकेयं दर्शनमात्रेण चक्षुष्मतां मनो हरति। एतद्दोलिकाधिष्ठित-शाद्वलस्य मध्ये मध्ये

सुदृढौ = सुपुष्टौ। **तिर्य्यक्** = तिरश्चीनः। 'पट' या 'बेंडी' इति हिन्दी। **दारुस्तम्भः** = काष्ठस्थूणा। **शृङ्खलायुगयोर्द्वयम्**, द्वे द्वे शृङ्खले स्थानद्वय इति भावः। **एतत्प्रान्ते** = शृङ्खलान्तभागे। **विलम्बमाना** = तत् साहचर्येण निम्नभागे स्थिता, कोणं कोणं प्रतिकोणम्, **आसक्ता** = लग्ना एका शृङ्खला यस्याः सा। **सुभगा** = शोभना। **दोलिका** = क्रीडार्थदोलायन्त्रम् 'झूला' इति भाषा। **शिल्पि-शिल्पचमत्कारः** = कारुनिर्माणकौशलम्। **पारस्परिकेण** = अन्योन्यजातेन, **सर्वाङ्गीणेन** = निखिलशरीरभवेन, सर्वविधेनेति यावत्। **संश्लेषेण** = संसर्गेण। **प्रफुल्लाः** = पूर्णतया विकसिताः। **भ्रमताम्** = सञ्चलताम्, भ्रमराणां निकरैः **झङ्कृता** = निनादिता। **चक्षुष्मताम्** = वास्तविकरूपेण

हनुमान् मन्दिर से कुछ दूर पर, वाटिका के मध्य में दो मजबूत खम्भे हैं। उन पर एक लकड़ी का खम्भा बेंड़ा रखा गया है। इस खम्भे के मध्य में चार शृङ्खलायें लटकी हुई हैं, जिनके छोर पर एक मनोहर काष्ठफलक लटक रहा है, जिसके चारों कोने एक-एक शृङ्खला से बँधे हुए हैं। इस प्रकार परम सुन्दर झूला सजा हुआ है। काष्ठफलक में चारों ओर शिल्पियों के शिल्प का चमत्कार दिखाई पड़ रहा है। अनेक प्रकार की पुष्पित लतायें इन खम्भों से लिपटी हुई हैं, ऐसा लगता है मानो वे एक दूसरे के अङ्गों का गाढालिङ्गन करने के कारण प्रफुल्लित हों। विकसित लताओं से आवेष्टित होने के कारण यह झूला नाना प्रकार के पुष्पों से युक्त है और इस पर भौरों के समूह गुञ्जार कर रहे हैं। इसे देखकर ही दर्शकों का मन मुग्ध हो जाता है।

श्वेत-श्यामादि-पाषाण-निर्मिता रमणीया आसन्द्यः, प्रत्यासन्दि चोभयतः प्रफुल्लसुमाः क्षुपाः, प्रतिक्षुपमालवालेष्वपि सकोरका विविधा अङ्कुराः शोभन्ते । वर्तुल-क्षेत्रं चैतत्, परितः कुसुमिताः कदम्बकुटाः, तेषां चैकैकमन्तरा महाफला माकन्दद्रुमाः, मध्ये मध्ये च विहित-पार्श्वस्थ-पादपाश्लेषा मन्दमन्दमनिलालोला लता लसन्ति ।

अमूं दोलां समवयस्कास्तिस्रश्चुम्बितयौवनाः सुन्दर्यः समारूढाः ।

द्रष्टुं शक्तिमताम्, रसिकानामिति यावत् । अरसिकास्तु काष्ठकुड्याश्मसन्निभाः सत्यपि नेत्रद्वये किमवलोकयेयुः ? एतया दोलिकयाऽधिष्ठितस्य शाद्वलस्य = तृण-हरितस्य । आसन्द्यः = आसनविशेषाः । "कुर्सी" इति हिन्दी । प्रफुल्लानि सुमानि = कुसुमानि येषु ते क्षुपाः = ह्रस्वशाखा द्रुमाः । आलवालेषु = जलाधारेषु वृक्षं परितो रचितेषु । सकोरकाः = सकलिकाः । अङ्कुराः = नूतनोद्भिदः । वर्तुलं चैतत् क्षेत्रम् = गोलस्थलम् । परितः = सर्वतः । तद्योगे द्वितीया । कदम्बकुटाः = कदम्बवृक्षाः । महाफलाः = बहुफलमयाः, बृहत्फला वा । माकन्दद्रुमाः = आम्रवृक्षाः । विहित-पार्श्वस्थ-पादपाश्लेषाः = कृतासन्नवृक्ष-सम्पर्काः । अनिलेन = वायुना, आलोलाः = ईषच्चञ्चलाः । लताः = व्रततयः । लसन्ति = शोभन्ते । द्रुमाणां लतानां च प्रस्तुते सम्पर्के समभिधीयमानेऽप्रस्तुतानां नायकनायिकानामालिङ्गनादिप्रतीतेः समासोक्तिः ।

सम्म् = समानम्, वयः = अवस्था यासां ताः । चुम्बितम् = लब्धम्,

जिस शाद्वल (लॉन) में यह झूला सजा हुआ है उसके बीच-बीच में सफेद, काले आदि रंग के पत्थरों की बनी कुर्सियाँ हैं । प्रत्येक कुर्सी के दोनों ओर विकसित पुष्पों वाले पेड़ हैं, और प्रत्येक पेड़ के आलवाल (क्यारियों) में कलियों से युक्त अनेक छोटे-छोटे पौधे अङ्कुरित हो आये हैं । इस गोलाकार क्षेत्र (शाद्वल = घासों से हरे) के चारों ओर पुष्पित कदम्ब वृक्ष हैं । एक एक कदम्ब वृक्ष के बाद बड़े-बड़े फलों वाले आम्रवृक्ष हैं; और बीच-बीच में, समीपस्थ वृक्ष से लिपटी हुई, हवा के झोंकों से धीरे-धीरे हिलने वाली लताएँ सुशोभित हो रही हैं ।

इस झूले पर, समान उम्र की तीन नवयुवती सुन्दरियाँ चढ़ी हुई हैं ।

सिन्दूर-रेखाङ्किता कबरी-मध्य-रेखा, मौक्तिक-गुच्छाङ्कित-सुव-र्णाभरणालङ्कृता नासा। आरक्त-कौशेय-कूर्पासक-समाच्छन्नमारब्ध-कुचोन्नति-महोत्सवमवलोचक-नयन-वशीकरणं वक्षः। कर्णिका-युगल-चोचुम्ब्यमानं दोलन-श्रमोद्भूत-स्वेद-कणिका-पटल-परिलसितं समीर-सरणान्दोलित-चूर्ण-कुन्तल-वीजितं कपोल-युगलम्। सौवर्ण-

---

बन्धनम्। सिन्दूररेखया = नागोद्भव-लेखया, अङ्किता = लिखिता। कबरी-मध्यरेखा = केशवेशान्तरालगत-लेखा। मौक्तिकगुच्छेन = रत्नस्तवकेन, अङ्कितम् = युतम् यत् सुवर्णाभरणम् = हिरण्यरचितमाभूषणम्, तेन अल-ङ्कृता = मण्डिता। नासा = नासिका। आरक्तेन = समन्ततो रक्तवर्णेन, कौशेय-कूर्पासकेन=पट्टवस्त्रचोलकेन, समाच्छन्नम् = नितान्तगोपितम्। आरब्धः = उपक्रान्तः, कुचयोः = स्तनयोः, उन्नतिमहोत्सवः = उद्गमनोद्भवः, यस्मिंस्तत्। अवलोचकानाम् = द्रष्टृणाम्, नयनानाम् = नेत्राणाम्, वशीकरणम् = आयत्तीकरणम्। वक्षः = उरःस्थलम्। कर्णिकायुगलेन = कर्णभूषणद्वयेन, "कर्णिका कर्णभूषणम्" इति हैमः। चोचुम्ब्यमानम् = वारं वारं स्पृश्यमानम्। दोलनश्रमेण = दोलाखेलनश्रान्त्या, उद्भूतानाम् = जातानाम्, स्वेद-कणिकानाम् = घर्मजलबिन्दूनाम् पटलेन = समूहेन, परितः लसितम् = शोभितम्। समीरसरणेन = वायुचलनेन, आन्दोलितैः = सञ्चालितैः, चूर्णकुन्तलैः = अलकैः। "अलकाश्चूर्णकुन्तलाः" इत्यमरः। वीजितम् =

लग रही है। उनकी माँग सिन्दूर की रेखा से अङ्कित है, और नासिका में मोती के गुच्छे से युक्त स्वर्णाभूषण शोभित हो रहा है। उभरते हुए उरोजों से रसिकों के नेत्रों को वश में करने वाला उनका वक्षस्थल गुलाबी रंग की रेशमी चोली से आच्छादित है। कर्णफूल उनके, झूला झूलने में होने वाले परिश्रम से उत्पन्न पसीने की बूँदों से सुशोभित दोनों कपोलों का बार बार स्पर्श कर रहे हैं। हवा चलने से उनके बालों की लटें इस प्रकार हिल रही हैं, मानो कपोलों को

मौक्तिक-राजि-राजित-ग्रैवेयकाङ्किता कम्बुग्रीवा, दोला-दोलन-दोदुल्यमान–ललित–ललन्तिका–लालितमुरः, पञ्च–कच्छभङ्ग्या परिहितं हरितं परिधानम्, हंसककाञ्ची-कङ्कणादि-मण्डितान्यङ्गानि। या चेयं मध्यतः समुपविष्टा, सा तदपेक्षयाऽप्यल्पं वयो जुषमाणा, धम्मिल्ल–समुल्लसन्मूर्द्धभागा, कुङ्कुम–बिन्दु–सुन्दर-

---

कृतव्यजनम्, कपोलयोः अलकाः स्रस्ता इति यावत्। **सौवर्णानाम्** = सुवर्णतन्तूनाम्, **मौक्तिकानाम्** = मणीनां च। **राजिभिः** = श्रेणिभिः, **राजितम्** = लसितम्, यद् ग्रीवायां भवं **ग्रैवेयकम्** = कण्ठाभरणम् "कुल-कुक्षिग्रीवाभ्यः श्वास्यलङ्कारेष्वि"ति ढक्। **अङ्किता** = मण्डिता। **कम्बु-ग्रीवा** = शङ्खाकारा शिरोधरा। **दोलादोलनेन** = दोलिकाहिल्लोलनेन, **दोदुल्यमानया** = वारं वारं चलन्त्या, **ललितया** = शोभनया, **ललन्तिकया** = आनाभिलम्बितया कण्ठिकया, **लालितम्** = शोभितम्। **उरः** = वक्षः। **पञ्चानाम्** = पञ्चसङ्ख्याकानाम्, **कच्छानाम्**=वस्त्रबन्धानाम्, **भङ्ग्या**=प्रकारेण। महाराष्ट्रदेशीयाः परिधानीयं तथा परिदधति, यथा पञ्च कच्छा जायन्त इति तात्पर्यम्। तत्र पश्चाद्भागे कच्छमेकं त्रिधा बध्नन्तीति त्रयम्, नीवी तुरीया उपरिधारणीयभागं स्कन्धप्रदेशेनाऽऽनीय बध्नन्तीति पञ्चतयीत्यनुभवरसिकाः। **परिहितम्** = धारितम्। **हरितम्** = हरिद्वर्णम्। **परिधानम्** = वासः। **हंसकेन**=नूपुरेण, **काञ्च्या** = रशनया, **कङ्कणादिभिः** = वलयादिभिश्च, **मण्डितानि** = भूषितानि, **अङ्गानि** = चरणाद्यवयवाः। **तदपेक्षया** = तयोर्दोलाचालिकयोरपेक्षया। **जुषमाणा** = सेव-

---

पंखा झल रही हों। उनका शङ्ख के समान गला मोतियों की पंक्ति से सुशोभित स्वर्णमय आभूषण से, तथा वक्षस्थल झूला झूलने से बार-बार हिलने वाले हार से सुशोभित हो रहा है। उन्होंने पञ्चकच्छ की रीति से हरे रंग की साड़ीं पहन रखी है, और उनके चरण आदि अङ्ग नूपुर, करधनी (काञ्ची), कङ्कण आदि आभूषणों से सुशोभित हो रहे हैं।

झूले के बीच में बैठी रमणी, उपर्युक्त दोनों युवतियों की अपेक्षा कम उम्र की सँवारे हुए बालों से सुशोभित, सिर कुङ्कुम-बिन्दु से

ललाटा, कज्जलाञ्जन-रञ्जित-लोचन-युगला, नागवल्ली-दल-रसना-संरक्ताधर-विवर्द्धित-रसिकजन-पिपासा, वृन्ताक-श्यामा, कौशेय-सूत्र-रचितां समावृतार्द्धबाहुं सुवर्णसूत्र-रचित-लता-वितान-रोचित-प्रान्तां कञ्चुकीमभिनव-समासादित-मांसल-भावेन वक्षसा

माना। **धम्मिल्लेन** = संयतकेशव्रातेन, **समुल्लसन्** = शोभमानः, मूर्धभागो यस्याः सा। "धम्मिल्लः संयताः कचाः" इत्यमरः। कुङ्कुमबिन्दुना **सुन्दरम्** = मनोहरम्, **ललाटम्** = गोधिर्यस्याः सा। "ललाटमलिकं गोधिः" इत्यमरः। **कज्ज-लाञ्जनेन** = कज्जलविन्यासेन, रञ्जितं लोचनयुगलं यस्याः सा। **नागवल्ली-दलस्य** = ताम्बूलीपत्रस्य, **रसनेन** = आस्वादनेन, **आ** = समन्तात्। **संरक्ता-भ्याम्** = अतिलोहिताभ्याम्, **अधराभ्याम्** = दन्तच्छदाभ्याम्, **विवर्द्धिता** = वृद्धिं नीता, रसिकजनपिपासा यया सा। स्वभावतो रक्तयोरोष्ठयो स्ताम्बूलभक्षणे-नातितरां लौहित्यमिति विशेषणसार्थक्यम्। असंरक्तेति च्छेदे विपरीतार्थाभास इति "ताम्बूलीदलरसना"—इति पदस्य पार्थक्यमाश्रित्य व्याचक्षणास्तु भिक्षुकागमना-नुचिन्तया स्थाल्यनधिश्रयणपटवो वटवो न कस्य नमस्याः? कञ्चुकीं विशिनष्टि—**वृन्ताकश्यामाम्** = भण्टाकीकृष्णाम् "बैंगनी रंग की" इति हिन्दी। "वृन्ताके स्त्री तु वार्त्ताकुर्भण्टाकी भाण्टिकाऽपि चे"ति निघण्टुः। **कौशेयसूत्ररचिताम्** = पट्ट तन्तुनिर्मिताम्। **समावृतम्** = समाच्छन्नम्, अर्धं वा ह्वोर्यया ताम्। अर्धबाहुका-मिति यावत्। "अधवहिया" इति हिन्दी। **सुवर्णसूत्रैः** = हैरण्यतन्तुभिः, "जरी" इति हिन्दी। **रचितानाम्** = निर्मितानाम्, **लतानाम्** = वल्लीनाम्, **वितानेन** = विस्तारेण, **रोचितः** = भ्राजमानः, = **प्रान्तः** कोणभागो यस्यास्ताम्। कीदृशेन

सुशोभित ललाट और काजल लगे नेत्रों वाली, तथा पान खाने से लाल हो गये अधरोष्ठों से रसिकों की प्यास को बढ़ाने वाली है। वह अपने उभरते उरोजों वाले वक्षस्थल पर, बैंगनी रंग की, रेशमी सूत से बनी आधी बाँह को ढकने वाली सोने के तार (जरी) से बने बेल-बूटों से सुशोभित किनारों वाली कञ्चुकी धारण किये है। वह सत्ताईस

विभ्रती, दोला-दोलन-वेग-भङ्ग-परवशतया उच्छालमुच्छालमुरसि निपतन्तीं नक्षत्रमालां कुच-प्रदेशाधस्तात् परिवेष्टित-शोण-चैला-ञ्चलापातिनीमपि तदुपरिभागे प्रत्यक्षतो दरीदृश्यमान-पूर्वार्द्धां धारयन्ती, सुवर्ण-विजित्वर-वर्णा मूर्तिमतीव शोभा, धारितदेहेव प्रेम-परम्परा, कलितावतारेव च रतिरासीत्।

वक्षसा? तत्राह—**अभिनवः** नवः-नूतनः अभिनवमिति समासादनक्रियाविशेषणं वा। **समासादितः** = प्राप्तः, **मांसलभावः** = स्थूलता येन तेन। समुत्पद्यमानकुचौन्नत्यवतेति यावत्। नक्षत्रमालां धारयन्तीति बालिकाविशेषणम्। कीदृशीं नक्षत्रमालाम्? तत्राह-**दोलादोलनेन**=दोलायन्त्रहिल्लोलनेन, यो **वेगभङ्गः** =जवरोधः, **तत्परवशतया** = तदायत्ततया। **उच्छालमुच्छालम्** उच्छाल्योच्छाल्य। "उछल उछल कर" इति हिन्दी। **उरसि** = वक्षसि। **निपतन्तीम्** = स्खलन्तीम्। **नक्षत्रमालाम्** = सप्तविंशतिमौक्तिकमयीं हारयष्टिकाम्। "नक्षत्रमाला स्यात् सप्तविंशतिमौक्तिकैः इत्यमरः। **कुचप्रदेशाधस्तात्** = स्तनतलाधोभागात्। **परिवेष्टितम्** = वलितम्, यत् **शोणम्** = रक्तम्, **चैलम्** = वसनम्, तस्य **अञ्चले** = कोणे, **आपातिनीम्** = पतनशीलाम्। **तदुपरिभागे** = चैलाञ्चलोपरिप्रदेशे। **प्रत्यक्षतो दरीदृश्यमानम्** = भृशं समवलोक्यमानम्, पूर्वार्धं यस्यास्ताम्। **धारयन्ती** = विभ्रती। सुवर्णस्य **विजित्वरः** = जयनशीलः, वर्णो यस्याः सा। अतिगौरीत्यर्थः। **मूर्तिमती** = रूपधारिणी। **धारितदेहा** = गृहीतशरीरा। **कलितावतारा** = कृतावतरणा। **रतिः** = कामपत्नी।

मोतियों से बनी एक माला पहने है, जो पेंग मारने से झूले का वेग भङ्ग-होने के कारण उछल-उछल कर उसके वक्षस्थल पर गिर रही है, और जिसका नीचे का आधा भाग उसके वक्षस्थल से नीचे लिपटे लाल वस्त्र पर गिर रहा है, तथा आधा भाग स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। उसके शरीर का रंग सोने से भी अधिक सुन्दर है। उसे देखकर, ऐसा लगता है मानो शोभा ही मूर्तिमयी हो उठी हो, प्रेम परम्परा ही देह धारण कर के आ गई हो, रति ही अवतरित हो गई हो।

शनैः शनैर्दोलाया वेगो ववृधे। एकतो गच्छन्ती दोला यावन्निवर्तते; तावत् तस्यां दिशि स्थिता साङ्गहारमुपवेश-मुद्रया दोलां तथा हन्ति; यथा सा साधिकवेगं परतो निवर्तते स्म। ततोऽप्यवधिपर्य्यन्तं गतायां च तस्यां तद्दिशि सज्जा इतराऽपि तथैवानुकरोति। द्वयोरपि गत्योरन्तरेषु मञ्जीर-रशनादीनां विलक्षणशिञ्जनं भवति। प्रतिगतं च प्रत्यागतं च तासां सर्वासां वासांसि वारमेकमेकतः परतश्च परतः समुड्डीयन्ते। कर्णाभरणीकृतानां पाटलि-कुसुमानां केशेषु व्यासञ्जितानां मल्लिका-कोरकाणां सर्ववस्त्राणामुपरि लम्ब-

---

ववृधे = एधाञ्चक्रे। साङ्गहारम् = अङ्गाक्षेपसहितम्। क्रियाविशेषणम्। उपवेशमुद्रया = आसनप्रकारेण। हन्ति = ताडयति। साधिकवेगम् = अतिजवेन सह। अवधिपर्यन्तम् = यावद् गन्तुं शक्नोति शृङ्खलायन्त्रिता सती तत् सीमानं यावत्, सज्जा=सन्नद्धा, हन्तुम्। अनुकरोति, हन्तीति यावत्। मञ्जीररशनादीनाम् = नूपुरकाञ्चीप्रभृतीनाम्। विलक्षणम् = अलौकिकम्, शिञ्जनम् = भूषणशब्दः। "भूषणानां च शिञ्जितम्" इत्यमरः। प्रतिगतम् = प्रतिगमनम्। प्रत्यागतम् = प्रतिपरावृत्ति। कर्णाभरणीकृतानाम् = श्रवोभूषणीकृतानाम्। पाटलिकुसुमानाम् = अमोघापुष्पाणाम्। व्यासञ्जितानाम् = निवद्धानाम्, चितानामिति यावत्। मल्लिकाकोरकाणाम् = मालतीमुकुलानाम्।

धीरे-धीरे झूले का वेग बढने लगा। एक ओर जाता हुआ झूला जब तक उस (दूसरी) ओर स्थित रमणी झटके से बैठती हुई, इस प्रकार पेंग मारती है कि झूला और भी तेजी के साथ दूसरी ओर लौट जाता है। झूले के, उस दिशा में जितनी दूर जा सकता है, उतनी दूर पहुँचते-पहुँचते उस ओर पहले से ही पेंग मारने को तैयार रमणी भी वैसा ही करती है। इन दोनों रमणियों के पेंग मारने के समय नूपुर, काञ्ची आदि आभूषणों की विलक्षण ध्वनि होती है। हर वार झूले के आने और जाने में, इन सभी रमणियों के वस्त्र एक बार एक ओर और दूसरी बार दूसरी ओर उड़ते हैं। कर्णाभूषण के रूप में धारण किये गये पाटलिपुष्प और केशों में गूँथी गई मल्लिका पुष्प की कलियाँ उनके वस्त्रों पर

मानानां च विशिथिल-दलानि परिस्खलन्ति स्म। एवं दोला-दोलनासक्ताभिरेव ताभिरारब्धा महामधुर-माध्वीक-मधुरिम-धिक्काराधिकार-धारिणी प्रफुल्लोल्लास-तल्लज-मल्लार-रागानुसारिणीयं गीतिर्गातुम्। तथा हि—

घन-पटली बहु वर्षति तोयम्,
घन-पटलीनमुखः पथिकोऽयम्।
बहुधारासाराश्च समुदिताः
बहुधा रागै रसिका मुदिताः॥

सर्ववस्त्राणाम् = निखिलवाससाम्। **लम्बमानानाम्**, सुमानाम्, **विशिथिल-दलानि** = विचलितबन्धनानि पत्राणि। **परिस्खलन्ति स्म** = पेतुः। **दोला-दोलनासक्ताभिः** = दोलासञ्चालननिरताभिः। **आरब्धा** = प्रस्तुता। **महा-मधुरस्य** = अतिस्वादुनः, **माध्वीकस्य** = "महुआ" इति भाषायां प्रसिद्धस्य, **मधुरिम्णः** = माधुर्यस्य, **धिक्कारे** = तिरस्करणे, **योऽधिकारः** = स्वाम्यम्, तस्य धारिणी। अनुप्रासः। एवमन्यत्राप्यनुचिन्तनीयः। लोकोत्तरमाधुर्यवतीति भावः। **प्रफुल्लः** = विकसनशीलः, **उल्लासतल्लजः** = प्रकृष्टोल्लासः, बहुव्रीहिरुत्तरपदलोपो वा, यो **मल्लारराग**ः = मल्लारीत्यभिधीयमाना मेघरागस्य रागिणी, **तदनुसारिणी** = तदनुकूला, **गीतिः**, प्रधानारब्धक्रियानिरूपितस्य कर्मत्वस्याभिधानान्न गीति-निरूपिताऽप्रधानकर्मत्वाश्रया द्वितीयेति स्वादुमिसूत्रस्थ-भाष्यानुसारी पूर्वाभिहितः पन्थाः।

घनपटली = मेघराजिः। **बहु** = अधिकम्। **अयम्** = साक्षाद् दृश्यमानः।

लटक रही थीं, और उनकी पंखुड़ियाँ टूट-टूट कर गिर रही थीं। इस प्रकार झूला झूलने में लगी हुई उन रमणियों ने महामधुर माध्वीक की मधुरिमा को भी धिक्कारने का अधिकार धारण करने वाली, उत्कृष्ट उल्लास के अभिव्यञ्जक 'मलार' नामक मेघराग की अनुसारिणी यह गीति गाना प्रारम्भ कर दिया।

मेघ-समूह बहुत अधिक जल बरसा रहा है। यह पथिक मोटे कपड़े से अपना मुँह ढके हुए है (अथवा निर्निमेष नेत्रों से मेघखण्ड को देख रहा है)। मूसलाधार वृष्टि हो रही है। रसिक लोग नाना प्रकार की प्रेम क्रीडाएँ कर के (अथवा विभिन्न प्रकार के रागों को सुन कर) प्रसन्न हो रहे हैं।

एवं कियत्कालगानेनैव श्रान्तयोस्तयोः पार्श्व-परिवर्तिन्योः स्वेदैः कपोलौ क्षालितौ, वसनमार्द्रितम्, कञ्चुकी कुचयोर्दृढं संलग्ना, वपुर्वेपथुना चुम्बितम्, श्वास-प्रश्वासयोर्गतिस्त्वरिता, आननच्छटा च काञ्चन कमनीयां शोणता-शोभामकलयत्। ललिताविशाखाभ्यां विमा-

पथिकः = यात्रिकः, घनपटे = मेघखण्डे, लीनम् = संलग्नम्, मुखम् = वदनं यस्य सः। सर्वथा मेघे तत्तदृष्टिरिति तात्पर्यम्। अथवा घने = सान्द्रे, पटे = वस्त्रे, लीनम् = छन्नम्, मुखं यस्य सः। मेघस्योद्दीपकत्वात् तद्दर्शनं पथिकः परिहरतीति भावः। बहूनां धाराणामासाराः = सम्पाताः। समुदिताः = सम्यगुदयं प्राप्तवन्तः, मेघेभ्यः प्रादुर्भूता इति यावत्। रसिकाः = रागिणः। बहुधा = अनेकधा। रागैः = विषयाभिलाषैः। मुदिताः = प्रसन्नतां गताः। प्रथमचरणे "घनपटली"ति सार्थकम्, द्वितीये च निरर्थकम्। प्रथमद्वितीयपादयोर्यम्यत्वे "मुखम्" नाम यमकम्, तृतीयचतुर्थयोश्च "पुच्छम्" नामेति तयोः संसृष्टिः। अन्त्यानुप्रासोऽपि।

कियत्कालगानेन = स्वल्पसमयलयकलनेन। पार्श्वपरिवर्त्तिन्योः=पार्श्वपरिवर्त्तनकारिण्योः। स्वेदैः = घर्मबिन्दुभिः। क्षालितौ = धौतौ। वसनम् = वस्त्रम्। आर्द्रितम् = क्लेदितम्। कञ्चुकी = अर्धबाहुका। संलग्ना = संसक्ता। वपुः = शरीरम्। वेपथुना = कम्पेन। चुम्बितम् = स्पृष्टम्। त्वरिता = वेगवती, जातेति शेषः। आननच्छटा = मुखच्छविः। यद्यपि प्राक्तनैरयं 'छटा'-शब्दः समूहेऽर्थे प्रयुक्तस्तथापि साम्प्रतिकैश्छवितात्पर्येण प्रयुज्यत इति वेदितव्यम्। काञ्चन = कामप्यनिर्वचनीयाम्, कमनीयाम् = हृद्याम्। शोणताशोभाम् = रक्तताकान्तिम्। अकलयत् = अधारयत्। ललिताविशाखाभ्याम् =

इस प्रकार थोड़ी देर तक ही गाने में ये दोनों युवतियाँ थक गईं, और पार्श्व-परिवर्तन करने लगीं (अँगड़ाई लेने लगीं)। पसीने से उनके कपोल धुल गये, वस्त्र भींग गये, कञ्चुकी स्तनों से चिपक गई, शरीर काँपने लगा, श्वास-प्रश्वास की गति तेज हो गई, चेहरा लाल हो गया, और उनकी मुखच्छवि ने अतिसुन्दर अद्भुत लालिमा की शोभा धारण की।

झूले के पटरे पर बैठी हुई, ललिता और विशाखा नामक सखियों द्वारा

नेन गगनतलं नीयमाना राधिकेव चेयमपरा दोलापट्टिकोपविष्टा नीप-शाखाग्र-चुम्बि-दोला-वेगमसहमाना कदाचिद् भुवम्, कर्हिचित् आत्मानम्, कदाचन द्रुमाग्राणि, कर्हिचन समीरवेगाहत–निज–वसनाग्र-ताड्यमान–दोलावलम्बि-शृङ्खलाम्, कदाऽपि तारस्वर–गान–श्रवण–विद्रावित–निद्रान् कदम्ब–शाखा–सन्धि–विलम्बि–नीडान्तराल–

तन्नामिकाभ्यां राधिकासखीभ्याम् । विमानेन=वायुयानेन । नीयमाना = प्राप्य-माणा । राधिकेवेत्युपमा । इयम् = एषा, अपरा = द्वितीया, सौवर्णी । दोलायाः, पट्टिकायाम् = काष्ठपीठे, उपविष्टा = स्थिता । नीपशाखायाः = कदम्बशाखायाः, अग्रचुम्बिन्याः, दोलायाः, वेगम् = जवम् । असहमाना = सोढु-मशक्नुवती ।

"कदाचिद् भुवम्" इत्यादि "अवलोकयन्ती क्रियासमभिहारेण वक्तुमारब्धवती"ति सम्बन्धः । भुवम् =पृथिवीम् । आत्मानम् = स्वम् । द्रुमाग्राणि = वृक्षशाखाः । समीरवेगाहतस्य = पवनजवताडितस्य, निजवसनस्य = स्ववस्त्रस्य । अग्रेण = प्रान्तेन, ताड्यमानायाम् = आहन्यमानायाम्, दोलायाम्, अवलम्बिनीम् = संल्लग्नाम् । शृङ्खलाम् = लौहदाम । कदाचित् पिकशावकानिति मध्ये सम्बन्धः । पिकशावकान् विशिनष्टि-तारस्वरेण = उच्चस्वरेण, पञ्चमनादेनेति यावत् । यद् गानम् = गीतिः, तस्य श्रवणेन = कर्णातिथितापादनेन, विद्राविता = दूरीकृता, निद्रा = स्वापो येषां तान् । कदम्बशाखानाम् = नीपद्रुमावयवानाम्, सन्धिषु=

विमान पर बिठा कर आकाश में ले जाई जाती हुई राधिका के समान यह अन्य अल्पवयस्का रमणी जिसकी बालों की लटें आँखों पर लटक आई थीं, कदम्ब वृक्ष की चोटी का स्पर्श करने वाले झूले की तेजी को न सह सकती हुई, कभी पृथ्वी को, कभी स्वयं को, कभी वृक्षों की चोटियों को, कभी तेज़ हवा के झोंकों से हिलते हुए अपने आँचल के द्वारा स्पर्श किये जाते हुए झूले में लगी शृङ्खलाओं को, कभी ऊँचे स्वर में गाये जाते हुए गाने को सुनने से नींद टूट जाने के कारण जग गए, कदम्ब वृक्ष की शाखाओं के सन्धिस्थलों पर लटक

रिङ्गणान्, सित-पीत-सृक्किणीन्, अप्राप्त-पक्षति-पुष्टीन्, अर्धोन्मिषित-लोचनान्, विहित-मञ्जीरानुकारि-रावान्, पिक-शावकान्, कर्ह्यपि दोलान्दोलन-दोल्यमान - दोलाग्र - विलम्बि-लता-प्रतान-निपात्यमान-कुसुम-स्तबकान् अवलोकयन्ती, भ्रमरिकाकलित-दृष्टिः, प्रतिगतिभेदं पतन्तीव, कम्पमानेव, आहतेव, भीतभीतेव मुग्धा क्रियासमभिहारेण वक्तुमारब्धवती–"अलमलम्, विरमतं विरमतम्, पतामि पतामि" इति ।

जोडेषु, विलम्बिनाम् = लम्बमानानाम्, नीडानाम् = कुलायानाम् । अन्तरालेषु = मध्येषु, रिङ्गणम् = भ्रमणम्, येषां तान् । सिताः = श्वेतवर्णाः, पीताः = पीतवर्णाः, सृक्किण्यः = ओष्ठप्रान्तभागाः, येषां तान् । अप्राप्ता = अनधिगता, पक्षतीनाम् = पक्षमूलानाम्, पुष्टिः = उड्डयनसामर्थ्यम्, यैस्तान् । अर्धोन्मिषिते = कियदुन्मीलिते, लोचने येषां तान् । विहिताः, मञ्जीरानुकारिणः = नूपुरध्वनितुल्याः, रावाः = शब्दाः, यैस्तान् । पिकशावकान् = कोकिलशिशून् । दोलान्दोलनेन = दोलिकासञ्चालनेन, दोल्यमानानाम् = सञ्चाल्यमानानाम्, दोलाग्रविलम्बिनीनाम् = दोलिकाप्रान्तप्रतायमानानाम्, लतानाम् = व्रततीनाम्, प्रतानेभ्यः = कुटिलतन्तुभ्यः निपात्यमानान्, कुसुमानां, स्तबकान् = गुच्छान् । भ्रमरिकाभिः = ललाटस्रस्तकेशैः, आकलिता = व्याप्ता, दृष्टिः, यस्याः साः । प्रतिगतिभेदम् = प्रतिगतागतम् । पतन्तीव = स्खलन्तीव । कम्पमानेव = वेपमानेव । आहतेव = ताडितेव । भीतभीतेव = अतिभयाक्रान्तेव । मुग्धा = अल्पवयस्का । क्रियासमभिहारेण = पुनः पुनः । वक्तुम् = लपितुम् । अनुप्रासो यत्र तत्रानुचिन्तनीयः । विरमतम्, लोटो मध्यमपुरुषद्विवचनम् ।

रहे घोंसलों में घूम रहे, अधखुले नेत्रों वाले और नूपुर की ध्वनि के समान ध्वनि करने वाले, कोयल के बच्चों, जिनके अधरोष्ठों के कोने श्वेत तथा पीले थे, और जिनके पंख अभी उड़ने योग्य नहीं हो पाये थे, उनको कभी झूले के चलने से हिलने वाली, झूले के पास ही फैली हुई लताओं से गिरते हुए फूलों के गुच्छों को देखती हुई, हर बार झूले के इस ओर आने और उस ओर जाने पर गिरती हुई सी, काँपती सी, चोट खाई हुई सी, डरी हुई सी, बार-बार 'बस बस, रुको रुको, मैं गिरी, गिरी', यह चिल्लाने लगी ।

अथ तयोरेका—"सौवर्णि ! किमिव बिभेषि ? आवयोर्मध्ये स्थिताऽसि, शृङ्खला-ग्रहणासक्तां मुष्टिं मा शिथिलय, न पतिष्यसि। साम्प्रतमेव विहिताभ्यासा चेत्, पत्या समं सुखेन दोला-विहार रसं रसयिष्यसि—" इति सस्मितमालपत्।

सौवर्णी च—"चारुहासिनि ! अलं हासैः। भ्रमति मे चक्षुः, क्षुभ्यति मनः, तत् सपदि स्थिरीकुरु दोलाम्। अये विलासिनि ! नास्ति मम तथा क्षमता यथा भवत्योः, तत् न पारयामि, विरम विरम।"

इत्युभयतो ग्रीवां परिवर्त्य, मन्दं सक्षोभमिवाचकथत्। ततस्तृतीयाऽपि-"प्रियसखि ! किमिव क्षुभ्यसि ? पश्य, विरतमावाभ्याम्,

---

विहिताभ्यासा=कृतवारंवारानुभवा। दोला-विहार-रसम्=दोला-क्रीडानन्दम्। रसयिष्यसि=अनुभविष्यसि।

सौवर्णी चाचकथदिति सम्बन्धः। किम् ? तत्राह—चारुहासिनि ! इति विलासिनि इति च सम्बोधनपदे सखीनाम्नोः। अलं हासैः=क्ष्वेलाभिः साध्यं नास्ति। "क्रिया गम्यमानाऽपि कारकविभक्तौ निमित्तम्" इत्युक्तेस्तृतीया। भ्रमति=घूर्णते। "घूमती है" इति हिन्दी। क्षुभ्यति=सञ्चलति। क्षमता=सोढुं शक्तिः। न पारयामि=न शक्ता भवामि। ग्रीवाम्=शिरोधराम्।

उन दोनों सखियों में से एक मुस्कराती हुई बोली—'सौवर्णि ! डरती क्यों हो ? हम दोनों के बीच में बैठी हो, जिस मुट्ठी में तुमने जंजीर पकड़ रखी है, उसे ढीला न करो, गिरोगी नहीं, यदि तुमने अभी अभ्यास कर लिया, तो पति के साथ सुख-पूर्वक झूला झूलने के आनन्द का रसास्वादन कर सकोगी।'

सौवर्णी क्षुब्ध सी होकर, दोनों (चारुहासिनी और विलासिनी की) ओर गर्दन घुमाकर धीरे से बोली—'चारुहासिनि ! मज़ाक मत करो, मेरी आँखें घूम रही हैं (चक्कर खा रही हैं), मन घबड़ा रहा है, तुरत झूला वन्द कर दो।' अरी विलासिनि ! जितनी सामर्थ्य तुम दोनों में है, उतनी मुझ में नहीं है ? मैं नहीं झूल सकती, रुको, रुको।'

तब तीसरी ने प्रेमपूर्वक कहा—'प्रिय सखि ! नाराज़ क्यों होती हो ? देखो,

दोला च क्रमतो मन्दीभूता स्वयमेव स्थिरा भवित्री" इति सप्रेम समवादीत् ।

अथ प्रेमालाप-परायणास्वेव तासु स्थिरीभूतायां दोलायां चारुहासिनी विलासिनी च पूर्वमवतीर्णे, तद्धस्तावलम्बनेनैव च सभयं सौवर्ण्यप्यवतीर्णा । क्षणं चक्षुषी निमील्य चारुहासिनी-स्कन्धमेव गृहीत्वा सावेगं स्थितवती । परस्तात् प्राप्तधैर्य्या सम्मुखस्थायामासन्द्यां समुपाविशत् । चारुहासिनी विलासिनी च महाराष्ट्रमहिले इति दोलारोह एतयोः स्वाभाविकः । दोलन-प्रयुक्तं वैकल्यं वा शैथिल्यं वा चक्षुर्भ्रमरिकां वा मनोग्लानिं वा एते न जानीतः स्म । ते खिन्न-स्विन्न-सर्वाङ्गिण्याविति कदली-दल-खण्डेनाऽऽत्मानं वीजयन्त्यौ पर्य्य-

---

परिवर्त्य = वक्रयित्वा । सक्षोभम् = सकृत्रिमक्रोधम् । मन्दीभूता = वेगशून्या सती । भवित्री = भाविनी । सप्रेम = सस्नेहम् ।

प्रेमालापः = नर्मोक्तिः, तत्परायणासु = तन्निरतासु । सावेगम् = दोलाखेलनभ्रमरिका ("घुमरी" इति भाषा) सहितम् । प्राप्तधैर्या = लब्धस्थैर्या । सम्मुखस्थायाम् = पुरःस्थापितायाम्, आसन्द्याम् = वेत्रासने । दोलनप्रयुक्तम् = दोलाखेलसमुत्थम् । वैकल्यम् = विकलताम् । शैथिल्यम्=स्रस्ततामत्यधिकश्रमजन्याम् । चक्षुर्भ्रमरिकाम् = नेत्रभ्रमम् । मनोग्लानिम् = चेतःक्लान्तिम् । खिन्नम् = क्लान्तम्, स्विन्नम् = घर्मजलार्द्रम् । सर्वाङ्गम् =

हम लोगों ने पेंग मारना बन्द कर दिया है, झूला धीरे-धीरे धीमा होकर स्वयं रुक जायेगा।,

उनके इसी प्रकार प्रेमपूर्ण बातचीत करते ही करते जब झूला रुक गया, तो पहले चारुहासिनी और विलासिनी झूले से उतरी, फिर उनके हाथ का सहारा लेकर सौवर्णी भी डरती-डरती उतरी, और घुमरी (घुमरी अर्थात् चक्कर) आ जाने के कारण, क्षण भर, आँखें मींच कर, चारुहासिनी का कन्धा पकड़े खड़ी रही। कुछ देर बाद जब सँभली और धैर्य बँधा, तो सामने पड़ी कुर्सी पर बैठ गयी।

चारुहासिनी और विलासिनी महाराष्ट्र की महिलाएँ हैं, अतः उनके लिये झूले पर चढ़ना स्वाभाविक है। वे झूलने से होने वाली विकलता, शिथिलता, आँखों का घूमना, मन का घबड़ाना (मिचली आना) आदि जानती ही नहीं हैं। उनका सारा शरीर थककर चूर-चूर और पसीने से लथपथ हो गया था। अतः वे

टितुमारेभाते। एवमितस्ततः शाद्वले पर्य्यटन्त्योस्तयोः पार्श्वस्थ-मल्लिका-स्तवक-परिक्रम-परवश-मिलिन्दवृन्द-दत्तदृष्टेः सौवर्ण्याश्चैवमभूवन्नालापाः—

विलासिनी—अस्माकं सौवर्णी न किमपि वेत्ति।

चारुहासिनी—[समन्दस्मितम्] आम्! न किमपि, यतो मुग्धा।

विला०—अज्ञातयौवना च।

चारु०—[सहासम्] सत्यं दुग्धमुखीयम्।

[उभे सौवर्णीमालोकमालोकं जहसतुः]

निखिलशरीरं ययोस्ते। णिन्यन्तात् ङीप्। कदलीदलखण्डेन = रम्भाच्छद-शकलेन। पर्य्यटितुम् = भ्रमितुम्। पार्श्वस्थमल्लिकास्तवकस्य = समीपस्थ-जातीगुच्छस्य, परिक्रमपरवशे = भ्रमणसंलग्ने, मिलिन्दवृन्दे = द्विरेफव्राते, दत्तदृष्टेः = संस्तम्भितनयनायाः। आलापाः, 'स्यादाभाषणमालापः' इत्यमरः। अत्र हासमया वेदितव्याः।

मुग्धा = बाला। अज्ञातयौवना = अविदिततारुण्या। यौवनक्रियमाणं हावभावं न वेत्तीति भावः।

दुग्धमुखी = पयोमुखी। "दुधमुँही" इति हिन्दी। आलोकमालोकम् = दृष्ट्वा दृष्ट्वा, आभीक्ष्ण्ये णमुलन्तम्।

केले के पत्ते का टुकड़ा लेकर अपने ही को पंखा झलती हुई टहलने लगीं। इस प्रकार हरी घास (के मैदान) पर घूमती हुई इन दोनों सखियों और समीप ही लगी मालती के फूलों के गुच्छों पर मँडराते हुए भौंरों को एकटक देखती हुई सौवर्णी में इस प्रकार वार्तालाप होने लगा।

विलासिनी—हमारी सौवर्णी कुछ भी नहीं जानती।

चारुहासिनी—[धीमी मुस्कराहट से] हाँ, कुछ भी नहीं जानती, बड़ी भोली है।

विलासिनी—और यौवन का तो इसे पता ही नहीं है।

चारुहासिनी—[हँसती हुई] सचमुच, अभी तो बेचारी दुधमुंही बच्ची है।

[दोनों सौवर्णी को देख-देख कर हँसने लगीं।]

सौवर्णी—[सकपट-कोपम्] भवतीभ्यामेव रोचन्ते भवत्योः क्ष्वेलनानि ।

विला०—मैवम्, मैवम्, क्षमस्व, त्वं सर्वं वेत्सि ।

चारु०—इयं रासपञ्चाध्यायीं पठन्ती आत्मानमपि विस्मरति गीतगोविन्दस्य च 'उरसि मुरारेरुपहितहारे'—इत्यादि-गीतानि गायन्त्येव बाष्प-प्रवाहेणाञ्जनम् अधर-रागं वक्षः रोमराजीं च क्षालयति, तत् किं न वेत्ति ? किन्त्वस्मदग्रे आत्मानं मुग्धतममेव परिचाययति । [पुनरुभे अहसताम् ।]

भवतीभ्याम् = चतुर्थ्या द्विवचनम्, "रुच्यर्थानां प्रीयमाणः" इति चतुर्थी । क्ष्वेलनानि = नर्मवाक्यानि ।

रासपञ्चाध्यायीम् = श्रीमद्भागवते सन्दर्भविशेषः कृष्णविलासप्रदर्शनापरो रासपञ्चाध्यायी । रागिणस्तदर्थं रागपरतया, पण्डिताश्च कामविजयपरतया सङ्गमयन्ति । अत्र च "तप्तस्तनेषु परिधेहि" "च्छिन्धि हृच्छयाग्निम्" इत्यादिभिस्तात्पर्यम् ।

उरसि मुरारेरुपहितहारे घन इव तरलबलाके ।
तडिदिव पीते रतिविपरीते राजसि सुकृतविपाके ।।

इति समग्रं गीतगोविन्दपद्यम् । बाष्पप्रवाहेण = अश्रुधारया । अधररागम् = ओष्ठलौहित्यसाधनम् । रोमराजीम् = लोमपङ्क्तिम् । क्षालयति = धावयति ।

सौवर्णी—[कृत्रिम क्रोध के साथ] तुम्हारे मज़ाक तुम्हीं को अच्छे लगते हैं, मुझे नहीं ।

विलासिनी—नहीं नहीं, क्षमा कर दो, तुम सब कुछ जानती हो ।

चारुहासिनी—यह रासपञ्चाध्यायी पढ़ते-पढ़ते अपने आपको भी भूल जाती है और गीत-गोविन्द के 'उरसि मुरारेरुपहितहारे' (श्री कृष्ण के वक्षस्थल पर, जिस पर हार सुशोभित हो रहा है) इत्यादि गीत गाती-गाती अश्रु प्रवाह से आँखों में लगे काजल, अधरोष्ठों पर लगी लाली, वक्षस्थल और रोमराजि को भी धो डालती है । यह क्या नहीं जानती ? परन्तु हमारे सामने अपना भोलापन दिखाती है । [फिर दोनों हँसती हैं ।]

सौवर्णी—सख्यौ ! यदि मामेवं ह्लेपयथस्तदहं गच्छामि । युवामेवात्र विहरतम् । [इति उदतिष्ठत् ।]

विला०—[सौवर्ण्या बाहुं गृहीत्वा] उपविश उपविश । नाऽऽवामेवं परस्तादालपिष्यावः ।

[सौवर्णी तूष्णीमुपाविशत् ।]

चारु०—[समीपस्थायामासन्द्यामुपविश्य, विलासिनीं चोपवेश्य]

सौवर्णि ! सत्यं कथयति विलासिनी । यदि नाम तुभ्यं प्रेमवार्ता आत्मीयोचितालापाश्च न रोचन्ते, तत् किमग्निहोत्रविधिं वा योग-साधन-पद्धतिं वा कथयावः ? तथैव चेत्, तव तात एव वेदान्तोपदेशैस्त्वामपरां गार्गीं विधास्यति, किमस्मत्साहचर्यैः ? किं वा

ह्लेपयथः = लज्जयथः । विहरतम् = क्रीडतम् ।

अग्निहोत्रविधिम् = यागविशेषविधानम् । योगसाधन-पद्धतिम् = चित्त-वृत्तिनिरोधात्मकस्य योगस्य यानि साधनानि यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार-धारणाध्यानसमाध्यात्मकानि तेषां पन्थानम् । वेदान्तोपदेशैः = ब्रह्मविद्या-कथनैः । गार्गीम् = वाचक्नवीम्, जनकसंसदि याज्ञवल्क्येन कृतब्रह्मविद्याविवादा विशिष्टा विदुषी बृहदारण्यके श्रुता । अस्मत्साहचर्यैः = आवयोः सान्निध्यैः ।

सौवर्णी—सखियों ! यदि मुझे इस प्रकार लज्जित करने पर तुली हो, तो मैं चली, तुम्हीं दोनों यहाँ घूमो । (यह कह कर उठ खड़ी होती है ।)

विलासिनी—[सौवर्णी का हाथ पकड़ कर] बैठो बैठो, अब हम दोनों इस प्रकार की कोई वात नहीं करेंगी । [सौवर्णी चुपचाप बैठ गई ।]

चारुहासिनी—[पास में पड़ी हुई कुर्सी पर बैठकर, और विलासिनी को बिठा कर] सौवर्णि ! विलासिनी ठीक ही तो कहती है । यदि तुम्हें प्रेमवार्ता, और आत्मीय जनों में आपस में जैसी बातें होती हैं, उस प्रकार की वातें नहीं अच्छी लगतीं, तो क्या हम लोग अग्निहोत्र की विधि या योग की साधन-पद्धति के सम्बन्ध में बात करें ? यदि तुम्हारी यही इच्छा है, तो तुम्हारे पिताजी ही वेदान्त की शिक्षा देकर तुम्हें दूसरी गार्गी बना देंगे, हम लोगों के साथ रहने और

'सखि सखि' इति मुधैवाऽऽवां सम्बोध्य वञ्चनैः ?

विला०—प्रिये ! मा स्म उपेक्षिष्ठाश्चारुहासिन्या वचनम्। आवामेव तव प्रीतिपात्रे, अन्तरङ्गित्व-गर्विण्यौ सख्यौ। आवयोरप्यग्रे कदाऽपि किमपि न वक्षि। अन्तरेव कञ्चनानुरागमिव वहसि, कदाचिद् विमनायसे, अस्माभिः शृङ्गार-रस-स्नातानां बहूनामाननान्यवलोकितानि सन्ति, त्वं तु सदैवास्माभिः सह क्रीडसि। कथं त्वया गोपितोऽप्यप्रकटो भवेत् तवानुराग-प्रवाहः ? त्वमेव केवलं स्पष्टं न ब्रूषे, किंतु तव नवाभ्यस्तापाङ्ग-प्रसारे दृशौ, आलीढ-ताली-दलच्छविः कपोल-

---

मुधैव = व्यर्थमेव। वञ्चनैः = प्रतारणैः। समदुःखसुखे सखीजने रहस्यस्य निवेदनीयत्वादिति भावः।

मा स्मोपेक्षिष्ठाः = उपेक्षां मा कार्षीः। माङि लुङ्" "न माङ् योगे" इत्याभ्यां लुङडागमाभावौ। प्रीतिपात्रे = स्नेहस्थाने। अन्तरङ्गित्वस्य = रहस्यज्ञत्वस्य, गर्विण्यौ = अभिमानयुक्ते। न वक्षि = न कथयसि। अनुरागम् = व्यक्तिविशेषे प्रेम। शृङ्गार-रसस्नातानाम् = प्रेमिप्रणयप्रवाहे कृतमज्जनानाम्। अनुभूतविषयरसानामिति यावत्। गोपितोऽपि = यत्नादाच्छादितोऽपि। अप्रकटः = अविस्पष्टः, दुर्ज्ञेय इति यावत्। नवः = नूतनः, अभ्यस्तः

झूठही हम लोगों को "सखी ! सखी !' कह कर पुकार कर धोखा देने से क्या लाभ होगा ?

विलासिनी—प्रिये ! चारुहासिनी के कथन की उपेक्षा न करो। हम दोनों ही तुम्हारी स्नेहभाजन तथा तुम्हारी अन्तरङ्ग होने का अभिमान रखने वाली सखियाँ हैं। तुम, हम दोनों के आगे भी कभी कुछ भी नहीं कहती हो। अन्दर ही अन्दर किसी (के प्रति) अनुराग को धारण करती जान पड़ती हो, और कभी-कभी अनमनी हो जाती हो। हम लोगोंने शृंगार रस में डूबे (या नहाए) हुए अनेक व्यक्तियों के मुखों को देखा है, और तुम तो सदैव हमारे साथ ही खेलती हो, फिर तुम्हारा (किसी के प्रति) अनुराग प्रवाह तुम्हारी छिपाने की चेष्टा के बावजूद भी, (हम लोगों की दृष्टि से) कैसे छिप सकता है ? यद्यपि तुम साफ़-साफ़ नहीं कहती हो, (लेकिन) तुम्हारे नेत्र, जिन्होंने

पाली, सह्रीस्तम्भ-निश्वास-मान्थर्य-माधुर्य-स्वरभङ्गा आलापाश्च सर्वं स्फुटयन्ति । तदलमितोऽपि बाह्यैरालापशतैः । सत्यं कथय, किमिव चिन्तयसि ? केन च महाभाग्येन सहचरितां स्वमूर्तिं स्वापेषु पश्यसि ?

[सौवर्णी पादाङ्गुष्ठ-नखेन भुवमालिखन्ती तूष्णीमेव समतिष्ठत ।]

चारु०—सौवर्णि ! तव दुःखेन दुःखिते आवामिति विश्वसिहि । त्वां हि कदाचित् सर्वा अस्मान् विहाय उद्यानं प्रविश्य एकान्ते तरु-

---

=शिक्षितः, **अपाङ्गप्रसारः** =कटाक्षपातप्रकारः, याभ्यां ते । **आलीढा** = अङ्गीकृता, **तालीदलच्छविः** = द्रुमविशेषपत्रकान्तिर्यया सा, पाण्डुरिति यावत् । **कपोलपाली** = गण्डप्रान्तः । **ह्रीस्तम्भेन** = लज्जावरोधेन, जातेन, **निश्वासेन** = दीर्घश्वासेन, यद् **मान्थर्यमाधुर्यम्** = आलस्यलालित्यम्, तेन स्वरभङ्गो येषु तादृशाः । **स्फुटयन्ति** = प्रकटयन्ति । **बाह्यैः** = बहिरङ्गभूतैः । **महाभाग्येन** = विशिष्टभागधेयेन । **सहचरिताम्** = एकत्रावस्थिताम् । **स्वापेषु** = स्वप्नेषु । प्रत्यक्षं साहचर्य्यमनुभवन्त्या अपि अनिच्छन्त्या अपि च स्वापेषु साहचर्यं भवतीति न ते दोष इति गूढव्यङ्गचम् ।

पादाङ्गुष्ठनखेन, भूलिखनं लज्जितानां जातिः । **अस्मान्** = सहचरीः ।

अभी शीघ्र ही कटाक्षपात का अभ्यास किया है, तालपत्र की शोभा धारण करने वाले तुम्हारे **गण्डस्थल तथा** लज्जा के अवरोध से उत्पन्न निःश्वास से होने वाली मन्थरता के लालित्य के कारण होने वाले स्वरभङ्ग से युक्त **तुम्हारी बातचीत** सब कुछ स्पष्ट कर देती है, केवल तुम्ही (ऐसी हो जो) स्पष्ट रूप से कुछ नहीं बताती । अतः अब भी सैकड़ों बाहरी (बनावटी) बातें बन्द करके, सच-सच कहो कि क्या सोचा करती हो ? स्वप्न में अपनी मूर्ति (अर्थात् स्वयं) को किस भाग्यवान् के साथ देखती हो ?

[पैर के अँगूठे के नाखून से भूमि कुरेदती हुई सौवर्णी चुप ही रही ।]

चारुहासिनी—सौवर्णी ! तुम्हारे दुःख से हम दोनों दुःखी हैं, यह विश्वास करो । **तुम्हें**, कभी हम लोगों को छोड़कर उद्यान में प्रविष्ट होकर एकान्त में

तले उपविशन्तीम्; क्वचन रहसि शिलासु उपविश्य करतले कपोलं संस्थाप्यानिमिषाभ्यां दृग्भ्यां किमपि चिन्तयन्तीम्; कर्हिचित् कुञ्जान्तः प्रविश्य गज-दन्त-फलके कस्यापि प्रतिमूर्तिमिव लिखन्तीम्; कदाचन पाण्डु-गण्ड-तल-विसृत्वराण्यश्रूणि पटप्रान्तेन मार्जयन्तीम्; क्वचित् लुण्ठितेनेव वञ्चितेनेव प्रनष्टेनेव अपहृतेनेव च हृदा कञ्चिद् धवलिमानमिवाङ्गेषु वहन्तीं दर्शं दर्शं भिद्यत इवाऽऽवयो-

---

एकान्ते = रहसि, उपविशन्तीम् = आसीनाम्। उपवेशश्चायं न निरर्थक इत्यभिलाषाख्या प्रथमा स्मरदशा सूचिता। स्मरदशा हि दशसङ्ख्याकाः, तथा च साहित्यदर्पणे—

"अभिलाषश्चिन्ता स्मृतिगुणकथनोद्वेगसम्प्रलापाश्च।
उन्मादोऽथ व्याधिर्जडता मृतिरिति दशात्र कामदशाः॥"

चिन्तात्मिकां द्वितीयां दशां दर्शयति—क्वचनेत्यादिना-चिन्तयन्तीमित्यन्तेन। शिलासु = प्रस्तरखण्डेषु। दृग्भ्याम् = नेत्राभ्याम्। चिन्तयन्तीम् = विचारयन्तीम्। गजदन्तफलके = हस्तिदन्तनिर्मितपीठे। प्रतिमूर्तिम् = प्रतिच्छविम्। लिखन्तीम् = रचयन्तीम्। एतेन स्मृतिनाम्नी तृतीया दशा प्रत्यक्षीकृता, गुणकथनं च मानसमेनेनैव बोध्यम्। नहि विना गुणविचारं प्रतिकृत्युल्लिखनं सम्भवि।

पाण्डु-गण्डतल-विसृत्वराणि = पीत–कपोलस्थल – प्रसरण – शीलानि। अश्रूणि = रोदनाम्बूनि। पटप्रान्तेन = वसनाग्रेण। मार्जयन्तीम् = प्रोञ्छन्तीम्। लुण्ठितेनेव = चोरितेनेव। एभिश्चतुर्भिरुन्मादादयश्चतस्रो दशा दर्शिताः। मृतिपदेन च न मरणं गृह्यत इति जानन्त्येव सुधियः। धवलिमानम् = श्वैत्यम्।

वृक्ष के नीचे बैठी हुई, कहीं एकान्त में चट्टानों पर बैठकर हथेली पर कपोल रखकर निर्निमेष नेत्रों से कुछ सोचती हुई, कभी कुञ्ज में प्रविष्ट होकर हाथी दाँत की पटिया पर किसी का चित्र सा बनाती हुई, कभी पीले पड़ गये कपोलों पर ढुलक रहे आँसुओं को कपड़े के छोर (आँचल) से पोछती हुई, कहीं लुटे हुए से, ठगे हुए से, खोये हुए से, चुराये गये से हृदय वाली तथा अङ्गों में एक प्रकार की सफेदी सी धारण करती देख-देख कर हम दोनों का हृदय विदीर्ण सा हो

हृदयम् । किमिव कुर्वः ! शतधा पृष्टाऽसि, सहस्रधा विश्वास-मापिताऽसि, न वक्षि, न च सूचयसि । किन्तु विश्वासपात्रेऽस्मादृक्षे सखीजनेऽनुचितमेतत् । सर्वतः संवृतोऽग्निरधिकं तापयति, अनुद्गीर्णं विषं प्राणानपहरति, असूचितो व्याधिरप्रतीकारो वर्द्धते, तदयमीदृशो दृढो निरोधस्तेऽनुरागस्याधिकमेव त्वां दुःखाकरिष्यतीति सहाये सखी-जने किमिव नान्तर्ज्वरं विभजसि ? यथाऽऽवामपि सम-दुःख-सुखे भवेव ।

सौवर्णी तु करस्थं कुसुम-स्तवकं क्षिप्त्वा, दक्ष-करतले एव कपोलं

वहन्तीम् = धारयन्तीम् । दर्शं दर्शम् = दृष्ट्वा दृष्ट्वा । आपिता = लम्भिता । न वक्षि = न कथयसि । न च सूचयसि = न बोधयसि । संवृतः = अवरुद्धः । अधिकम् = भृशम् । अनुद्गीर्णम् = अवान्तम् । विषम् = हालाहलादि । असूचितः = अबोधितः, परेभ्योऽप्रकटीकृतः । अप्रतीकारः = अप्रतिक्रियः । दृढः = प्रबलः । निरोधः = गोपनम् । दुःखाकरिष्यति = खेदवतीं विधास्यति । सहाये = सहायताकारिणि । अन्तर्ज्वरम् = मानसिकं दुःखम् । ज्वरपदं काम-ज्वरोपस्थापकतया किमपि वैशिष्ट्यमाश्रयतीति स्वारस्यवेदिनः । विभजसि = विभागं करोषि । 'संविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवती'ति कालिदासः ।

कुसुमस्तबकम् = पुष्पगुच्छम् । क्षिप्त्वा = भूमौ निपात्य । निरन्तर-

---

जाता है । क्या करें ! सैकड़ों वार तुम से पूछा है, हजारों वार विश्वास दिलाया है, पर तुम बोलती ही नहीं, कुछ वताती ही नहीं हो । किन्तु हम लोगों के समान विश्वास पात्र सखियों के साथ ऐसा (दुराव या भावगोपन का) व्यव-हार करना ठीक नहीं है । सभी ओर से ढकी हुई अग्नि अधिक तपाती है, वमन न करने पर विष प्राण ले लेता है, और न वताने पर रोग, चिकित्सा के अभाव में, वढ़ (कर असाध्य हो) जाता है, अतः तुम्हारे अनुराग का यह इतना दृढ़ अवरोध अधिक (गोपन) तुम्हें और दुःखी कर देगा । ऐसी दशा में तुम अपनी सहायक सखियों के साथ अपना आन्तरिक ताप बाँट क्यों नहीं लेती ? जिससे हम दोनों भी समान सुख और समान दुःख वाली हो जायें ।

सौवर्णी ने हाथ में लिये हुए फूलों के गुच्छों को फेंक कर, दाहिनी हथेली

संस्थाप्य, निरन्तर-परिक्रमण-क्लम-क्लान्तं मुखं कमलपल्लवोदरे सुप्तं कलानाथमिव कदर्थयन्ती, विरह-जन्मना धवलिम्ना भस्मनेव रूषिता, वदर-पाण्डुना गण्डेन, उष्ण-श्वास-प्रश्वासाघातशुष्केणाधरेण, स्वेदजुषा च वपुषा कञ्चन दुष्प्रतीकारमाधिप्रधानं व्याधिं स्पष्टयन्ती, चक्षुषी धवलयता, कपोलौ मलिनयता, अधरं ताडयता, रागमपहरता,

---

परिक्रमण-क्लम-क्लान्तम् = सतत-परिभ्रमण-खेद-खिन्नम्। कमलपल्लवोदरे = पद्मकिसलयान्तराले। सुप्तम् = निद्रितम्। कलानाथम् = शशिनम्, इवेत्युत्प्रेक्षा। कदर्थयन्ती = तिरस्कुर्वती। विरहजन्मना = वियोगसमुत्थेन। धवलिम्ना = श्वैत्येन। भस्मनेव = भसितेनेव। रूषिता = छुरिता, लिप्ता। बदरवत् पाण्डुना = पीतेन। गण्डेन = कपोलेन। लुप्तोपमा। उष्णयोः श्वासप्रश्वासयोः आघातैः, शुष्केण = नीरसेन। तापातिशयात् रूक्षेणेति यावत्। स्वेदजुषा = घर्मजलवता। दुष्प्रतीकारम् = दुश्चिकित्स्यं निरौषधम्। आधिः = मानसिकी व्यथैव, प्रधानम् = मुख्यम्, यस्मिन् तादृशम्। व्याधिम् = रोगम्। स्पष्टयन्ती = प्रकटयन्ती। चक्षुषी = नेत्रे। धवलयता = श्वेतिमानं लम्भयता। कपोलौ = गण्डस्थले। मलिनयता = मलिनतां प्रापयता। ताडयता = प्रहरता। रागम् = मुखोष्ठादिगतं रञ्जनम्। अपहरता = दूरीकुर्वता।

पर ही कपोल रखे, हुए (काफ़ी देर तक) निरन्तर टहलते रहने के परिश्रम से थके और मुरझाए हुए मुख को कमल की पंखुड़ी पर सोए चन्द्रमा के समान तिरस्कृत करते हुए, विरहजन्य धवलिमा के कारण मानो भस्म भी रमाये हुए, बेर के समान पीले कपोलों, उष्ण श्वास और निःश्वास के आघात से सूखे हुए अधर और पसीने से तर शरीर से, किसी मानसिक व्यथा प्रधान असाध्य रोग को प्रकट करते हुए नेत्रों को धोकर सफेद कर देने वाले, कपोलों को मलिन कर देने वाले, अधर को स्पर्श (ताड़ित) करने वाले, (अधर के) राग (रञ्जक द्रव्य के प्रयोग से उत्पन्न लालिमा) का अपहरण करने वाले,

वक्षसि शतधारीभूय पट-सन्धिषु प्रवहता, बाष्प-बिन्दु-सन्दोह-प्रवाहेण स्वान्तस्थं धैर्यं गाम्भीर्यं च बहिः प्रवाहयामास ।

तां तथा निःशब्दरोदनेनापि रोदसी रोदयन्तीम्, सधडत्कृतिना वक्षसा, विवर्णेन वदनेन, शून्यया दृष्ट्या, विकलया चाङ्गयष्ट्या, अतिस्फुटीकृत-प्रिय-विरह-क्लेशमाकलय्य, परवशतामङ्गीकुर्वदिव हृदयम्, भज्यमानामिव वाचम्, रुध्यमानमिव कण्ठम्, वेपमानमिव विग्रहम्, प्लाव्यमानमिव च चक्षुः, कथं कथमिव स्ववशंवदं विधाय ते

बाष्पेणापसारणादिति भावः । शतधारीभूय = अनेकप्रवाहतां गत्वा । पट-सन्धिषु=वसनवन्धनेषु । प्रवहता = प्रसरता । बाष्प-बिन्दु-सन्दोह-प्रवाहेण= अश्रुपृषत्समूहधारया । स्वान्तःस्थम् = आभ्यन्तरिकम् । प्रवाहयामास = धारारूपेण निःसारयामास ।

निःशब्दम् = ध्वनिशून्यम्, यद् रोदनं तेन । रोदसी = द्यावापृथिव्यौ । रोदयन्तीम् = खेदयन्तीम् । सधडत्कृतिना = धडत्कारसहितेन । वक्षसा = हृदयेन । विवर्णेन = शुष्केण । वदनेन = लपनेन । विकलया = त्रुटितया, अङ्गयष्ट्या = देहेन । अतिस्फुटीकृत–प्रिय–विरहक्लेशाम् = अतिव्यक्ती-कृत–प्रेयो–वियोग–खेदाम् । आकलय्य = ज्ञात्वा । परवशताम् = पराधीनताम् । अङ्गीकुर्वत् = स्वीकुर्वत् । भज्यमानाम् = त्रुट्यमानाम् । रुध्यमानम् = अनिर्गमच्छ्वासम् । वेपमानम् = कम्पमानम् । विग्रहम् = शरीरम् । प्लाव्य-

---

वक्षस्थल पर गिरकर सैकड़ों धाराओं में विभक्त होकर साड़ी की सन्धियों (ग्रन्थि-यों या सिलन) में वहने वाले अश्रुजल के प्रवाह से, अन्तःस्थित धैर्य और गाम्भीर्य को बाहर बहा दिया (अर्थात् बाहर निकाल दिया)।

उसे उस प्रकार मौन रुदन से भी आकाश-पाताल को रुलाती, और धड़कते हृदय, विवर्ण (उदास होने के कारण मलिन) मुख, सूनी दृष्टि और व्याकुल शरीर से प्रिय के वियोग की व्यथा को सुस्पष्ट करती जानकर, उन दोनों सखियों ने, अपने परवश से होते हुए हृदय, खण्डित सी होती हुई वाणी, रुँधते हुए से कण्ठ, काँपते हुए से शरीर और डवडबा सी आई

अश्रु-मार्जनैः कदली-दल-वीजनैः शान्त-वचनैश्च सान्त्वयामासतुः ।

अथ क्षणानन्तरमात्मानमात्मनैव स्थिरयित्वा चारुहासिनीं विलासिनीं च सम्बोध्य वक्तुमारभत सौवर्णी—

"भगिन्यौ ! भवत्यावेव मम जीवने, भवत्यावेव ममाऽऽधारौ, भवत्यावेव च सर्वथा बन्धू इति भवत्यौ विहाय कोऽन्योऽस्ति; यदग्रे मानसं सुखं वा दुःखं वा प्रकटयेयम्; किन्तु वित्थ एव भाग्यहीनाया मम व्यतीतं वृत्तान्तम् । नाहं जननी-क्रोड-क्रीडासुखं स्मरामि । नाहं तात-लालन-सुखस्य स्वप्नमपि पश्यामि । नाहं स्वदेशस्य स्वजन्म-

---

मानम् = स्नप्यमानम् । स्ववशंवदम् = स्वाधीनम् । ते = सहचर्यौ ।

आत्मानम् = स्वम् । आत्मनैव = स्वयमेव । स्तम्भयित्वा = अवरोध्य ।

जीवने = प्राणने । आधारौ = आश्रयौ । सर्वथा = सर्वप्रकारेण । बन्धू = भ्रातृकल्पे, कल्याणकारिण्याविति यावत् । मानसम् = मनस्सम्बन्धि । वित्थः = जानीथः । लटो मध्यमपुरुषस्य द्विवचनम् । भाग्यहीनायाः = भागधेयशून्यायाः, दुर्भाग्याया इति यावत् । व्यतीतम् = विगतम्, वृत्तान्तम् = प्रवृत्तिम् । जननी-क्रोड-क्रीडा-सुखम् = मात्रङ्क-परिष्वङ्ग-मोदम् । तात-लालन-सुखस्य = जनक-

---

आँखों को, किसी प्रकार नियन्त्रित करके, उस (सौवर्णी) के आँसुओं को पोंछकर, उसे केले के पत्ते से पंखा झलकर और सान्त्वनापूर्ण बातें कहकर, उसको आश्वस्त किया (ढाढस बँधाया) ।

तदनन्तर, क्षण भर बाद, अपने को स्वयं ही सँभाल कर, चित्त स्थिर करके, सौवर्णी चारुहासिनी और विलासिनी को सम्बोधित करके बोली—

'बहनों ! आप ही मेरा जीवन हैं, आप ही मेरा सहारा हैं, आप ही मेरी सभी प्रकार की साथी हैं, अतः आपके अतिरिक्त दूसरा और कौन है ? जिसके आगे अपने हृदय के सुख-दुःख को प्रकट करूँ, परन्तु आप दोनों मुझ अभागिन के बीते हुए वृत्तान्त को तो जानती ही हैं । मुझे माँ की गोद में खेलने के सुख का स्मरण भी नहीं है, पिता के लाड़-प्यार का स्वप्न भी नहीं दिखाई पड़ता, मैं अपने देश

भुवश्च कथामपि शृणोमि, न वाऽहं चिरविनष्टयोर्भाग्यैः पुनः प्राप्तयोरपि भ्रात्रोः सहवास-सुखमनुभवामि। अहह! मातृपितृ-विहीनाया भाग्य-हीनाया दीनाया मम भ्रातरावेव त्वाधारभूतौ। हन्त! तयोश्च प्रत्यहं सम्मुखस्था खड्गधारा; प्रतिक्षणं च पार्श्व-परिवर्तिनः प्रत्यर्थिनः। द्वार-देशमालोकयन्ती वासरं व्यत्यापयामि। हन्त! स्वप्नेऽपि रणाङ्गण-गतावेव सोदरौ पश्यामि-इति नास्ति मे कदाऽपि सुखलेशः। मृगतृष्णासु, तृष्णाभिरापतन्ती मृगीव च यं प्राणनाथं मन्यमाना……" इत्यर्द्धोक्तावेव निःश्वस्य व्यरमत्।

पालनानन्दस्य। स्वप्नमपि पश्यामि, साक्षात्कारस्य तु कथैव का? चिरविनष्टयोः = अत्यधिककालाददृष्टयोः। सहवास-सुखम् = एकत्रस्थितिमोदम्। मातृ-पितृ-विहीनायाः = जननीजनकशून्यायाः। 'आनङ् ऋतो द्वन्द्वे' इत्यानङ्। सम्मुखस्था = पुरोवर्त्तिनी। खड्गधारा = असिधारा। पार्श्वपरिवर्त्तिनः = वामे दक्षे च स्थिताः। प्रत्यर्थिनः = अरयः। व्यत्यापयामि = क्षपयामि। रणाङ्गणगतौ = सङ्ग्रामभूमिं प्राप्तौ। सुखलेशः = अल्पमपि सुखम्। मृगतृष्णासु = मरीचिकासु। पिपासिता मृगा निदाघे सौरीभिर्भाभिर्भासमानेषूषरेषु दूरस्थेषु जलभ्रान्त्या धावन्ति, तत्र गत्वा जलमलब्ध्वा पुनर्दूरे तथाविधमेव स्थलान्तरं वीक्ष्य धावन्तीत्येवं क्रमेणातपसन्तप्ता म्रियन्ते। तदेतन्मृगतृष्णापदेनाऽभिधीयते। यम् = पौरुषधौरेयं कमपि, प्राणनाथम् = प्राणेश्वरम्। अर्द्धोक्तौ = अर्द्धमेव कथिते। व्यरमत् = भाषणाद् विरताऽभूत्। "व्याङ्परिभ्यो रमः" इति

तथा जन्मभूमि की चर्चा भी नहीं सुनती, न तो मैं अपने चिरकाल से खोये हुए तथा सौभाग्यवश पुनः प्राप्त हुए दोनों भाइयों के साथ रहने के सुख का ही अनुभव कर पाती हूँ। हा! माता-पिता से रहित मुझ हतभागिनी दुखिया के आधार तो मेरे दोनों भाई ही हैं। हा! उनके भी आगे प्रतिदिन तलवार की धार ही रहती है, हर समय दोनों ओर शत्रु ही रहते हैं। दरवाजे की ओर देखती हुई दिन बिताती हूँ। हा! स्वप्नों में भी दोनों भाइयों को युद्धभूमि में ही पहुँचा हुआ देखती हूँ। इस प्रकार मुझे लेशमात्र भी सुख नहीं है। प्यास के कारण मृगतृष्णा में पड़ी हुई मृगी की भाँति जिसको अपना प्रियतम

ततस्तयोः—"कथय, मा स्म रोदीः, कस्मिन् मनोऽनुरक्तम् ? कः प्राणनाथतया सनाथितः ? को भवत्या मनोमन्दिरं प्रविष्टः ?"—इति साम्रेडं कथयन्त्योः पुनराह सौवर्णी—

"यं च प्राणनाथं मन्यमाना मनोरथ-सन्तान-वितानैरात्मानं व्यथयामि, तस्य मासान् यावत् कथामात्रमपि न लभे। आवसथमपि न वेद्मि। पात्रेऽयमभिलाषः, सुपरिणामोऽयं चित्तबन्ध इत्यपि न जाने। केवलमेनं प्रातिपदिकं चन्द्रमिव कदाचित् क्षणाय दूरतोऽवलोक्य चिर-दाह-दग्धं हृदय-हतकं शीतलयामि। दुःख-कथा-कथन-समये दुःखमधिकमधिकं वर्द्धते इति भवतीभ्यां पृष्टाऽपि न ब्रवीमि, अनुरुद्धाऽपि

परस्मैपदता। लज्जाशोकातिरेकान्मध्ये तूष्णीम्भावः। अनुरक्तम्= सप्रेम। प्राणनाथतया = पतित्वेन, सनाथितः = वृतः। मनोमन्दिरम् = चेतःपूजालयम्।

मनोरथ-सन्तान-वितानैः = अभिलाषसमूहप्रसारणैः। व्यथयामि = पीडयामि। आवसथम् = गृहम्। पात्रे = योग्ये। सुपरिणामः = अन्ते सुखप्रदः, चित्तबन्धः = मनोनिवेशः। प्रतिपदि भवं प्रातिपादिकम् = आद्यतिथ्युदितम्। यद्यपि द्वितीयाशशिन एव चक्षुर्गोचरता, तथापि तमेव प्रतिपच्चन्द्रत्वेनाश्रित्य कवय उपमानभावं कल्पयन्ति। तथा च दामोदरो भारविः—"प्रतिपच्चन्द्रमिव प्रजा नृपम्" "प्रतीपच्चन्द्रनिभोऽयमात्मजः" इति कालिदासश्च। चिर-दाह-दग्धम् =

मानती हुई... "सौवर्णी इतना अपूर्ण वाक्य कहकर ही निःश्वास लेकर रुक गई।

इसके बाद उन दोनों सखियों के, "कहो कहो, रोओ नहीं, किसमें मन अनुरक्त हुआ है ? किसको प्राणेश्वर का गौरव दिया है ? कौन तुम्हारे हृदय-मन्दिर में प्रविष्ट हुआ है ?" इस प्रकार बार-बार कहने पर सौवर्णी पुनः कहने लगी—

"जिसको प्रियतम मानकर कामनाओं के जाल में अपने आपको खिन्न करती हूँ, उसका महीनों से समाचार भी नहीं मिला है। मैं उसका निवास भी नहीं जानती, मैं यह भी नहीं जानती कि मेरी यह अभिलाषा योग्य-पुरुष-विषयक है, यह मन का लगाव सुखान्त है या नहीं। केवल उसे प्रतिपदा के चन्द्रमा की भाँति कभी क्षण भर के लिये दूर से देखकर दीर्घकाल के विरह से तप्त अभागे हृदय को शीतल कर लेती हूँ। दुःख की कहानी सुनाते समय दुःख और अधिक बढ़

चापवृणोमि। तत् सख्यौ! अलं मादृक्षाया हतभाग्याया मुखमप्यवलोक्य। परश्शता रत्नभूता रणाङ्गणेषु प्रत्यहं शेरते। मम तु विधिना मृत्युरपि ललाटे नालेखि" इति कथयन्त्या एव तस्या हस्तं गृहीत्वा चारुहासिनी समवादीत्—

"हला! मा स्म वदस्तत्। मातृपितृ-सुखं सर्वे सदा नानुभवन्ति, विरह-दुःखमननुभूय न कोऽपि प्रेयसा संयुङ्क्ते, केनापि पारावार-तरङ्ग-रिङ्गणाघातमसोढ्वा मुक्ता नाऽऽप्यन्ते, शतशः शङ्कुलाभिरनुत्कृत्ता देवमूर्तिः सुसिंहासनार्हां सुषमां न कलयति। तत् समाश्वसिहि।"

तीव्रवियोगानलज्वलितम्। अनुरुद्धा = अनुरोधविषयं गमिता। अपवृणोमि = आच्छादयामि। मादृक्षायाः = मत्तुल्यायाः।

हला!, सखीनां पारस्परिकं सम्बोधनमिदम्। "हण्डे हञ्जे हलाऽऽह्वानम्" इत्यमरः। मा स्म वदः = मृत्युप्रभृतिविषये न किमपि निवेदय, अमङ्गलत्वात्। विरह-दुःखम् = वियोगखेदम्। अननुभूय = अनुभवगोचरमविधाय। प्रेयसा = प्रियतमेन। संयुङ्क्ते = सम्मिलति। पारावार-तरङ्ग-रिङ्गणाघातम् = समुद्र-लहरि-सञ्चलन-ताडनम्। मुक्ताः = मणयः। नाऽऽप्यन्ते = न लभ्यन्ते। शङ्कुलाभिः = प्रकृते टङ्कैः। अनुत्कृत्ता = अनुल्लिखिता। सुसिंहासना-

---

जाता है। इसलिये आप दोनों के पूछने पर भी कुछ नहीं बताती, और अनुरोध करने पर भी छिपाती हूँ। अतः सखियों! मुझ अभागिनी का मुख भी न देखो। रत्न के समान सैकड़ों वीर युद्धभूमि में प्रतिदिन धराशायी हो रहे हैं, मेरे ललाट में तो विधाता ने मृत्यु भी नहीं लिखी है।"

सौवर्णी यह कह ही रही थी कि चारुहासिनी ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—

"सखि! ऐसा न कहो। माता-पिता का सुख सभी लोग सदैव नहीं पाते, वियोग की व्यथा का अनुभव किये विना कोई भी प्रिय से नहीं मिलता, समुद्र की लहरों के नर्तन का आघात सहन किये विना किसी को भी मोती नहीं मिलते, सैकड़ों वार छेनी से गढ़े विना देवमूर्ति अच्छे सिंहासन पर

ततश्चिराय तासां बहुविधो मन्दं मन्दमालापो जातः। अथाऽकस्मादेव समश्रावि कस्यापि बालस्येव "अत्तिके! अत्तिके!" इति दूराहूतिः।

ततः सौवर्ण्या "चारुहासिनि! तवानुजस्त्वामाह्वयति" इति अवाचि। चारुहासिनी च विलासिनीमपि "उत्तिष्ठ प्रजावति! गच्छावः" इति कथयित्वा, "गोपाल! एषाऽऽयामि, तद् गच्छ, अम्बां कथय" इति तमप्युक्त्वा, सौवर्णीं बहु सान्त्वयित्वा, सोत्प्रासमनुमतिमासाद्य प्रचलिता। तामेव च विलासिन्यप्यनुससार।

अनयोरेका मन्दिराध्यक्ष-महाराष्ट्र-ब्राह्मणस्य पुत्री, अन्या च पुत्रवधूः।

र्हाम् = शोभनविष्टरस्थितियोग्याम्। सुषमाम् = शोभाम्। "सुषमा परमा शोभा" इत्यमरः। समाश्वसिहि = धैर्यमाश्रय।

अत्तिके! = भगिनि!। "अत्तिका भगिनी ज्येष्ठा" इत्यमरः। दूराहूतिः = दूरादाह्वानम्। सम्बोधनमिति यावत्। अवाचि = उक्ता। अवोचीति प्रयुञ्जन्तस्तु विस्मृत—"वच उम्" सूत्रार्था एवेति न तिरोहितम्। प्रजावति! = भ्रातृजाये! "प्रजावती भ्रातृजाया" इत्यमरः। अम्बाम् = मातरम्। सोत्प्रासम् = सेषद्धास्यम्। अनुमतिम् = अनुज्ञाम्। अनुससार = अनुसृतवती।

अनयोरित्यनेन एते परिचाययति पाठकेभ्यः कविः तयोरिति। पुत्रवधूः= स्नुषा। "वधूर्जाया स्नुषा स्त्री चे"त्यमरः।

आसीन होने योग्य सौन्दर्य नहीं धारण कर पाती, अतः धैर्य धारण करो।

उसके बाद देर तक उन सब की धीरे-धीरे तरह-तरह की बातचीत हुई। तब तक सहसा किसी बालक की सी बहिन! "बहिन!" की, दूर से आती हुई पुकारने की आवाज सुनाई पड़ी।

तब सौवर्णी ने कहा—'चारुहासिनी! तुम्हारा भाई तुम्हें बुला रहा है;' और चारुहासिनी, विलासिनी को भी, 'उठो भाभी चलें' कह कर, 'गोपाल! मैं अभी आई, जाओ, माँ से कह दो,' इस प्रकार अपने अनुज से कह कर, सौवर्णी को सान्त्वना देकर, उसकी अनुमति लेकर, मुस्कराती हुई चली गई।

इन दोनों में एक मन्दिर के अध्यक्ष, जो एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण हैं, उनकी पुत्री तथा दूसरी उन्हीं की पुत्रवधू है।

तयोर्गतयोः पुनरेकलैवोपविश्य स्वकटि-पट-प्रान्तासज्जितमेकं गज-दन्त-पट्टिका-फलकमुत्सार्य करे धृत्वा, तत्र स्वयमेव लिखितां रघुवीर-मूर्तिमालोकयन्ती, स्वयमपि चित्रलिखितेव यावत् कांश्चन क्षणानतिवाहयति; तावत् पृष्ठतः स्थितस्येव कस्यचन श्वास-भङ्ग-मश्रौषीत् । सपदि पृष्ठतः परिवृत्य च तमेव चिर-चिन्तितं प्राणाधारं रघुवीरमपश्यत् । चकित-चकितेव च झटिति समुत्थाय, मुदिता, मोहिता, कम्पिता, भीता, ह्रीता, चैकतो नतमुखी, फलकं गोपयन्ती समवतस्थे । रघुवीरस्तु तस्मिन्नेवावसरे वेगेन हयेन समायातो मुहुरत्राऽऽयातीति केनापि सवैलक्ष्यमवीक्षितः, सपदि वृक्षस्यैकस्य

एकला = एकाकिनी । स्व-कटि-पट-प्रान्तासज्जितम् = निज-मध्य-भाग-शाटिकाञ्चलनिबद्धम् । गजदन्त-पट्टिका-फलकम् = हस्तिदन्त-पीठिका-खण्डम् । उत्सार्य = निःसार्य । क्षणान् = मुहूर्त्तान् । अतिवाहयति = यापयति । श्वास-भङ्गम् = उच्छ्वासम् । चकितचकितेव = भीतभीतेव, इवेन भयस्याकिञ्चित्-करत्वं द्योतितम् । मुदिता = प्रसन्ना । मोहिता = विक्षिप्ता । भावशावल्यं अकस्माद् दर्शनेन हर्षाधिक्यात् । फलकम् = पट्टकम् । गोपयन्ती = आच्छादयन्ती । सम-वतस्थे = आसाञ्चक्रे । वेगेन = जवेन । सवैलक्ष्यम् = सविस्मयम्, "विलक्षो

उन दोनों के चले जाने पर अकेली ही बैठकर अपनी कमर के फेंटे में बँधी एक हाथी-दाँत की पटिया निकाल कर, हाथ में लेकर उसमें अपने ही द्वारा बनाये गये रघुवीर के चित्र को देखती हुई स्वयं भी चित्रलिखित सी जब तक कुछ क्षण व्यतीत करती है, तब तक जैसे पीछे किसी का उच्छ्वास सुनाई पड़ा । पीछे घूमकर देखने पर उसने उसी प्रियतम रघुवीर को देखा, जिसके सम्बन्ध में वह बड़ी देर से चिन्ता कर रही थी । अत्यन्त चकित सी वह, झटपट उठकर, प्रसन्न, मुग्ध, भीत और लज्जित होकर, उस पट्टिका को छिपाती हुई, नीचे मुँह करके, एक ओर खड़ी हो गई ।

रघुवीर अभी तीव्रगति वाले घोड़े से आया है । वह प्रायः यहाँ आता रहता है, अतः किसी ने उसे आश्चर्य या हैरानी से नहीं देखा । वह शीघ्रता से घोड़े की

शाखायामाजानेय-वल्गामायोज्य, उपवन-पर्य्यटनेन स्वेदानपनेतु-मकस्मादितः समायातः इत्यधुनाऽपि स्विन्न-कपोलयोर्ललाटे च चूर्ण-कुन्तला भ्रमरकाश्च शिलष्टा एव। श्मश्रु-प्ररोह-स्थली मौक्तिक-व्रातेनेव स्वेद-बिन्दु-व्रजेनाङ्कितैव। ततोऽपि चाऽकस्माच्चिरसन्दृष्टा चिराभिलषिता च प्रेयसी रहसि सन्दृष्टेति पुनरुद्वेल्लित इव स्वेद-प्रवाहः।

रघुवीरो हि यदैवास्मिन् प्रान्ते समायाति; तदैव केनापि व्याजेन हनूमन्मन्दिरस्यापि परिक्रमान् करोत्येव, एतद्वाटिकाया अपि धीर-समीर-स्पर्श-सुखमनुभवति, यथासम्भवं सौवर्णीसाक्षात्कारेण च

विस्मयान्विते" इत्यमरः। अवीक्षितः = अनवलोकितः। आजानेयवल्गाम् = सदश्व-कविकाम्। उपवनपर्यटनेन = उद्यानभ्रमणेन। अकस्मात् = सहसा। चूर्णकुन्तलाः = अलकाः। भ्रमरकाः = वर्बरीकाः। "घुंघराले बाल" इति हिन्दी। श्मश्रुप्ररोहस्थली = ओष्ठोर्ध्वरोमोद्गम-स्थलम्। मौक्तिकव्रातेन = मुक्ताव्रजेन। स्वेद-बिन्दु-व्रजेन=घर्मपृषद्गणेन। चिरसन्दृष्टा = बहुकाला-वलोकिता। प्रेयसी = प्रियतमा। उद्वेल्लित इव = उच्छलित इव। स्वेद-प्रवाहः = घर्माम्बुपूरः।

प्रान्ते = देशैकदेशे। परिक्रमान् = परिभ्रमणानि। धीर-समीरस्य = मन्दमारुतस्य, स्पर्शसुखम् = सम्पर्कमोदम्। सौवर्णीसाक्षात्कारेण = सौवर्णी-

---

लगाम को एक वृक्ष की शाखा में बाँधकर, उद्यान में टहल कर पसीना सुखाने के लिए, अकस्मात् इधर आ गया है, अतएव अब भी उसके पसीने से भीगे कपोलों और ललाट पर घुंघराले और उलझे हुए बाल चिपके हुए हैं। उसके मूंछों के उगने का स्थान, मोतियों के समूह की सी पसीने की बूंदों से अङ्कित है, उस पर भी एकाएक बहुत दिन पहले देखी गई चिर अभिलषिता प्रियतमा के एकान्त में पुनः दिखाई पड़ जाने से उसके पसीने का प्रवाह पुनः उमड़ सा पड़ा।

रघुवीर जब भी स स्थान पर आता है, तो किसी न किसी बहाने हनुमान् जी के मन्दिर की भी परिक्रमा अवश्य कर लेता है, और इस वाटिका के मन्द-पवन के स्पर्श का आनन्द भी ले लेता है, तथा जहाँ तक सम्भव होता है, सौवर्णी को देख-

चिरतृषिते नयने सन्तर्पयति। एतेन सौवर्ण्या सह समालापस्यापि पञ्चषा अवसराः प्राप्ताः इति नायमालापस्य प्रथमः क्षणः। रघुवीरेणैतस्याः कमलोदरसोदरे करे दन्ति-दन्त-फलकालिखिता स्वप्रतिकृतिरपि साक्षात्कृता, प्रेयस्या विलुलित-वारि-बिन्दुव्रजे लोचने अपि चाऽऽलोकिते, तदेनां स्वविरह-दुःख-दुःखितामाकलय्य, स्वयमपि दुःखितः प्रोवाच—

"प्रिये! किमेतत्? अहह! किमिति ताम्यसि, शुष्यसि, ग्लायसि, खिद्यसे च? मुधा मादृशे पथिकजने पराधीने रज्यसे। हन्त! अहमेव वा किं करोमि? अश्व-पृष्ठमेव मे गृहम्, असिरेव मम कुटुम्बम्, परिश्रम एव मे धनम्, स्वामिभक्तिरेव मे यशः, तत् कथं मादृश-

---

दर्शनेन। **चिरतृषिते**=चिररात्राय पिपासिते। **समालापस्यापि**=वार्त्ताकरणस्यापि। पञ्च वा षड् वा पञ्चषाः। **क्षणः**=कालः। **कमलोदरसोदरे**=पद्मान्तरालतुल्ये। **स्वप्रतिकृतिः**=निजप्रतिमूर्त्तिः। **विलुलितः**=विच्छुरितः, **वारिबिन्दुव्रजः**=जल-कण-समूहः, ययोस्ते। **आलोकिते**=दृष्टे।

ताम्यसि=दुःखिनी भवसि। **शुष्यसि**=शोषमेषि, दुर्बलीभवसीति यावत्। **ग्लायसि**=क्षीणहर्षा भवसि। **खिद्यसे**=खेदमनुभवसि। **रज्यसे**=अनुरागं करोषि। **अश्वपृष्ठमेव**=घोटकपृष्ठमेव, सर्वदा तत्स्थत्वात्। **कुटुम्बम्**= बन्धु-

---

कर अपने चिर पिपासित नेत्रों को भी तृप्त कर लेता है। इसे सौवर्णी के साथ बातचीत करने के भी पाँच-छः अवसर प्राप्त हो चुके थे। अतः यह वार्तालाप का पहला अवसर नहीं था। रघुवीर ने सौवर्णी के कमल के मध्यभाग के सदृश सुन्दर हाथ में, हाथी दाँत की पटिया पर बनाया गया अपना चित्र भी देख लिया था, और प्रियतमा की डबडबायी हुई आँखें भी देख ली थीं, अतः उसे (सौवर्णी को) अपने वियोग की पीड़ा से व्यथित समझ कर स्वयं भी दुःखी होकर बोला—

"प्रिये! यह क्या? हा! दुःखी क्यों हो रही हो? सूखती क्यों जा रही हो? उदास और खिन्न क्यों होती हो? व्यर्थ ही मुझ जैसे पराधीन पथिक पर अनुरक्त हो गई हो। हा! मैं ही क्या करूँ? घोड़े की पीठ ही मेरा घर है, तलवार ही मेरा परिवार है, परिश्रम ही मेरा धन है, स्वामिभक्ति ही मेरा यश है, तो क्यों

मशरणमव्यवस्थं च चिन्तयन्ती चेतश्चञ्चलयसि? प्रत्यहं शुष्यन्तीं तव गात्रयष्टिमालोक्य स्वप्नेष्वप्युद्विजे। कतिवारं "सौवर्णि! सौवर्णि! मा स्म खेदयथा आत्मानम्" इति स्वप्नेचाऽहं चीदकरवम्, व्यलपम्, उदस्थाम्, करौ प्रासारयम्, अरोदिषं च। सप्रश्रयं प्रार्थये—विरम विरम, मा स्म जटालाभिश्चिन्ता-ज्वालाभिः कुसुमानीव कोमलान्यङ्गानि धाक्षीः" इति।

सौवर्णी तु पटान्तेन चक्षुषी परिमृशन्ती, परिवर्तितवदना मन्दं मन्दमभ्यधात्—"वीर! अभाग्य एष जनः, अस्वायत्तं हृदयम्, विगलितं धैर्य्यम्, पराधीनं चित्तम्, अस्थिर आत्मा, दुर्निवारः प्रेमप्रवाहः,

---

जनः। अशरणम् = अनाथम्। अव्यवस्थम् = अनिश्चितावासम्। चञ्चलयसि = चपलयसि। शुष्यन्तीम् = कार्श्यमाश्रयन्तीम्। उद्विजे = खेदमनुभवामि। चीदकरवम् = चीत्कारमकार्षम्। व्यलपम् = विलापमकरवम्। उदस्थाम् = उत्थितोऽभूवम्। करौ = हस्तौ। प्रासारयम् = क्रोडीकरणार्थम्। अरोदिषम् = अक्रन्दम्। सप्रश्रयम् = सनम्रतम्। जटालाभिः = जटामयीभिः, विपुलाभिरिति यावत्। अङ्गानि = अवयवान्। मा स्म धाक्षीः = मा दह।

परिमृशन्ती = परिमार्जयन्ती। परिवर्त्तितवदना = अन्यतः कृतानना। अभ्यधात् = अकथयत्। अस्वायत्तम् = अस्वाधीनम्। विगलितम् = विन-

---

मुझ जैसे अनाथ एवं अव्यवस्थित व्यक्ति के विषय में सोच-सोचकर चित्त को चञ्चल कर रही हो? अनुदिन सूखते जा रहे तुम्हारे शरीर को देखकर मैं स्वप्नों में भी उद्विग्न हो जाता हूँ। मैं कितनी ही बार स्वप्न में सौवर्णी, सौवर्णी! अपने को कष्ट न दो" इस प्रकार चिल्ला उठा हूँ, विलाप करने लगा हूँ, उठ गया हूँ, और मैंने अपने दोनों हाथों को फैला दिया है, और तुम्हें न पाकर मैं रोया भी हूँ। मैं तुमसे विनयपूर्वक प्रार्थना करता हूँ रुक जाओ, रुक जाओ, चिन्ता की भीषण ज्वालाओं में अपने फूलों के समान कोमल अंगों को मत जलाओ।"

सौवर्णी आँचल से आखें पोछती हुई मुख फेरकर धीरे-धीरे कहने लगी—"वीर! मैं अभागिनी हूँ, मेरा हृदय वश में नहीं है, धैर्य छूट (समाप्त हो)

दुरन्तोऽभिलाष:, अप्रतिरोधा कर्म-रेखा, तत् किमिव वच्मि ? किमिव भावयामि ? न जाने कीदृशं वज्रादपि निष्ठुरं हृदयं भवादृशानां व्यरचि विधात्रा; ये स्वसमर्पितजीवनानामनन्यशरणानां वचनमात्रेणापि विश्वासमापाद्य, सुधासारासारैरिव ज्वलज्जीव-जीवन-जीवातु-भूतैरालापैरालोकैरपि च दु:ख-दाव-दन्दह्यमानं देहं न शीतलयन्ति"

ष्टम् । आत्मा = अन्तःकरणम् । दुरन्त: = असुखपरिणाम: । अभिलाष: = मनोरथ: । अप्रतिरोधा = रोद्धुमनर्हा, अवारणीयेति यावत् । भावयामि = करोमि । वज्रादपि = अशनेरपि । निष्ठुरम् = कठोरम् । भवादृशानाम् = लोकोत्तराणाम् ।

"वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति ॥"

इत्युत्तररामचरिते भवभूति: । स्वसमर्पितजीवनानाम् = स्वसमुत्सृष्टप्राणानाम् । अनन्यशरणानाम् = अनितरनाथानाम् । सुधासारासारैरिव = पीयूषधारावर्षैरिव । ज्वलताम् = दहताम् । जीवानाम् = प्राणिनाम्, जीवनस्य = प्राणनस्य । जीवातुभूतै: = जीवनौषधिभि: । आलापै: = मधुरभाषणै: । आलोकै: = दर्शनै: । दु:ख-दाव-दन्दह्यमानम् = क्लेशाग्निजाज्वल्यमानम् । न शीतलयन्ति = न शिशिरयन्ति ।

गया है, मन पराधीन (हो गया) है, और अन्तःकरण चञ्चल है; प्रेम-प्रवाह को रोका नहीं जा सकता, मनोरथ का परिणाम दु:ख ही है, और भाग्य की रेखा अमिट है । क्या कहूँ ? क्या करूँ ? विधाता ने आप के से लोगों के हृदय को न जाने कैसा वज्र से भी कठोर बनाया है कि आप के से लोग, अपने को जीवन समर्पित कर देने वाले, अपनी शरण में आये हुए, अनन्य शरण व्यक्ति के दु:ख की ज्वाला में जलते हुए शरीर को, वचन मात्र से भी विश्वास पैदा करके अमृत की धारा की वर्षा के समान, जलते हुए प्राणियों के लिये प्राणदायक (जल के समान) मधुर भाषणों तथा दर्शनों से भी शीतल नहीं करते ।"

इति कथयित्वा, अश्रूणि मुञ्चन्तीं स्वप्राणाधारभूतामालोक्य विस्मृतात्मा, सपदि समीपमागत्य, स्वकक्ष-गुटिकातः पट-खण्डं निस्सार्य स्वहस्तेन तद्वाष्पाणि अपहरन्, द्वित्रैर्मौक्तिकैरिव च स्वचक्षुः-पतितैः कवोष्णैर्बिन्दुभिस्तद्धम्मिल्ल-मतल्लिकामासिञ्चन्, भग्नेन स्वरेण मन्दमगादीद् रघुवीरः—

"किमत्र संशेषे ? कोऽत्र सन्देहः ? काऽत्र विचिकित्सा ? कौमार-ब्रह्मचर्य-महाव्रतेनैव गात्राणि जर्जरयिष्यामि, त्वामेव वा परिणेष्यामीति सुदृढो मे नियमः। त्वं क्षत्रिय-कन्याऽसि, सुक्षत्रिय एवैष जनः।

अश्रूणि मुञ्चन्तीम् = रुदन्तीम्। स्वप्राणाधारभूताम् = स्वजीवनाश्रय-भूताम्। स्वकक्ष-गुटिकातः = निजबाहुमूलान्तरालस्थापितपोटलिकातः। पट-खण्डम् = कर्पटम्। मौक्तिकैरिव, इत्युपमा। कवोष्णैः = ईषदुष्णैः। "कवं चोष्ण" इति कवादेशः। धम्मिल्ल-मतल्लिकाम् = प्रशस्तं संयतकचम्। "मतल्लिका मचर्चिका प्रकाण्डमुद्धतल्लजौ। प्रशस्तवाचकानि" इत्यमरः। प्रशंसा-वचनैश्च" इति परनिपातः। भग्नेन = त्रुटितेन।

संशेषे = संशयं करोषि। विचिकित्सा = संशयः। "विचिकित्सा तु संशयः"। दार्ढ्याय पुनरुक्तिः। कौमार-ब्रह्मचर्य-महाव्रतेन = आबालब्रह्म-चर्य-रूपेण महता नियमेन। जर्जरयिष्यामि = जीर्णयिष्यामि। परिणे-ष्यामि = विवाहयिष्यामि। क्षत्रियस्य। कन्या = बालिका। सुक्षत्रियः =

यह कहकर, आँसू बहाती हुई, अपनी प्राणप्रिया को देखकर आत्म-विस्मृत रघुवीर तत्काल पास आकर, अपनी काँख में दबी पोटली से रूमाल निकाल कर, अपने हाथ से उसके आँसुओं को पोछता हुआ, अपनी आँखों से गिरे हुए, मोतियों के से, दो तीन कवोष्ण (कुछ गरम) अश्रुबिन्दुओं से उसके प्रशस्त केशपाश को सींचता हुआ लड़खड़ाते हुए स्वर से धीरे से बोला—

"इसमें संशय क्यों कर रही हो ? इसमें क्या सन्देह है ? कौन सी विचिकित्सा है ? मैं या तो बाल-ब्रह्मचारी रहने का महाव्रत धारण कर इस शरीर को जर्जर कर डालूंगा, या तुम्हीं से विवाह करूँगा, यह मेरा दृढ़ निश्चय है। तुम

त्वं राजपुत्र-देशीयाऽसि, तद्देशीय एव चाहम् ।' अनुरागश्चोभयत:, तद् यदि तवाग्रजौ पूज्यपुरोहितश्चानुमन्येरन्, तत् प्रकटमेव तूर्णमेव च स्यात् परिणय:"

इति वदत्येव तस्मिन् "सौवर्णि ! कुतोऽसि ? अग्रजस्त्वां प्रतीक्षते, आगच्छ, आगच्छ" इति देवशर्म-च्छात्र-विशेष-विहितेव दूराहूतिरार्कणि । सद्य एव च तौ कर्णयो: किमप्यालप्यैव, एकत: सौवर्णी, परतश्च रघुवीर:—इति द्वावपि शाद्वलमेनद् रिक्तमकुरुताम् ।

* * *

तत्र तु गौरसिंहो देवशर्मण: पुरोहितस्योपवेश-भवने समुपविष्टो देवशर्म्मणैवमालपति स्म ।

शोभन: क्षत्रिय: । विवाहयोग्यतासूचकमिदम् । अग्रजौ = ज्येष्ठौ भ्रातरौ । प्रकटम् = प्रत्यक्षम् । तूर्णम् = शीघ्रम् ।

देवशर्म-च्छात्र-विशेष-विहिता = देवशर्म-शिष्यान्यतमकृता । दूराहूति: = दूरात् आह्वानम् । शाद्वलम् = घासमयं हरितं स्थानम् । रिक्तम् = शून्यम् । अकुरुताम् = व्यधत्ताम् । ततोऽगच्छतामिति भाव: ।

× × ×

उपवेश-भवने = वार्तादिकरणार्थके सदने । 'बैठक' इति हिन्दी ।

क्षत्रिय की कन्या हो, मैं भी कुलीन क्षत्रिय हूँ । तुम राजपूताने की हो, मैं भी वहीं का हूं, दोनों ओर से प्रेम भी है; तो यदि तुम्हारे दोनों भाई और पूज्य पुरोहित अनुमति दें, तो प्रत्यक्ष ही और शीघ्र ही हम दोनों का विवाह हो जाए ।"

रघुवीर यह कह ही रहा था कि "सौवर्णी ! कहाँ हो ? तुम्हारे बड़े भाई तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं, आओ, आओ," इस प्रकार की, देवशर्मा के किसी छात्र की, दूर से पुकारने की सी आवाज सुनाई पड़ी । तत्क्षण एक दूसरे के कानों में कुछ कह कर, एक ओर सौवर्णी चल दी, और दूसरी ओर रघुवीर चल दिया, इस प्रकार उन दोनों ने हरी घास के उस मैदान को खाली कर दिया ।

× × ×

वहाँ गौरसिंह पुरोहित देवशर्मा की बैठक में बैठा हुआ उनके साथ इस प्रकार वार्तालाप कर रहा था—

गौरसिंहः—गुरो ! अद्यापि प्रधानभूता काचन घटना भवित्रीति श्रीमत आशिषमेव ग्रहीतुमायातोऽस्मि।

देवशर्म्मा-[प्रणमतः पृष्ठं संस्पृश्य] विजयी भूयाः !

गौरसिंहः-आर्य ! अपि मे भगिनी सौवर्णी प्रसीदति ?

देव०—आम्, प्रसन्नाऽस्ति। अथवा किमिव प्रसीदेत् ? राजवंश-जातापि मातृपितृ–विहीना भ्रातृ-साहचर्य-सुखमप्यननुभवन्ती वृद्धस्य मे सेवया कथं कथमपि दिनानि गमयति। अधुना तु तस्या विवाह-चिन्ताऽपि भवद्भि रमावहनीया। कन्यका हि श्वशुरालये क्लेशिता अपि वरम्, न चान्यत्र सुखिन्योऽपि।

गौर०—आर्य ! आवयोरपि मनसि वारं वारमुदेत्येष विषयः,

प्रणमतः = प्रणतिं कुर्वतः, शतुष्षष्ठचा रूपम्।

प्रसीदति = प्रसन्नाऽस्ति।

राजवंशजाताऽपि = नृपान्वयोद्भवाऽपि। दिनानि = अहानि। गमयति = क्षपयति। आवहनीया = धारणीया। क्लेशिताः = क्लेशं प्रापिताः।

गौरसिंह—गुरु जी ! आज भी कोई महत्वपूर्ण घटना घटित होने वाली है, अतः आप का आशीर्वाद लेने ही आया हूँ।

देवशर्मा—[प्रणाम करते हुए गौरसिंह की पीठ पर हाथ रख कर] विजयी बनो।

गौरसिंह—आर्य ! मेरी अनुजा सौवर्णी प्रसन्न तो है ?

देवशर्मा—हाँ प्रसन्न है। अथवा प्रसन्न क्या रहे ? राजवंश में उत्पन्न होकर भी माता-पिता से रहित तथा भाइयों के साथ रहने के सुख के अनुभव से भी वञ्चित वह मुझ वृद्ध की शुश्रूषा में ही जैसे-तैसे दिन बिता देती है। अब तो आप लोगों को उसके विवाह की भी चिन्ता करनी चाहिये। लड़कियों के लिये ससु-राल में कष्टों में रहना भी अच्छा और अन्यत्र सुखी रहना भी नहीं।

गौरसिंह—आर्य ! हम दोनों के मन भी यह विषय बार-बार उठता है,

किन्तु कोऽपि योग्यो वर एव न हृदयमारोहति । अपि स्मरति भवान् तातेन कस्मैचिद् दातुमेषा मनसि कृता ?

देव—स्मरामि, अम्वराधीशानां कुलजात:, कश्चिद् वीरसिंहो नामाऽन्यतमो भूस्वाम्यासीत् । स चैकदा सपुत्रस्तव तातेनोत्सवविशेषे समाकारितो वभूव । तत्पुत्रेण रामसिंहेन सह सौवर्णी चिरमक्रीडत् । अन्यै: समवयस्कैर्वालैश्च क्रीडास्वेव तयोर्विवाह-खेला व्यधायि । तदाकर्ण्य प्रीत: खड्गसिंह:, स्वमित्रं सुचरितं वीरं प्रत्यज्ञासीत् यद्—"यद्युभौ चिरं जीवेताम्; तर्हि कोशला रामाय दास्यते" इति ।

उदेति = उदयं प्राप्नोति । आरोहति = समागच्छति । अनुरूपो वरो न दृश्यत इति भाव: ।

कुले = अन्वये, जात: = उत्पन्न: । कुलपदस्य सविशेषणत्वेऽपि नित्यसाकाङ्क्षत्वात् समास: । भूस्वामी = "जमींदार" इति हिन्दी । समाकारित: = समाहूत: । अक्रीडत् = खेलामकार्षीत् । समवयस्कै: = तुल्यावस्थाकै: । विवाहखेला = क्रीडात्मक: परिणय: । व्यधायि = कृता । प्रीत: = प्रसन्न: । प्रत्यज्ञासीत् = प्रतिज्ञामकार्षीत् । कोशला = साम्प्रतिकी सौवर्णी । रामाय = रामसिंहाय । वचनभङ्ग्या तदावश्यकं निवेदितम् ।

पर कोई योग्य वर ही मन में नहीं वैठ रहा है । क्या आपको स्मरण है कि पिताजी ने इसे किसको देने का विचार किया था ?

देवशर्मा—हाँ स्मरण है । अंवर (आमेर) के राजकुल में उत्पन्न वीरसिंह नाम के एक जागीरदार थे । उन्हे तुम्हारे पिताजी ने एक वार एक उत्सव में पुत्रसहित निमन्त्रित किया । उनके पुत्र रामसिंह के साथ सौवर्णी प्राय: खेला करती थी । अन्य समवयस्क वालकों ने खेल ही खेल में उन दोनों का विवाह रच दिया । यह सुनकर प्रसन्न खड्गसिंह ने अपने सच्चरित्र मित्र वीरसिंह को वचन दिया था कि 'यदि दोनों चिरञ्जीवी रहे, तो कोशला का विवाह रामसिंह से कर दिया जाएगा ।'

गौर०—अपि ज्ञायते सन्ति ते कुशलिनः ?

देव०—[निःश्वस्य] विचित्रा घटना भगवतः। तस्य सेनानिवेश-शैथिल्यमेकदा समवलोक्य, अम्बराधीशेन जयसिंहेन तस्याखिल-भूसम्पत्तिरपहृता। पत्नी चैतस्य विसूचिकापीडिता पुत्रमुखे दत्तदृष्टिरेव चरमं निरश्वसत्। वीरश्च सपुत्र-पुरोहितो रामेश्वरयात्रायै गतो नाद्यापि ज्ञायते क्वास्तीति।

एवमालपत्स्वेव तेषु सौवर्ण्यपि समायाता, प्रफुल्लनयना च गौरस्य समीपे समुपविष्टा। गौरोऽपि तत्पृष्ठे दत्तहस्तः कुशलादिकं

सेनानिवेशे = सैन्यसङ्ग्रहे, शैथिल्यम् = त्रुटिम्। भू-सम्पत्तिः = गृह-भूम्याद्यात्मकमैश्वर्यम्। विसूचिकया = तन्नामकेन रोगविशेषेण महामार्यपर-पर्यायेण, पीडिता = क्लेशिता। चरमं निरश्वसत् = अन्तिमं श्वासमगृह्णात्-चरममिति क्रियाविशेषणम्। मृतेति यावत्। रामेश्वरस्य = भगवद्रामभद्रसंस्थापितस्य दक्षिणभारतस्थस्य लङ्काविजयलक्ष्मभूतस्य धामचतुष्टयान्यतमाधीशस्य, यात्रायै = दर्शनार्थगमनाय।

प्रफुल्लनयना = विकसितनेत्रा।

गौरसिंह—क्या आप उन (वीरसिंह) की कुशलताके सम्बन्ध में जानते हैं?

देवशर्मा—[निःश्वास लेकर] भगवान् की लीला विचित्र है। एक बार सैन्यशिविर में असावधानी देखकर आमेर-नरेश जयसिंह ने उनकी सारी जागीर छीन ली। उनकी पत्नी ने भी, विसूचिका (हैजा) के प्रकोप से, पुत्र का मुख देखते हुए ही अन्तिम साँस ले ली। वीरसिंह भी पुत्र और पुरोहित के साथ रामेश्वर की यात्रा के लिये घर से चले गये, और तब से उनका पता नहीं है कि वे कहाँ हैं?

वे इस प्रकार वार्तालाप कर ही रहे थे कि सौवर्णी भी आ गई, और प्रसन्न नयन से गौरसिंह के पास बैठ गई। गौरसिंह ने भी उनकी पीठ पर हाथ रखकर, कुशल मङ्गल पूछ कर, ज्यों ही कुछ कहना चाहा कि

पृष्ट्वा यावत् किमप्यालपति; तावदकस्माद् रघुवीरोऽपि तत्राऽऽगत्य, देवशर्म्माणं प्रणम्य, सादरं गौरमुवाच—

"आर्य ! क्षम्यतां किञ्चन अत्यावश्यकं निवेदयिष्यामि ।"

अथ तयोरेवमभूदालापः—

गौर०——कथय कथय, किं कथयसि ?

रघु०—इतः पश्चिमतो गव्यूत्यन्तराले कतिभिश्चन यवनसादिभिरावृता बहुभिर्भल्लहस्तैर्धानुष्कैः शाक्तीकैश्च सुरक्षिता शिबिकैका नीयते । निरचैषमवेदिषं च यत् कस्मैचित् प्रयोजनाय गोलखण्डपर्यन्तं दिल्लीश्वरः समायातोऽस्तीति तत्साक्षात्काराय तद्दुहिता रसनारी यातीति । तदत्राऽऽर्याः प्रमाणम् ।

पश्चिमतः = पश्चिमायां दिशि । गव्यूतेः = क्रोशद्वयस्य, "गव्यूतिः स्त्री क्रोशयुगमि"त्यमरः । अन्तराले = मध्ये । यवनसादिभिः = म्लेच्छाश्वारोहिभिः । भल्लहस्तैः=बाण-प्रहरणवद्भिः धानुष्कैः=धनुर्धारिभिः । शाक्तीकैः = शक्तिप्रहरणवद्भिः । शिबिका = नरवाह्या, पालकी । निरचैषम् = निर्णीतवान् । अवेदिषम् = अज्ञासिषम् । गोलखण्डपर्यन्तम् = "गोलकुण्डा" स्थानान्तम् । दिल्लीश्वरः = अवरङ्गजीवः । तद्दुहिता = तत्पुत्री, रसनारी= "रोशन आरा" इति ख्याता ।

एकाएक रघुवीर भी वहीं आकर, देवशर्मा को प्रणाम कर, गौरसिंह से सम्मानपूर्वक बोला——

"आर्य ! क्षमा कीजिएगा, एक अत्यन्त आवश्यक बात कहनी है ।" उसके बाद गौरसिंह और रघुवीर में इस प्रकार बातचीत हुई—

गौरसिंह——कहो, कहो, क्या कह रहे हो ?

रघुवीर—यहाँ से पश्चिम की ओर दो कोसकी दूरी पर कुछ यवन अश्वारोहियों से घिरी हुई, और अनेक भाला धनुष और शक्ति चलाने वाले सैनिकों से रक्षित एक पालकी ले जाई जा रही है, मैंने निश्चित पता लगा लिया है कि किसी उद्देश्य से दिल्लीश्वर गोलकुण्डा तक आया है, और उसकी पुत्री रोशन-आरा उससे मिलने जा रही है । आगे आप जैसा उचित समझें ।

गौर०—आः ! किमुक्तम् ? दिल्ली-कलङ्कस्य कन्या ?

रघु०—एवम् ।

गौर०—योऽसावार्याणां दारानपहरति, सतीर्दूषयति; तस्यैव कन्याऽद्य महाराष्ट्र-सिंहानां कन्दर-द्वारि मृगीव स्वयमापतिता ?

रघु०—एवमेव निश्चीयते ।

गौर०—आर्यपुरोहित ! सौवर्ण्यपहारक-यवन-युवक-हत्ययाऽपि न शाम्यति मे क्रोधः, तदद्य पर-वधू-कन्या-हरणं कथमिवारुन्तुदमिति 'अवरङ्गजीव' हतकमनुभावयिष्यामि । तदनुमन्यतां त्वरितमार्यैः ।

आर्याणाम् = हिन्दूनाम् । दूषयति = पांसुलयति । कन्दरद्वारि = गुहा-मुखे । मृगीव = हरिणीवेत्युपमा, दैन्यं द्योतितम् ।

सौवर्ण्याः, अपहारकस्य = चोरयितुः । यवनयुवकस्य, हत्यया = मारणेन । परेषाम् = अन्येषाम्, वधूनाम् = स्त्रीणाम्, कन्यकानाम् = अविवाहितानां वालिकानाम् । कथमिव = केन प्रकारेण । अरुन्तुदम् = मर्मपीडकम् । अनु-भावयिष्यामि = अनुभवगोचरतामानयिष्यामि । अनुमन्यताम् = अनुज्ञाय-ताम् । त्वरितम् = शीघ्रम् ।

गौरसिंह—ऐं ! क्या कहा, दिल्ली-कलङ्क (औरङ्गजेब) की कन्या ?

रघुवीर—जी हाँ ।

गौरसिंह—जो आर्यों की स्त्रियों का अपहरण करता है, पतिव्रताओं को दूषित करता है, उसी की कन्या आज मृगी की भाँति महाराष्ट्र के सिंहों की गुफा के द्वार पर स्वयं ही आ गयी है ।

रघुवीर—मालूम तो ऐसा ही होता है ।

गौरसिंह—पूज्य पुरोहित जी ! सौवर्णी को चुरा ले जाने वाले यवन-युवक को मार कर भी मेरा क्रोध शान्त नहीं हुआ है, इसलिये मैं आज नीच औरङ्गजेब को यह अनुभव करा दूंगा कि दूसरों की बहू-बेटियों का हरण कितना कष्टप्रद होता है । अतः आप शीघ्र ही अनुमति दें ।

इति प्रणम्य सह रघुवीरेण सपदि निवृत्तः तोरणदुर्गात् कांश्चिदतिचतुरान् सैन्धवारोहान् सह नयन्, स्वाधिष्ठितचरकुटीरतः कटिपटाच्छन्न-च्छुरिकान् सान्तर्भल्ल-कृत्रिम-दण्डहस्तान् शतं मस्करिवेषान् वीरान् सह नीत्वा, येन पथा सा शिविका समानीयते, तस्मिन्नेवैकत्र पर्वत-प्रान्ते गण्ड-शैलावृत-स्थले वर्षा-वारि-पूर्णमेकमल्पं कुण्डमालोक्य विषाक्तं विधाय, तत्प्रान्त-प्ररूढ-कुसुम-स्तबकेष्वपि घ्राणमात्रेण मूर्च्छावहं गरलमायोज्य, तत्परिसरवनभाग एव सर्वे समाच्छन्नाः समतिष्ठन्त।

सपदि=तत्कालम् । सैन्धवारोहान्=सादिनः । स्वाधिष्ठितचरकुटीरतः=स्वाध्युषितकुटीरात्। 'भूतपूर्वे चरट्'। कटिपटेषु=मध्यभागीयवसनेषु, आच्छन्नाः=गुप्ततया स्थापिताः, छुरिकाः=असिधेनवः यैस्तान्। सान्तर्भल्लाः=सगुप्तशस्त्राः, कृत्रिमाः=निर्मिताः, दण्डाः="गुप्ती" इति ख्याताः, हस्ते येषां तान् । शतम्=शतसङ्ख्याकान्। मस्करिवेषान्=परिव्राजकवेषधारिणः । "भिक्षुः परिव्राट् कर्मन्दी पराशर्यपि मस्करी" इत्यमरः । पर्वतप्रान्ते=गिर्येकदेशे । गण्डशैलैः, आवृते=सञ्छन्ने, स्थले=भुवि । वर्षा-वारि-पूर्णम्=प्रावृड्-जल-भरितम् । अल्पम्=क्षुद्रम्। कुण्डम्=पल्लवम्। विषाक्तम्=हालाहलादिमिश्रम्। तत्प्रान्त-कुसुम-स्तवकेषु=तद्देश-सञ्जात-पुष्पगुच्छेषु, घ्राणमात्रेण=केवलेन गन्धग्रहणेन, मूर्च्छावहम्=विचेतनतापादकम् । गरलम्=विषम्।

यह कह कर, प्रणाम कर के गौरसिंह रघुवीरसिंह के साथ, झट-पट लौटकर तोरण दुर्ग से कुछ अत्यन्त कुशल अश्वारोहियों को साथ लेकर, अपनी पुरानी कुटी आया। वहाँ से संन्यासी का वेश धारण किए हुए सौ ऐसे वीरों को, जिन्होंने अपने कटि-वस्त्र में छुरे छिपा रखे थे, और जिनके हाथ में गुप्तियाँ थीं, (अर्थात् ऐसी छड़ियाँ थीं जिनके अन्दर भाले गुप्त थे) उन्हें साथ लेकर जिस मार्ग से वह पालकी आ रही थी, उसी पर एक पहाड़ी पर बड़ी-बड़ी शिलाओं से घिरे स्थान पर, वर्षा के जल से भरा एक छोटा-सा कुण्ड देखकर उसमें विष घोल कर, उसे विषाक्त बना कर, उसके किनारे उगे हुए फूलों के गुच्छों पर भी सूँघने मात्र से मूर्छित कर देने वाला विष छिड़क कर, उसके समीपस्थ वन प्रदेश में ही सभी के साथ छिपकर बैठ गया।

तावत् समायातास्ते सगणाः शिविकावाहाः। "अहो ! रम्यमिदं स्थानम्, क्षणं विरम्यताम्, उदकादिकं पीयताम्, परतो यास्यते" इति वदन्तः, "उपविशोपविश, तिष्ठ तिष्ठ, रुन्धि रुन्धि", इति सर्वे तत्रैव विरेमुः। यावत् ते किमपि बुभुक्षव इव, इतस्ततः समवलोकयन्ति; तावदकस्मादेको वृद्धः करधृत-गात्रावलम्ब-दण्डः पिटकमेकं वहन् दृष्टः। "अरे ! रे ! दशमिहतक ! किमास्ते पेटायाम् ? कुतो यासि ?" इति पृष्टोऽसौ ईषत्त्रस्त इव; "न न न न किमपि, भ भ भगवन् !" इति कथयन् त्वरितं चलितः। ते तु सर्वे "गृह्णीध्वं गृह्णीध्वम् हरध्वं हरध्वम्, लुण्ठत लुण्ठत, हत हते"ति तं वराकमह-

---

आयोज्य = सम्मिश्र्य। तत्परिसरवनभागे = तदन्तिकविपिनैकदेशे। सभाच्छन्नाः = निलीनाः। समतिष्ठन्त = स्थिताः।

सगणाः =ससैन्याः। रम्यम् = हृद्यम्। क्षणम् = मुहूर्त्तम्। परतः = पश्चात्, यास्यते = गमिष्यते। रुन्धि रुन्धि = स्थगितो भव, स्थगितो भव। सम्भ्रमे द्विरुक्तिः। विरेमुः = यात्रां स्थगितामकार्षुः। बुभुक्षव इव = भोक्तुमिच्छव इव। अकस्मात् = सहसा। करधृतगात्रावलम्बनदण्डः = हस्तगृहीतशरीरालम्बदण्डः। पिटकम् = मञ्जूषाम्। वहन् = नयन्। दशमिहतक ! = दशमीमवस्थां गत ! वृद्ध नीच ! नवतितः शतवर्षपर्यन्तमायुषः दशमीति संज्ञा। ईषत् त्रस्त इव = किञ्चिद् भयाक्रान्त इव। हरध्वम् = चोरयध्वम्।

तब तक पालकी ढोने वाले भी रक्षकों के साथ वहीं आ गये। 'अहा ! यह स्थान सुहावना है, क्षण भर रुक जाओ, जल पान कर लो, फिर आगे चला जाएगा, 'बैठो-बैठो, ठहरो-ठहरो', यह कहते हुए 'रुको-रुको' कहते हुए वे सभी वहीं रुक गये, और कुछ खाने की इच्छा से इधर-उधर देखने लगे; तब तक उन्हें हाथ में सहारे की छड़ी लिये हुए, एक पेटी ले जाता हुआ एक वृद्ध पुरुष दिखाई दिया। 'अरे ओ बुड्ढे ! इस पेटी में क्या है ? तू कहाँ जा रहा है' ? इस प्रकार पूछा जाने पर, वह वृद्ध कुछ डरा हुआ सा, 'न-न-न नहीं, कुछ भी नहीं, भ-भ-भगवन्' कहते हुए तेजी से चल दिया। उन सभी (यवनों) ने, 'पकड़ो-पकड़ो,

म्पूर्विकया लुलुण्ठुः। स च कृत्रिम-पथिकः सकपट-क्रन्दन-गलज्जलैर्मुखं क्षालयन् तिरोबभूव।

एते च तत्पेटकाद् मधुर-मोदक-वृन्दमाप्य, परस्परं विभज्य, बुभुजिरे। तत्र प्रत्येकं मूर्छक-द्रव्यमयमास्वाद्य सर्वेऽप्यशयिषत। तन्मण्डलाध्यक्षस्य तु समीपे शूलाकृतं मांस काच-पात्र-परिपूरितं मद्यं चाऽऽसीदिति स तदास्वादनमात्रासादिततृप्तिः केवलं जागर्ति स्म।

हत = ताडयतेत्यर्थकमव्ययम्। अहम्पूर्विकया = अहं पूर्वमहं पूर्वमिति मनीषापूर्वम्। लुलुण्ठुः = बलाच्चोरयामासुः। सकपटम् = सव्याजम्, यत् क्रन्दनम् = रोदनम्, तस्मिन् गलद्भिः = स्रंसद्भिः, जलैः = अश्रुभिः। तिरोबभूव = अन्तर्हितः।

मधुर-मोदक-वृन्दम् = सरसमिष्टसमूहम्। आप्य = लब्ध्वा, आङ्प्रश्लेषोऽत्र ध्येयः। मूर्छकद्रव्यमयम् = मोहकविषमिश्रम्। आस्वाद्य = रसयित्वा। अशयिषत = निद्रामलभन्त। तन्मण्डलाध्यक्षस्य = सेनापतेः, शूलाकृतम् = शूले पक्वम्। काचपत्रे = वर्तुले, "बोतल" इति हिन्दी। परिपूरितम् = भरितम्। मद्यम् = सुरा। तदास्वादनमात्रेण = तत्खादनपानमात्रेण, आसादिता = लब्धा, तृप्तिः = परितोषः, येन सः। केवलम् = एकाकि, क्रियाविशेषणम्।

छीनो-छीनो, लूटो-लूटो, मारो-मारो', कह कर होड़ लगा कर उस बेचारे को लूट लिया, और वह बनावटी पथिक बनावटी रुदन के कारण बहते हुए आँसुओं से मुँह धोता हुआ तिरोहित हो गया।

इन सब लोगों ने, उसकी पेटी में मीठे-मीठे लड्डू पाकर, आपस में बाँट कर खाया। उन सारे लड्डुओं में मूर्छित कर देने वाला विष था, जिसे खा जाने के कारण सबके सब सो गये। उनके नायक के पास कबाब (लोहे की सलाखों में-लगा कर भूना गया मांस) और बोतल में भरी शराब रखी थी। अतः केवल वही क़बाब और शराब के आस्वादन मात्र से तृप्त होकर, (लड्डू न खाने के-कारण विष से अप्रभावित रह कर) जाग रहा था।

अथाऽकस्मात् सतडतडाशब्दं वर्षन् कश्चन मेघखण्ड उपरिष्टात् समायातः। न कोऽप्युदस्थादित्यवलोक्य, अत्यन्तं समशयिष्टाऽध्यक्षः। स्वय स्वास्तरणमेकस्याऽऽसन्नस्य च्छायातरोर्मूल आकृष्य, वाहकानाह्वमानां शिबिकान्तस्थां रसनारीम्—"मन्ये न कोऽपि जागर्ति, सर्वेऽत्यन्तगाढनिद्रया सुप्ता एते दास्याः पुत्राः" इति बोधयित्वा, अखिलान् पादाघातेन कराकर्षणेन चाऽऽलोक्य सत्यं मूच्छितानवगत्य, शीतलयितुं सुगन्धि–कुसुमानि जिघ्रापयिषुः, पार्श्वपरिवर्ति–क्षुपाग्रात् गुच्छकमेकमाचिनोत्। तत्समीपे समागच्छंश्च नव-कुसुम-स्तबक-रूप-दर्शन-

सतडतडाशब्दम्=सविद्युत्स्तनितध्वनि। समशयिष्ट=स्वापमकृत। स्वास्तरणम्=स्वविष्टरम्। च्छायातरोः=च्छायादायिवृक्षस्य। वाहकान् =शिबिकावोढॄन्। अत्यन्तगाढनिद्रया=प्रवलस्वापेन। दास्याः पुत्राः= नीचाः। "षष्ठ्या आक्रोशे" इति षष्ठ्या अलुक्। पादाघातेन=चरणताडनेन, कराकर्षणेन=हस्ताकृष्ट्या। शीतलयितुम्=शिशिरयितुम्। निद्रां दूरयितुमिति यावत्। सुगन्धिकुसुमानि=आमोदिपुष्पाणि। जिघ्रापयिषुः=घ्रापयितुमिच्छुः। पार्श्वपरिवर्त्तिनः=समीपस्थस्य, क्षुपस्य=ह्रस्वशाखिनः, अग्रात्=प्रान्तात्। गुच्छकम्=स्तवकम्। आचिनोत्=अत्रोटयत्। नव-

अकस्मात् तड़-तड़ ध्वनि के साथ पानी वरसता हुआ एक मेघखण्ड आकाश पर आ गया। किसी को भी उठते न देखकर नायक को सन्देह हुआ, और उसने स्वयं ही अपने विस्तर को समीप के एक छायादार वृक्षके नीचे खींच कर, पालकी के अन्दर से कहारों को बुला रही रोशन आरा से, 'मालूम होता है कोई नहीं जाग रहा है, हरामज़ादे, सब के सब गाढ़ी नींद में सो रहे हैं', यह कहकर सभी को पैर की ठोकर मार कर तथा हाथ खींच कर, वस्तुतः मूर्छित जानकर, शीतल करने के लिये सुगन्धित फूलों को सुंघाने की इच्छा से पास के पौधे से फूलों का एक गुच्छा तोड़ लिया। उनके समीप आते हुए, नवीन कुसुमों के गुच्छे

मोहितो गाढं स्वयमेवाऽघ्रात् । तत्क्षणाच्च भूमौ पतितो मुमूर्च्छ । वृष्टिरप्यकस्मात् प्रशममाप ।

तत्क्षणादेव संन्यासि–कदम्ब–संवलितः कतिपयैः सादिभिरनुगतो गौरसिंहः समाजगाम । एते कपट-संन्यासिनस्तु यवन-स्पर्शे घृणामावहन्तोऽपि क्षात्र–धर्ममाकलय्य, झटिति तत्कञ्चुकैर्दिल्लीश्वर–नामाङ्कित–रजत–फलकालङ्कृतोष्णीषैस्तादृश – पित्तल–पट्टिकाङ्कित-कटिबन्धैश्चाऽऽत्मानमलञ्चक्रुः । एवं केचन तरुशाखालम्बितान् वाजिन उन्मुच्य, वल्गादि–योजनैः सज्जीकृत्य, वलित–वारवाणाः, सुप्त–

कुसुमस्तवकस्य, रूपदर्शनेन = शोभानिरीक्षणेन, मोहितः = वशीकृतान्तरङ्गः । अघ्रात् = घ्राणविषयमकृत । मुमूर्च्छ = मूर्च्छामधिगतवान् । प्रशमम् = शान्तिम् । आप = लेभे ।

संन्यासि-कदम्ब-संवलितः = मस्करि-व्यूह-समेतः । घृणाम् = जुगुप्साम् । झटिति = त्वरया । तत्कञ्चुकैः = तेषां वसनैः । दिल्लीश्वरनाम्ना, अङ्कितैः = चिह्नितैः, रजतफलकैः = रौप्यपट्टिकाभिः, अलङ्कृतैः = भूषितैः, उष्णीषैः = शिरोवेष्टनैः । तादृशीभिः, पित्तलपट्टिकाभिः = रीतिफलकैः, अङ्कितैः, कटिबन्धैः = परिकरबन्धैः । अलञ्चक्रुः = भूषयामासुः । तरुशाखालम्बितान् = वृक्ष-स्कन्ध-निबद्धान् । वल्गादीनाम् = कविकादीनाम्, योजनैः = संश्लेषणैः । वलिताः = धारिताः, वारवाणाः = कवचानि यैस्ते । सुप्तसादि-

---

के सौन्दर्य से मुग्ध होकर उसने उसे स्वयं ही जोर से सूँघा, और तत्काल ही पृथ्वी पर गिर पड़ा तथा मूर्च्छित हो गया । वर्षा भी एकाएक शान्त हो गई ।

उसी समय गौरसिंह संन्यासियों के समूह के साथ आ गया । उसके पीछे-पीछे कुछ अश्वारोही थे । इन बनावटी संन्यासियों ने यवनों के स्पर्श से घृणा करते हुए भी, क्षात्र-धर्म समझ कर, शीघ्रतापूर्वक, उन मूर्च्छित यवनों के वस्त्रों (कुर्तों), दिल्लीश्वर के नाम से अङ्कित रजट-पट्टों से अलङ्कृत पगड़ी तथा वैसी हीं पीतल की पट्टियों से युक्त कमरबन्दों से अपने को अलङ्कृत कर लिया। इस प्रकार संन्यासी का वेप धारण कर आये हुए कुछ वीर वृक्षों की शाखा में बँधे हुए घोड़ों को खोल कर, लगाम आदि लगाकर, उन्हें तैयार कर, कवच धारण

सादि-शस्त्रैरेव धानुष्काः, काण्डीराः, शाक्तीकाः, याष्टीकाः, पारश्वधिकाः, प्रासिकाः, नैस्त्रिंशिकाः, कौन्तिकाः, फलकपाणयश्च भूत्वा तानारुरुहुः। अपरे तथैव परिवर्तितवेषा जङ्घालाः, इतरे च वाहकतामङ्गीकृत्य पालङ्कीमुत्थाप्य, सर्वैः सह तोरणदुर्गाभिमुखमेव "चल चले" ति चेलुः। एवं रसनारीमेनां तोरण-दुर्गे संस्थाप्य, दुर्गाध्यक्षं च यथोचिताऽऽदरैः सत्कतु रक्षितुं च प्रार्थ्य, जवनं निजमाजानेयमारुह्य, तन्निगालमास्फोटच, सह रघुवीरेण क्वचिदास्कन्दितैः, क्वचिद् धौरितकैः,

---

शस्त्रैः निद्रालु-घोटकवाहासिप्रभृतिभिः। धानुष्काः=धनुर्धारिणः। काण्डीराः=वाणवन्तः। शाक्तीकाः=शक्तिप्रहरणाः। याष्टीकाः=यष्टिप्रहरणाः। पारश्वधिकाः=परश्वधप्रहरणाः। प्रासिकाः=प्रासहरणाः। नैस्त्रिंशिकाः=खड्गप्रहरणाः। कौन्तिकाः=भल्लधारिणः। फलकपाणिनः=चर्महस्ताः। तान्=अश्वान्। परिवर्त्तितवेषाः=अङ्गीकृतराजभटनेपथ्याः। जङ्घालाः=वेगेन धावकाः। वाहकताम्=शिविकावोढृताम्। पालङ्कीम्=शिविकाम्। "पालकी" इति हिन्दी। जवनम्=वेगवन्तम्। आजानेयम्=शोभनमश्वम्। तन्निगालम्=तद्गलोद्देशम्। आस्कन्दितैः=उत्प्लुत्योत्प्लुत्य गमनैः। ("पाईया"

कर, सोए हुए अश्वारोहियों के शस्त्रों को लेकर, उन्हीं (शस्त्रों) से, धनुर्धर, वाणधारी, शक्तिधारी, यष्टिधारी, परशुधारी, प्रासधारी, खड्गधारी और शूलधारी बनकर, हाथ में ढाल आदि लेकर उन (घोड़ों) पर सवार हो गए। कुछ अन्य वीर, उसी प्रकार वेष बदल कर, पैदल चलने वाले और पालकी उठाने वाले कहार बन कर, पालकी उठाकर, सभी के साथ तोरण दुर्ग की ओर ही 'चलो-चलो' कहते हुए चल दिये। इस प्रकार रोशन-आरा को तोरण दुर्ग में पहुँचा कर दुर्गाध्यक्ष से उसका यथोचित आदर-सत्कार करने तथा उसकी सुरक्षा की व्यवस्था करने की प्रार्थना कर गौरसिंह अपने तीव्र वेग वाले घोड़े पर सवार होकर, उसकी गर्दन थपथपा कर, कहीं आस्कन्दित (सरपट), कहीं धौरितक

क्वचिद् वल्गितैः, प्लुतैः, निम्लोचति मार्तण्डमण्डले सपदि सिंहदुर्ग-मायातो गौरसिंहः ।

अस्मिन् समये पश्चिमाशा-कुण्डलमिव मार्तण्ड-मण्डलमस्ताचल-चूडा-शोणोष्णीषतां भेजे । सिंहदुर्ग-प्राचीराभ्यन्तर एव निःशब्दं वीरा युद्धसज्जां विदधति स्म । भूषणकविर्वीररस-कविता-पाठैरखिलाना-मुत्साहं द्विगुणयति स्म । वीरा अन्तर्लौहं वर्म्म परिधाय, तदुपरि माङ्ग-लिक-वर्णैर्वारबाणैरङ्गरक्षिकाभिश्चाऽऽत्मानमाभूष्य, सारसनं बध्वा, आयस-शीर्षाच्छादकस्योपरि स्वदेशीयं चक्रोष्णीषं धारयन्ति स्म ।

इति हिन्दी । धौरितकैः=वेगात् गमनैः । वल्गितैः=उच्छालनविशेषैः । "आस्क-न्दितं धौरितकं रेचितं वल्गितं प्लुतम् । गतयोऽमूः पञ्चे" ति कोशेऽश्वगतिः पञ्च-प्रकारा प्रदर्शिता । निम्लोचति = अस्तं गच्छति । मार्त्तण्डमण्डले = भास्कर-विम्बे ।

पश्चिमाशायाः = वारुण्या दिशः,कुण्डलमिवेत्युपमा । अस्ताचलस्य = चरमगिरेः, चूडायाः = मस्तकस्य, शोणोष्णीषताम् = रक्तशिरोवेष्टनताम् । भेजे = स्वीचकार । सिंहदुर्गस्य, प्राचीरस्य = प्रान्ततोवृतेः । अभ्यन्तरे = अन्तराले । युद्धसज्जाम् = सङ्ग्रामसन्नाहम् । अन्तः = निम्नांशे । लौहम् = लोहनिर्मितम् । माङ्गलिकवर्णैः = पीतादिभिः । वारबाणैः = कवचैः । अङ्ग-रक्षिकाभिः = शरीररक्षयित्रीभिः । आभूष्य = भूषयित्वा । सारसनम् = कटि-बन्धनम् । आयसस्य = लोहनिर्मितस्य, शीर्षाच्छादकस्य = शिरस्त्राणस्य ।

(दुल्की) कहीं वल्गित और कहीं प्लुतगति से घोड़े को बढ़ाता हुआ, सूर्य-मण्डलके अस्त होते-होते, शीघ्र ही, रघुवीर के साथ, सिंहदुर्ग पहुँच गया ।

इस समय पश्चिम दिशाके कर्णभूषण सा सूर्यमण्डल अस्ताचल के सिर की लालपगड़ी बन गया । सिंहदुर्ग की चहारदीवारी के भीतर ही वीर चुपचाप युद्ध की तैयारी कर रहे थे । भूषण कवि वीररस की कविताएँ सुनाकर सभी का उत्साह द्विगुणित कर रहे थे । वीर नीचे लौह-कवच पहन कर, उसके ऊपर (पीत आदि) माङ्गलिक वर्ण के कवचों तथा अँगरखों से अलङ्कृत होकर कमरबन्द बाँध कर, लोहे की टोपी के ऊपर, अपने देश की गोल-पगड़ी बाँध लिए थे ।

अथोच्चाया एकस्या वेदिकाया उपरि समारूढो महाराष्ट्रराजः शिववीरः समवालोकयत् यत् पूर्वस्यां रिङ्गत्-तरङ्ग-भङ्गाऽऽहत-तीरा शीतल-समीरा धलद्धलद्-ध्वनि-धीरा गम्भीरा नीरानाम्नी नदी प्रवहति। दक्षिणा प्रतीच्यां च गिरिराजीनां परतो गिरि-राजयः, स्वकीयैरभ्रंलिहैरुच्चोच्चः सानुभिरधित्यकास्थैररण्यानी-संस्थानैर्मेघमाला-मण्डल-भ्रममुत्पादयन्ति। उदीच्यां च सुदूर-विस्तृतं हरितशाद्वलम्, ततश्च पुण्यनगरमवलोक्यते। दुर्गमिदं शैल-शिखरस्थमिति दूर-वीक्षण-नलिकातो वीक्षणेन विलिख्य स्थापितं चित्रमिव साकल्येन नगर-

---

स्वदेशीयम्=महाराष्ट्रनिर्मितम्। चक्रोष्णीषम्=गोलं शिरोवेष्टनम्। रिङ्गत्-तरङ्गभङ्गैः=समुच्छलल्लहरिच्छेदैः, आहतम्=ताडितम्, तीरम्=तटप्रदेशो यस्याः सा। शीतलसमीरा=शिशिरवायुसमवेता। धलद्धलद्ध्वनिना=धलदित्यनुश्रूयमाणशब्देन, धीरा=मन्दगमना। गम्भीरा=अगाधजला। दक्षिणा=दक्षिणस्याम्। आजन्तमव्ययम्। प्रतीच्याम्=पश्चिमायाम्। गिरिराजीनाम्=पर्वतश्रेणीनाम्। स्वकीयैः=नैजैः, अभ्रंलिहैः=मेघस्पर्शिभिः। सानुभिः=शृङ्गैः। अधित्यकास्थैः=पर्वतोर्ध्ववर्त्तिभिः। अरण्यानी-संस्थानैः=महारण्यनिवेशैः। मेघमालामण्डलभ्रमम्=नीरदराजिबिम्ब-भ्रान्तिम्। उदीच्याम्=उत्तरस्याम्। सुदूरविस्तृतम्=अतिविस्तीर्णम्। हरित-शाद्वलम्=हरिद्वर्णघासमयम्। हरितविशेषणं घनहारित्यद्योतनाय। दूरवीक्षण-नलिकातः="दूरबीन" इति प्रसिद्धयन्त्रेण। वीक्षणेन=अवलोकनेन।

तदनन्तर महाराष्ट्र नरेश शिवाजी ने एक ऊँचे चबतरे पर चढ़कर देखा कि पूर्व की ओर, उछलती हुई लहरों से तट पर आघात करने वाली, शीतल पवन युक्त, गम्भीर, नीरा नाम की नदी, धल्-धल् शब्दपूर्वक धीरे-धीरे बह रही है। दक्षिण तथा पश्चिम दिशाओं में पहाड़ियों पर पहाड़ियाँ अपनी ऊँची गगनचुम्बी चोटियों तथा अधित्यकाओं में स्थित-बड़े-बड़े जंगलों के जाल से मेघमाला के समूह का भ्रम उत्पन्न कर रही हैं, तथा उत्तर दिशा में दूर तक फैला हुआ हरी घास का मैदान और उसके बाद पूना नगर दिखाई पड़ रहा है। यह दुर्ग पर्वत की चोटी पर बना है। अतः यहाँ से सारा नगर दूरबीन की नली से बनाये गये

मिदमालोक्यते स्म । शिववीरः, तेन सह द्वित्राणि मित्राणि च, सतर्कं सविविध-भाव-भङ्गं नगरमेनदालोकयन्ति । रजन्यामेतस्मिन् नगरे केव दुर्घटा घटना भवित्रीति च पर्य्यालोचयन्ति स्म ।

अस्मिन् मण्डले बहुदर्शी शिव-पितृ-करपल्लव-च्छायायां यापित-बाल्य-वयस्को युद्ध-विद्या-निष्णातः श्रीमुरेश्वराख्य एको वीरवर आसीत् । अपर आवाजीस्वर्णदेवाभिधो ब्राह्मणः, येन स्वबाहुबलेन सर्वोऽपि कल्याणप्रदेशः कल्याणदुर्गं च शिवस्य वशमानीतमासीत् । इतरश्च अन्नजीवदत्तः, येन स्ववीर्येण वर्षचतुष्टयात् प्राक् पानालय-

---

विलिख्य=चित्रीकृत्य । स्थापितम् = रक्षितम् । साकल्येन=सम्भूय । सतर्कम् = सविचारम् । दुर्घटा = अभूतपूर्वा । घटना = दशा । पर्य्यालोचयन्ति स्म = व्यचारयन् ।

बहुदर्शी = दीर्घदर्शी । शिव-पितृ-कर-पल्लव-च्छायायाम् = शिववीर-जनक-हस्त-किसलय-च्छायायाम् । तदाश्रये इति भावः । यापितम् = क्षपितम्, बाल्यम् = आद्यम्, वयः = अवस्था येन सः । युद्ध-विद्यायाम् = सङ्ग्रामकला-याम्, निष्णातः = निपुणः, श्रीमुरेश्वराख्यः = "मोरेश्वर, मोरोपन्त" इति प्रसिद्धः । अन्नजीवदत्तः = "अण्णाजी दत्तोबा" इति ख्यातः । स्ववीर्येण = स्वबलेन ।

चित्र की भाँति दिखाई पड़ता था । शिवाजी तथा उनके साथ दो-तीन मित्र भी ध्यान से विविध, भावभङ्गिमा-पूर्वक इस नगर को देख रहे थे और यह सोच रहे थे कि रात्रि में इस नगर में कौन सी दुर्घटना घटित होने वाली है ।

इस मण्डली में एक तो मुरेश्वर (मोरो पन्त) नाम का वीर था, जो दूर-दर्शी और युद्धविद्या में निपुण था, तथा जिसने अपना लड़कपन शिवाजी के पिताजी के करपल्लवों की छाया में विताया था; दूसरा आवाजी स्वर्णदेव नामक ब्राह्मण, जिसने अपने वाहुवल से कल्याण दुर्ग सहित सम्पूर्ण कल्याण प्रदेश को शिवाजी के अधीन कर दिया था; और तीसरा वीर था अण्णाजी दत्तोवा, जिसने

दुर्गं यवन-दुर्गं च शिवस्य हस्तगतं कृतम्। तदेते त्रयोऽपि सम्मुखमायाता एवमालापमकार्षुः—

मुरेश्वरः—आर्य ! सत्यमेव स्थिरीकृतम्, यदद्य मां वा स्वर्णदेवं वा न सह नेष्यति श्रीमान् ?

शिवराजः—वीरवर ! क्षम्यताम्, नाहं युष्माकं धैर्यं गाम्भीर्यं चातुर्यं वीर्यं वा विस्मरामि। परमलमनुरोधैरद्य। केवलमाशीर्भिरेव संवर्द्धयतामेष जनः। निश्चयेनाऽहं युष्मदाशीःसंवर्द्धितो विजेष्ये। दैवाद् वीरगतिं गतश्चेद्, भवत्सु कुशलिषु पुनरपि स्वतन्त्रमेव महाराष्ट्र-राज्यम्, पुनरपि प्राप्तशरणो वैदिको धर्मः, पुनरपि च कम्प एव वक्षःसु भारत-प्रत्यर्थि-पत्नीनाम्। युष्मासु मया सह भारतभुवं विरहयत्सु

धैर्यम् = वीरताम्। गाम्भीर्यम्=गूढप्रकृतिताम्। चातुर्यम् = कौशलम्। वीर्यम् = बलम्। विस्मरामि = विस्मृतिपथमानयामि। संवर्द्धयताम् = प्रोत्साह्यताम्। युष्माकम् = भवताम्। आशीर्भिः = सदाशंसनैः, संवर्द्धितः = वृद्धिं गमितः। वीराणां गतिम् = सूर्यमण्डलं भित्त्वोर्ध्वंगतिम्। प्राप्तशरणः = लब्धरक्षणः। "शरणं गृहरक्षित्रोः" इत्यमरः। भारतप्रत्यर्थिपत्नीनाम्=हैन्दव-

---

अपने बल से चार वर्ष पहले पानालय (पन्हाला) दुर्ग तथा यवन दुर्ग शिवाजी के अधिकार में कर दिये थे। ये तीनों वीर आगे आकर इस प्रकार बातचीत करने लगे—

मुरेश्वर—आर्य ! क्या सचमुच ही आपने आज मुझे या स्वर्णदेव को साथ न ले जाने का निर्णय कर लिया है ?

शिवाजी—वीरवर ! क्षमा करना। मैं आप लोगों के धैर्य, गाम्भीर्य, कौशल और वीरता को नहीं भूला हूँ। परन्तु आज (साथ चलने का) अनुरोध मत कीजिए। केवल आशीर्वादों से ही मुझे संवर्द्धित कीजिये। मैं आप लोगों के आशीर्वाद के बल से निश्चय ही विजय प्राप्त करूँगा। संयोगवश यदि मुझे वीरगति भी प्राप्त हो जाएगी, तो भी आप लोगों के सकुशल रहने पर महाराष्ट्र राज्य फिर भी स्वतन्त्र ही रहेगा, पुनः वैदिक धर्म को शरण मिलेगी, और पुनः भारतवर्ष के शत्रुओं की पत्नियों के हृदय में कम्पन होता रहेगा। किन्तु मेरे

च कस्मिन् धुरं धारयिष्यति धर्मः ? कमालम्बिष्यते भारताभिजन-स्वातन्त्र्य-भारः ? कस्याग्रे च रोदिष्यति नवोन्नतिमासादयन्ती महाराष्ट्र-जातिः ? तदलमालप्यान्यत्। सहसहचराय मे स्वस्त्युच्यताम्, यथा लीलयैवैतान् प्रमत्त–हतकान् विजये !

ततस्तेष्वाशीराशीन् वदत्सु सपदि प्रविश्य प्रणनाम गौरसिंहः। शिवेन सप्रेमाऽऽशीराश्युदन्तं पृष्टश्चोवाच–"भगवन्! वरयात्रा-प्रस्थानात् प्रागेव वधू-प्रवेशो जातः"। अथ "किमिति ? किमिति ?" पृच्छति सर्व-वीर-मण्डले, स विशकलय्य सर्वमकथयद् रसनारी-लाभचरितम्, कुशलेन तोरणदुर्गे स्थापन-वृत्तान्तं च। तदाकर्ण्य

शत्रुस्त्रीणाम्। विरहयत्सु = विरहितां कुर्वत्सु। धुरम् = भारम्। भारताऽभिजनस्वातन्त्र्यभारः = हैन्दवदेशस्वतन्त्रताधुरा। नवाम् = नवीनाम्, उन्नतिम्, वृद्धिम्। आसादयन्ती = प्राप्नुवती। सहसहचराय = सहगणाय। "नमः स्वस्ती"ति चतुर्थी स्वस्तियोगे। "प्रकृत्याशिषि" इत्यनेन सहस्य सादेश-निषेधः। विजये = विजयं करोमि। "विपराभ्यां जेरि"त्यात्मनेपदम्। सप्रेमाऽऽशीराशि=सस्नेहमङ्गलोचितपुरस्सरम्। उदन्तम्=वृत्तान्तम्। विशकलय्य=

साथ ही आप लोगों के भी भारतभूमि को छोड़ देने पर धर्म की धुरा को कौन धारण करेगा ? भारतवासियों की स्वतन्त्रता का भार कौन सँभालेगा ? और नवीन विकास प्राप्त कर रही मराठा जाति किसके आगे रोएगी ? अतः और कुछ भी मत कहिए। मेरे साथ जा रहे साथियों की तथा मेरी मङ्गल-कामना कीजिए, जिससे हम खेल-खेल में ही इन नीच अहङ्कारियों को पराजित कर सकें।

उसके बाद, अभी वे सब आशीर्वाद दे ही रहे थे, कि सहसा गौरसिंह ने प्रवेश कर शिवाजी को प्रणाम किया। शिवाजी द्वारा प्रेम और आशीर्वचनों सहित वृत्तान्त पूछने पर गौरसिंह बोला—'महाराज! बारात के प्रस्थान करने के पूर्व ही वधू घर में आ गई।' तब सभी वीरों के 'क्या है ? क्या बात है ?' इस प्रकार पूछने पर, उसने रोशन आरा की प्राप्ति और उसको तोरण दुर्ग में पहुँचा देने का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। यह सुनकर सभी लोग

चाऽत्यन्त-प्रमुदिताः सर्वे "अतिमाङ्गलिकमिदं, मूर्तिमतीयं जयश्रीः, निश्चितो जय आर्यचरणानाम्" इति प्रोचुः ।

शिवराजस्तु "गौर ! यद्यप्यल्पं ते वयः, तथाऽपि युद्धकार्येष्वनियुक्तोऽपि बहुधा मां तोषितवानसि, तदस्मिन् युद्धयात्रा-समये मङ्गलमाचक्षाणोऽवश्यं पुरस्कार्यः इति सादिनां पञ्चसहस्र्या अध्यक्षतायां त्वां विनियुनज्मि, अङ्गीकुरु" इत्यगादीत् ।

अथ समस्तक-नमनमङ्गीकुर्वति गौरे शिवेङ्गितेन तत्पदार्हाणि वासांसि विश्राणयति मुरेश्वरे, तत्पदसूचकमेकं सुवर्ण-पट्टकं वक्षसि,

---

स्पष्टीकृत्य । रसनारी-लाभ-चरितम् = "रोशन आरा" प्राप्तिवृत्तम् । जयश्रीः = विजयलक्ष्मीः ।

अनियुक्तोऽपि = अप्रेरितोऽपि । आचक्षाणः = कथयन् । पुरस्कार्यः = पारितोषिकदानार्हः । अध्यक्षतायाम् = स्वाम्ये, सैनापत्ये । विनियुनज्मि = स्थापयामि ।

तत्पदार्हाणि = तत्स्थानयोग्यानि । तादृशसेनापतिधारणीयानीति यावत् । विश्राणयति = ददति । सुवर्णपट्टकम् = हैरण्यपट्टिकाम् । ससुवर्णकोशम् =

अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—"यह तो बहुत ही शुभ लक्षण है, इस महिला के रूप में तो मूर्तिमती विजयश्री ही प्राप्त हुई है । महाराज की विजय निश्चित है !"

शिवाजी ने कहा—"गौरसिंह ! यद्यपि तुम्हारी उम्र कम है, और तुम युद्ध कार्य में नियुक्त भी नहीं किये गये हो, तो भी तुमने मुझे अनेक बार सन्तुष्ट किया है, और इस युद्धयात्रा के अवसर पर मङ्गल सूचक समाचार सुनाया है, अतः तुम्हें कुछ पुरस्कार अवश्य मिलना चाहिये । मैं तुम्हे पाँच हजार अश्वारोहियों का सेनापति नियुक्त करता हूँ, स्वीकार करो ।"

गौरसिंह के सिर झुकाकर स्वीकार कर लेने पर, शिवाजी के संकेत से, मुरेश्वर द्वारा उस पद के उपयुक्त वस्त्रों के दिये जाने पर, स्वयं शिवाजी ने अपने हाथों से गौरसिंह के वक्षस्थल पर उस पद का सूचक एक स्वर्णपदक

ससुवर्णकोशं खड्गं च कटिप्रदेशे शिवः स्वहस्तेन स्वयमायोजयत्। तदुदारता–वर्णन–कविताः रचयन्तं पठन्तं च भूषणं मौक्तिक-मालया सम्मान्य यावत् पुरः पश्यति; तावद् दृष्टम्—पुरतश्चिर-सहचरो माल्यश्रीको नयन-जल-क्षालित-कपोलः सहगमनानुमतिं वाञ्छतीति। तन्निषेधमनुचितं मन्यमानस्तत्प्रार्थनामङ्गीकृत्य चरणयोः पतितं रघुवीरमपश्यत्। "किं किं? कथनीयं वा किमपि?" इति पृष्टः स प्रावोचत्–"महाराज! तद्दिने तोरण-दुर्गात् सपदि पत्रादिकमानीतवन्तं मामवलोक्य प्रसन्नः पारितोषिकं प्रत्यज्ञासीदार्यः।"

ततः शिवराजः प्राह–"सत्यं दास्यते, किन्तु त्वरासमये साम्प्रतमसाम्प्रतं तद् याचनम्। तथाऽपि कथय किं याचसे?" रघुवीर उवाच-

---

सुवर्णनिर्मितेन आच्छादकेन सहितम्। आयोजयत् = योजितवान्। तदुदारतायाः = तदीयमुक्तहस्तविश्राणनस्य, वर्णने, कविताः = काव्यानि। नयनजलेन = अस्रेण, क्षालितौ = धौतौ, कपोलौ = गण्डस्थले यस्य सः। प्रत्यज्ञासीत् = प्रतिज्ञातवान्।

असाम्प्रतम् = अयुक्तम्। "युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने" इत्यमरः। आज्ञाप्यः

और कमर में सोने की म्यान सहित तलवार बाँधी। शिवाजी ने, अपनी उदारता का वर्णन करनेवाली कविता की रचना कर उसका पाठ करने वाले भूषण कवि को मोतियों की माला से सम्मानित कर ज्यों ही सामने दृष्टि डाली, तो देखा कि सामने खड़ा उनका पुराना साथी माल्यश्रीक आँसुओं से अपने कपोलों को धोता हुआ उनसे (शिवाजी से आज के युद्ध में), साथ जाने की अनुमति माँग रहा है। उसको मना करना अनुचित समझते हुए उसकी प्रार्थना स्वीकार कर उन्होंने चरणों पर पड़े हुए रघुवीर की ओर देखा। उनके 'क्या है? क्या है? कुछ कहना है क्या?' यह पूछने पर रघुवीर ने कहा—'महाराज! उस दिन तोरण दुर्ग से अतिशीघ्र पत्र आदि ले आने पर प्रसन्न होकर आपने मुझे पुरस्कार देने का वचन दिया था।'

तब शिवाजी ने कहा—"अवश्य दूँगा, परन्तु शीघ्रता में इस समय उसकी याचना करना ठीक नहीं; फिर भी कहो, क्या चाहते हो?"

"भगवन्निदमेवाभ्यर्थये यदनुगन्तुमाज्ञाप्योऽयं विधेयः ।" तदाकर्ण्या-ऽत्यन्तचकितः शिवराजः प्राह—'चित्रम्! सन्देश-हर-पदे नियुक्तोऽसि, अतिशिक्षित–वीर–कार्य–प्रवाहे च पतितुं साहसमाधत्से! कथ-मेतत्?'

रघुवीर आह—"महाराज! स्वकुटुम्बेऽहमेकोऽस्मि, विनष्टं माम-वगत्य न कोपि रोदिष्यति, प्रभुं तोषयितुं शक्ष्यामि चेत्, आयतिर्मे मङ्गलमयी ।"

शिवस्तु विलम्बस्याऽनवसरमाकलयन् झटित्योमित्युवाच । स च शिरसा भुवं स्पृशन् प्रणम्य युद्धसज्जोऽभूत् । अथाऽऽपिप्रच्छिषमाणं गौरं सम्बोध्य शिवराजेनाऽभाणि—

=आदेशयितव्यः । चित्रम्=आश्चर्यम् । सन्देशहर-पदे=वार्त्ताहर-स्थाने । अतिशिक्षितानां वीराणां कार्यप्रवाहे=कर्त्तव्यधारायाम् । साहसकार्ये इति यावत् ।

विनष्टम्=अदृष्टम् । 'नश अदर्शने' । क्तः, मरणं तु नार्थो मङ्गलवेलाया-ममङ्गलाभिधानस्य कविसमयख्यातिविरुद्धत्वात् । आयतिः=उत्तरकालः । "उत्तरः काल आयतिरि"त्यमरः ।

अनवसरम्=असमयम् । आकलयन्=विचारयन् । ओम्, अङ्गीकार-सूचकमव्ययम् । आपिप्रच्छिषमाणम्=आप्रष्टुमिच्छन्तम्, अहमप्यागच्छामीति शेषः ।

रघुवीर ने कहा—'महाराज ! यही निवेदन है कि साथ चलने के लिये इस दास को भी अनुमति दीजिए ।'

यह सुनकर अत्यन्त विस्मय से शिवाजी ने पूछा—'आश्चर्य है ! तुम दूत के पद पर नियुक्त हो, और अत्यन्त अभ्यस्त वीरों की कर्तव्यधारा में कूदने का साहस कर रहे हो । यह कैसे ?'

रघुवीर ने कहा—'महाराज ! अपने कुल में मैं अकेला हूँ । मुझे मारा गया जानकर कोई भी रोने वाला नहीं है, और यदि मैं स्वामी को सन्तुष्ट कर सका तो मेरा भविष्य मङ्गलमय होगा ।'

शिवाजी ने विलम्ब का अवसर न समझ कर झटपट 'हाँ' कर दिया । रघुवीर भी सिर से पृथिवी का स्पर्श करते हुए प्रणाम कर युद्ध के लिये सुसज्जित

"त्वं तु सादिनां पञ्चशतीं सह नीत्वा पुण्यनगरस्य पूर्वतः प्रतीक्षस्व, यदि रक्तमेकमग्निपुष्पं गगने समुड्डीयमानं पश्येः, ततस्त्वं बलात् प्रविश्य प्रत्यर्थिनामाक्रमणं विधास्यसि, इतश्च पश्चिमतः स्वर्णदेव आर्यः" ।

स च 'तथे'त्युक्त्वा तथा कर्तुं प्रचलितः, स्वर्णदेवोऽपि चोमिति स्वीचकार ।

शिवराजोऽपि—"प्रतीक्ष्यताम्, जननीं प्रणम्याऽऽगच्छामि" इति व्याहृत्याऽन्तःप्रविष्टो मुहूर्तानन्तरं च पटान्तेन चक्षुषी परिमृशन् निरगात्, आललाप च—

शिवः—अपि सज्जा यूयम् ?

माल्यश्रीकः—आम् ! प्रस्तुता वयम् ।

प्रतीक्षस्व = प्रतीक्षां कुरु । रक्तम् = शोणम् । अग्निपुष्पम् = "गुब्बारा" इति हिन्दी । समुड्डीयमानम् = समुत्पतत् ।

चोमिति, "ओमाङोश्चे"ति पररूपम् । परिमृशन् = प्रोञ्छन् । निरगात् = निष्क्रान्तः ।

हो गया । उसके बाद कुछ पूछने की इच्छा वाले गौरसिंह को सम्बोधित कर शिवाजी ने कहा—'तुम पाँच सौ अश्वारोहियों को साथ लेकर पूना नगर के पूर्व की ओर प्रतीक्षा करो, जब एक लाल रंग का अग्निपुष्प आकाश में देखना तब तुम बलपूर्वक प्रवेश कर शत्रुओं पर आक्रमण कर देना, और इधर पश्चिम से आर्य स्वर्णदेव आक्रमण कर देंगे ।'

गौरसिंह—'ठीक है ऐसा ही करूँगा', कह कर, वैसा करने के लिये चल दिया । और स्वर्णदेव ने भी 'हाँ' कह कर स्वीकार किया ।

शिवाजी भी, 'प्रतीक्षा करो, माताजी को प्रणाम कर मैं अभी आता हूँ' यह कह कर अन्दर गये और क्षण भर बाद वस्त्र के छोर से आँखें पोछते हुए बाहर आए और बोले—

शिवाजी—आप लोग तैयार हैं न ?

माल्यश्रीक—जी हाँ, हम लोग प्रस्तुत हैं ।

शिवः—अथ विजयतां त्रिपुरमथनो देवदेवः।

सर्वे—विजयते महादेवः! विजयते सनातनधर्मः! विजयते च श्रीमान् महाराष्ट्रराजः!

रघुवीरः—[पुष्पमालामर्पयन्] तोरण–दुर्गस्थ—मारुतिमन्दिराऽध्यक्षेणार्पितेयम्।

शिवः—जय जय हनूमन्! त्रायस्व!! [इति सादरं प्रसादमालां कण्ठे स्थापयति स्म।]

ब्राह्मणाः—[कुङ्कुमाक्षत–दान–पुरःसरम्]

"अक्षतान् विप्रहस्तेभ्यो नित्यं विन्दन्ति ये नराः।
तेषां विवृद्धिमायान्ति लक्ष्मीरायुर्यशो बलम्॥"

त्रयाणां पुराणां समाहारस्त्रिपुरम् तत्र विद्यमानोऽसुरो लक्षणया त्रिपुरः, अथवा त्रीणि पुराणि यस्येति बहुव्रीहिः, तन्मथनः=तन्मर्दकः। प्रसादमालाम्=हनूमदर्पितमालिकाम्।

अक्षतान्=क्षतशून्यान् तण्डुलकणान्। "लाजाः पुंभूम्नि चाक्षताः" इत्य-

---

शिवाजी—तो फिर, बोलो त्रिपुरविनाशक देवदेव महादेव की जय!

सभी—महादेव की जय! सनातन धर्म की जय!! महाराष्ट्रराज की जय!!!

रघुवीर—[शिवाजी को फूलों की एक माला देते हुए] यह माला तोरण-दुर्ग के महावीर मन्दिर के अध्यक्ष ने महाराज के लिये भेजी है।

शिवाजी—जय जय हनुमान्! भगवन्! रक्षा करो। [शिवाजी ने प्रसाद के रूप में प्राप्त माला को सादर गले में पहन लिया।]

ब्राह्मणसमूह—[शिवाजी के हाथ में कुंकुम अक्षत देते हुए] 'जो मनुष्य नित्य ब्राह्मणों के हाथों से अक्षत ग्रहण करते हैं; उनकी लक्ष्मी, आयु,

"शत्रवः पराभवं यान्तु, शाम्यन्तु घोराणि, शाम्यन्तु पापानि, हताश्च ब्रह्म-द्विषः, हताश्च परिपन्थिनः, हताश्च विघ्नकर्तारः, श्रीरस्तु"। ✓

माल्यश्रीकः—"यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः"

एवं सर्वे इष्टदेवं स्मरन्तो माङ्गलिक-शब्दानुच्चारयन्तो महता कोपेन रिपुनिकरं दिधक्षन्त इव दुर्गादवातरन्।

सिंहदुर्गात् पुण्यनगरपर्य्यन्तं शिवराजेन तूष्णीमदीपप्रकाशा अवाग्विलासा सेना सन्निवेशिता। स्वयं च पञ्चविंशतिं वा त्रिंशद् वा उत्साहधनान् धीरान् वीरान् सह नीत्वा, पुण्यनगर-प्रवेश-द्वार-

---

मरः। विप्राणाम् = ब्राह्मणानाम्, हस्तेभ्यः। नित्यम् = सततम्। विन्दन्ति = प्राप्नुवन्ति, "विद्लृ लाभे"। विवृद्धिम् = विपुलां वृद्धिम्। शाम्यन्तु = शान्तिं गच्छन्तु। घोराणि = उपद्रवकराणि। ब्रह्मद्विषः = वेद-शत्रवो ब्राह्मण-शत्रवश्च।

रिपुनिकरम् = शत्रुव्रातम्। दिधक्षन्तः = दग्धुमिच्छन्तः।

अदीपप्रकाशा = आलोकरहिता। अवाग्विलासा = भाषणरहिता।

सन्निवेशिता = संस्थापिता। उत्साहधनान् = सोत्साहान्। धीरान् =

यश और शक्ति में वृद्धि होती है।' 'आप के शत्रु पराजित हों, उपद्रव शान्त हो, पापों का दमन हो, ब्राह्मणद्वेषी विनष्ट हों, प्रतिद्वन्द्वियों का विनाश हो, विघ्नकारियों का दमन हो, और आप को लक्ष्मी प्राप्त हो।'

माल्यश्रीक—'जिसके पक्ष में धर्म है, उसी के पक्ष में कृष्ण हैं, और जिसके पक्ष में कृष्ण हैं, उसी को विजय प्राप्त होती है।'

इस प्रकार सभी लोग इष्टदेव का स्मरण करते हुए, माङ्गलिक शब्दों का उच्चारण करते हुए, भयङ्कर क्रोध से मानों शत्रुसमूह को जला देने की इच्छा से दुर्ग से उतर पड़े।

शिवाजी ने सिंहदुर्ग से पूना नगर तक अपनी सेना लगा दी। उनकी सेना एक दम शान्त (मौन) थी। उसमें दीपक का प्रकाश तक न था और कोई भी सैनिक बातचीत नहीं कर रहा था। वे स्वयं पच्चीस-तीस

समीप एव गहने गाढान्धकारे आम्रवणे प्रतीक्षमाणः समतिष्ठत।

तावत् "ढं ढं ढम्" इत्यश्रावि वाद्य-निनदः, आलोकिषत च स्थूलवर्तिकामहाद्युतयो दीपाः। परस्परमालोक्य तैः कथितमियं सा वरयात्रेति। अथ समीपमायाते तस्मिन् वरयात्रामण्डले शनैः शनैरेते सर्वेऽपि तैरेव सह मिलिताः सुखेन पुण्यनगरं प्रविष्टाः।

यत एव सपादाताः, सवाडवाः, घाण्टिक–चाक्रिकाऽऽयुधिक–वैजयन्तिक–वादकादि–सहिताः कृशानुक्रीडा–कलन–कौतुकिन एते यान्ति स्म, तत एव गवाक्षेभ्यः क्रोड–स्थापित–स्तनन्धया गृहिण्यः, उच्च-

---

धैर्यशालिनः। गहने = अविरलवृक्षके। गाढोऽन्धकारो यस्मिंस्तस्मिन्। आम्रवणे = रसालविपिने।

वाद्यनिनदः = भेरीध्वनिः। आलोकिषत = दृष्टाः। स्थूलवर्त्तिकया, महाद्युतयः = विशिष्टकान्तिशालिनो दीपाः = "मशाल" इति ख्याताः।

सपादाताः = सपदातिसैनिकाः, सवाडवाः = सघोटकाः। घाण्टिकाः = घण्टया चरन्तः, चाक्रिकाः = चक्रेण चरन्तः, आयुधिकाः = आयुध- जीविनः, वैजयन्तिकाः = ध्वजधारकाः। वादकाः = वाद्यवादनपटवः, एतदादिभिः सहिताः = समेताः। कृशानुक्रीडायाः = "आतिशबाजी" इति ख्यातायाः, कलने = करणे, कौतुकिनः = सकुतूहलाः, यान्ति स्म = अगच्छन्। क्रोड-स्थापितस्तनन्धयाः = भुजाभ्यन्तरनिवेशितपयःपायिबालाः, उच्चकुचाग्रैः =

उत्साही और धैर्यशाली वीरों को साथ लेकर, पूना नगर के प्रवेश-द्वार के पास ही घने अन्धकार से युक्त आम्र वन में प्रतीक्षा करने लगे।

तब तक 'ढं ढं ढम्' करके बाजे का शब्द सुनाई दिया; और मोटी बत्तियों वाले, तथा तीव्र प्रकाश वाले दीपक दिखाई पड़े। एक दूसरे की ओर देखते हुए उन (आम्र-वन में छिपे) सैनिकों ने कहा, 'यह वही बारात है'। तदनन्तर उस बारात के, पास आ जाने पर, धीरे-धीरे वे सभी उन बारातियों में मिलकर आसानी से पूना नगर में प्रविष्ट हो गए।

आतिशबाज़ी के कौतुकी ये बाराती पैदलों, घुड़सवारों, घण्टा वालों, चक्र धारण करने वालों और बाजा वालों के साथ, जिधर से ही निकल जाते

कुचाग्राऽऽस्फालित–गवाक्ष–दण्डाः स्वप्रेमपात्र–प्रियजन–दन्तक्षतव्रण–विषम–ताम्बूलराग–रञ्जिताधराश्चिरण्टयः अङ्गुल्या 'इदमिदमि'ति निर्दिशन्त्यः पश्यन्ति स्म ।

शनैरायात एष समारोहः शास्तिखानाध्युषित-गृह-द्वार-पर्य्यन्तम् । शास्तिखान-सीमन्तिन्योऽपि धमद्धमध्वनि-समाकर्णन-जात-कुतूहलाः, निरादृततन्द्राः, मन्दाक्ष-मन्द-प्रचाराः प्रतिसीराः अपसारमपसारम् , लशुन-पलाण्डु-गन्ध-कटुभिर्जम्भा-परम्पराभिर्नासा-मौक्तिकानि मलि-

---

उन्नतचूचुकैः, आस्फालिताः = ताडिताः, गवाक्षदण्डाः = वातायनदण्डा याभिस्ताः । स्वप्रेमपात्रस्य = स्वस्नेहाधारस्य प्रियजनस्य, दन्तक्षतव्रणेन = दशनखण्डनव्रणेन, विषमाः = उच्चावचाः, चिह्निता इति यावत् । ताम्बूल-रागेण = ताम्बूलभक्षणजेन लौहित्येन, रञ्जिताः = रक्तिमातिशयं प्रापिताः, अधरा यासां ताः । चिरण्टयः = वधूटयः । "चिरण्टी तु स्ववासिनी" इत्यमरः ।

समारोहः = जनसम्मर्दः । शास्तिखानस्य, सीमन्तिन्यः=सुकेशवेशवत्यो वनिताः 'नारी सीमन्तिनी' इत्यमरः । धमद्धमद्ध्वनेः समाकर्णनेन = श्रवणेन, जातम् = उत्पन्नम् , कुतूहलम् = कुतुकं यासां ताः । निरादृता = परित्यक्ता, तन्द्रा = आलस्यं याभिस्ताः । मन्दाक्षेण = लज्जया, मन्दः प्रचारः = सञ्चरणं यत्र तत्र, यासां ताः , प्रतिसीराः = यवनिकाः । अपसारमपसारम् = दूरीकृत्य

थे, उधर ही खिड़कियों से गोद में दूध-पीते बच्चों को लिए हुए गृहिणियाँ तथा उठे हुए चूचुकों से खिड़कियों की छड़ों पर आघात करती हुई, अपने प्रेम-पात्र प्रियतम के दन्तक्षत के व्रण से अङ्कित (विषम या उच्चावच) तथा ताम्बूल के रंग से रँगे हुए अधरों वाली बहुएँ, उँगली से, 'यह देखो, यह देखो', इस प्रकार निर्देश करती हुई, देखने लगती थीं ।

धीरे-धीरे यह जुलूस शाइस्ता खाँ के निवास भवन के द्वार तक आ गया । 'धम-धम' की ध्वनि सुनकर, कुतूहलवश, आलस्य का तिरस्कार कर, लज्जा के कारण मन्द गति से चलकर, चिक हटा कर, लहसुन और प्याज की गन्ध से कड़वी जँभाइयों से नाक में पहने आभूषण में मोलगे तियों को मलिन करती

नयन्त्यः लोलत्कुण्डलाः, दोलल्ललन्तिकाः, स्खलद्वसनाः, वलद्धसनाः, मदव्याघूर्णितनयनाः, विहित-मेचक-कुञ्चित-कच-प्रचय-सञ्चयनाः, अञ्जन नरञ्जिताभिर्दृग्भिरिन्दीवरमाला इव वर्षन्त्यः, रोलम्ब-कदम्बमिव क्षिपन्त्यः,वीक्षितुमारेभिरे। समारोह एष शनैःशनैः परतो निर्यातः, किन्तु अन्यूनास्त्रिंशद्वीरास्तद्भवन-नेदिष्ठ-वाटिका-विटपान्धतमसच्छायास्वेव समलीयन्त।

दूरीकृत्य। लशुनस्य = रसोनस्य, पलाण्डोः = "प्याज" इति ख्यातस्य, गन्धेन कटुभिः। जृम्भापरम्पराभिः = गात्रविनामसमूहैः। नासामौक्तिकानि = नासिकामणीन्। मलिनयन्त्यः = मलिनतां नयन्त्यः। लोलत्कुण्डलाः = चलत्कर्णभूषणाः। दोलल्ललन्तिकाः = हिल्लोलत्कण्ठिकाः। स्खलद्वसनाः = गलद्वस्त्राः। वलद्धसनाः = एधमानहासाः। मदव्याघूर्णितनयनाः = मद्यादिपानभ्रमन्नेत्राः। विहितम् = सम्पादितम्, मेचकस्य = श्यामस्य, कुञ्चितस्य = गुच्छितस्य, कचप्रचयस्य = केशसमूहस्य, सञ्चयनम् = बन्धनम्, याभिस्ताः। अञ्जनरञ्जिताभिः = कज्जलाक्ताभिः, इन्दीवर-मालाः = पद्मश्रेणीः। वर्षन्त्य इव = प्रकिरन्त्य इवेत्युत्प्रेक्षा। रोलम्ब-कदम्बमिव = द्विरेफव्रातमिवेत्युत्प्रेक्षा। क्षिपन्त्यः = प्रसारयन्त्यः। वीक्षितुम् = द्रष्टुम्। आरेभिरे = प्रारब्धवत्यः। परतः = अन्यस्यां दिशि। तद्-भवनस्य = तत्सदनस्य, नेदिष्ठायाः = नितान्तान्तिकस्थायाः, वाटिकायाः = उद्यानस्य, विटपानाम् = शाखानाम्, अन्धतमसच्छायासु = गाढान्धकार-प्रतिबिम्बेषु। समलीयन्त = अन्तर्हिताः।

हुई, हिलते कुण्डलों वाली, डोलते हुए हारों वाली, सरकते हुए वस्त्रों वाली, हँसती हुई, मद से अलसाई आँखों वाली, काले और घुँघराले केशपाशों को बाँधे हुए, अञ्जन लगे नेत्रों से नीलकमलों की माला की वर्षा सी करती हुई, भ्रमरों के समूह को फेंकती हुई सी, शाइस्ता खाँ की स्त्रियाँ भी, इस जुलूस को देखने लगी। यह जुलूस धीरे-धीरे दूसरी ओर निकल गया, परन्तु पूरे तीस वीर इस भवन के समीप की वाटिका के वृक्षों के घने अन्धकार की छाया में ही छिप गये।

वरयात्रा-कलकलः शान्तः, स्त्रियः पुनः स्व-शयनीयेषु शयिताः। अन्धकारो ववृधे। नागरिक-जनरवोऽस्तः। पथि पथिकानां गतागतं निवृत्तम्। श्यामश्यामैर्मेघैस्तिमिर-सान्द्रता द्विगुणिता। झिल्लीरवाऽनुसृतो नैशीथः स्वभावसिद्धोऽनाहतानुकारी ध्वनिरश्रूयत। प्रतीहारा अपि गृहीतभित्तिकाश्रयाः घुरघुरायित-घोर-घोणाः श्लथत्करवालाः समशयिषत।

अथाऽर्द्धसुप्ताभिर्महामद-महिलाभिः प्रासाद-पृष्ठतः सीत्कारमयं खटखट-प्रधानं किञ्चन शब्दजातमिवाऽश्रावि, किन्तु निद्रया गाढ-

---

स्वशयनीयेषु = स्वपर्यङ्केषु। ववृधे = एधामास। अस्तः = समाप्तिं गतः, पथिकानाम् = यात्रिणाम्। श्यामश्यामैः = अतिमेचकैः। तिमिर-सान्द्रता = अन्धकारघनता। द्विगुणिता = ववृधे। झिल्लीरवानुसृतः = झिण्टिकाशब्दपृष्ठगः। नैशीथः = आर्धरात्रिकः। स्वभावसिद्धः = प्राकृतिकः। अनाहतस्य = योगशास्त्रप्रसिद्धध्वनिविशेषस्य, अनुकारी = अनुकरणशीलः, प्रतीहाराः = दौवारिकाः। गृहीतभित्तिकाश्रयाः = अवलम्बितकुड्याधाराः। घुरघुरायितघोरघोणाः = घुरघुरशब्दनिस्सरणभयङ्करनासाः। गाढनिद्राक्रान्ता इति भावः। श्लथत्करवालाः = स्थानभ्रष्टतरवारयः। समशयिषत = सुप्ताः।

अर्धसुप्ताभिः = अपूर्णस्वापाभिः, महामदमहिलाभिः = शास्तिखान-

बारात का कोलाहल शान्त हो गया। स्त्रियाँ पुनः अपने पलँगों पर सो गईं। नागरिकों का शोरगुल समाप्त हो गया। रास्तों पर पथिकों का आना-जाना बन्द हो गया। काले-काले बादलों से अँधेरे की गहनता और दूनी हो गई। झिल्लियों की झङ्कार के साथ ही, अनाहत नाद का अनुकरण करने वाला अर्धरात्रि का प्राकृतिक शब्द सुनाई पड़ने लगा। पहरेदार भी दीवार का सहारा लेकर सो गये, उनकी नासिकाएँ खर्राटे भरने की आवाज के कारण भयङ्कर लगने लगीं, और उनके हाथों की तलवारें शिथिल हो गईं।

तदनन्तर शाइस्ता खाँ की स्त्रियों ने अर्धनिद्रित अवस्था में, महल के पिछ-वाड़े से आती हुई सीत्कारयुक्त खट्-खट् की आवाज़ सी सुनी, परन्तु नींद में

माक्रान्ताभिर्नाऽपार्य्यतोत्थातुं निर्णेतुं वा । धमधमाध्वनिरेष द्वैगुण्यं प्राप्तः, महानस-गृहे इष्टकाग्रावपात इव चाऽन्वभावि । ततस्तु भीताः स्त्रिय उत्थाय पल्यङ्केषूपविश्य "किमिदं कुतः?" इति परस्परमालप्य दासीं प्रोचुः—"हण्डे! हण्डे! गत्वाऽवधेहि, रन्धन-गृहे किमिव सशब्दमास्खलितम्?"

सा तु निद्रा-भर-मन्थरा प्रावोचत्—"भट्टिनि! शेष्व, कोऽपि बिडाल आखुं गृह्णन् समापतितो भवेत्"।

क्षणानन्तरं पुनराकर्णि तथैवेष्टका-पात-घातः। अथ द्वित्राः स्त्रियो भीत-भीता रन्धनालय-द्वार-देशमुद्घाटच मन्दालोकेन दीपेनाऽऽलुलोकन्त—यत् पञ्चषा महाराष्ट्र-वीरा भित्तिं भित्त्वा, अन्त-

---

योपाभिः। प्रासादपृष्ठतः = हर्म्यपश्चाद्भागे। शब्दजातमिव=ध्वनिसमूह इव। अश्रावि = श्रुतम्। आक्रान्ताभिः = व्याप्ताभिः। नाऽपार्यत = न पारितम्। द्वैगुण्यम् = बाहुल्यम्। महानसगृहे = पाकस्थाने। इष्टकानां ग्राव्णां च पात इव = पतनमिव। अन्वभावि = अनुभूतः। पल्यङ्केषु = पर्यङ्केषु। हण्डे, दास्यादिनीचसम्बोधनम्। अवधेहि = जानीहि। रन्धनगृहे=महानसे। सशब्दम् = सध्वनि। आस्खलितम्=पतितम्।

निद्राभरमन्थरा = स्वापभारसालस्या। भट्टिनि = राज्ञि। शेष्व = शयनं कुरु। आखुम्=मूषकम्। समापतितः = कूर्दितः।

मन्दालोकेन = अल्पप्रकाशजनकेन शयनसमयार्थरक्षितेन। भित्तिम् =

माती होने के कारण वे न तो उठ ही सकीं, और न निर्णय करने का साहस ही कर सकीं। धम्-धम् की ध्वनि दूनी हो गई, तथा रसोईघर में ईंट-पत्थरों के गिरने का सा अनुभव हुआ। तब वे भयभीत होकर, उठकर, पलँग पर बैठ कर, 'यह क्या है (यह आवाज कैसी है)? कहाँ से (आ रही है)?' इस प्रकार एक दूसरे से पूछती हुई दासी से बोलीं—'अरी जाकर देख तो, रसोईघर में धमाके के साथ क्या गिरा है?'

निद्रा के भार से अलसाई दासी ने कहा—'रानी जी, सो जाइये, कोई बिडाल चूहे को पकड़ता हुआ कूदा होगा।'

क्षण भर के बाद पुनः उसी प्रकार ईंटें गिरने की ध्वनि सुनाई दी। तब दो-तीन स्त्रियों ने डरते-डरते रसोईघर का किवाड़ खोल कर, क्षीण प्रकाश

रायाताः सन्ति, अन्ये चैकस्मात् परमपरः, ततोऽपि परमपरः—इति विकोशखड्गाः प्रविशन्ति, तास्तु सचीत्कारं प्रतिनिवृत्ताः, गृहावग्रहणी-समुद्घाताहत-प्रपदाः प्रघाणे निपतन्त्यः कान्दिशीका अट्टेष्वितस्ततो धावन्त्यो घोरनिद्रया सुप्तं सेनान्यं समबूबुधन्नचकथंश्च यद्—"नग्नासिहस्ता महाराष्ट्रा गृहे प्रविष्टाः" इति।

सेनानीस्तु महादेव-पण्डितालापं स्मरन् सुप्तः, इति स्वप्नेऽपि बद्धकरसम्पुटं सन्धि प्रार्थयमानं स्वाग्रतः स्थितं शिवराजं पश्यन्नासीत्। अकस्मादुत्थापितश्च क्षणमुपधानम्, क्षणं पल्यङ्क-पट्टिकाम्, क्षणं सीमन्तिनी-जन-ग्रीवां समालिङ्गन्, परतः प्राप्तचेतनः सम-

---

कुडचम्। भित्त्वा = विदार्य, सन्धि कृत्वेति यावत्। अन्तः = अभ्यन्तरे। एकस्मात् परमपरः = "एक के वाद दूसरा" इति हिन्दी। विकोशखड्गाः = नग्नासयः। गृहावग्रहणीषु = सदनदेहलीषु, समुद्घातेन = समुच्छलनेन, आहतानि = ताडितानि, प्रपदानि = पादाग्राणि यासां ताः। प्रघाणे = वहिर्द्वारप्रकोष्ठके। कान्दिशीकाः = भयद्रुताः। अट्टेषु = अट्टालिकासु। सेनान्यम् = सेनापतिम्। समबूबुधन् = अजागरयन्।

बद्धकरसम्पुटम् = कृताञ्जलिम्। पल्यङ्कपट्टिकाम् = पर्यङ्कस्य वामीयं दक्षीयं वा काष्ठम्, "पाटी" हिन्दी। सीमन्तिनीजनस्य = नारीवर्गस्य, ग्रीवाम्

वाले दीपक की सहायता से देखा कि पाँच-छः मराठे सैनिक दीवार तोड़कर भीतर आ गये हैं, और अन्य सैनिक भी एक के वाद दूसरा, दूसरे के वाद तीसरा इस प्रकार एक के वाद एक, नंगी तलवार लिये अन्दर आते जा रहे हैं। वे चिल्लाती हुई लौट गईं। घर की चौखट से पैरों के अग्रभाग में ठोकर खाकर, वाहरी कमरे में गिरती-सँभलती, भयवश अटारियों पर इधर से उधर दौड़ती हुई, उन स्त्रियों ने गहरी नींद में सोए हुए सेनापति शाइस्ता खाँ को जगाया और वताया कि नंगी तलवारें लिये मराठे घर में घुस आए हैं।

सेनापति शाइस्ता खाँ महादेव पण्डित की वात का स्मरण करता हुआ सोया था, अतः स्वप्न में भी, हाथ जोड़े हुए सन्धि के लिए प्रार्थना कर रहे शिवाजी को अपने आगे खड़ा देख रहा था। एकाएक जगाए गए शाइस्ता खाँ ने कभी तकिया, कभी पलँग की पाटी और कभी स्त्रियों के कण्ठ को ग्रहण करते

ज्ञासीद्—यत् पुण्यनगरं वशंवदं विधाय महाराष्ट्रा अन्तःपुराक्रमणमपि व्यधुरिति। अथैष सपदि समुत्थाय येनैव पथा पलायितुमियेष, तत एव सखड्गं महाराष्ट्र-वीरं मूर्तिमन्तमिव मृत्युमुपस्थितमवलोक्य पुनः प्रविश्य स्वाधिष्ठित-विशाल-कोष्ठस्य प्रधान-द्वारं पक्ष-द्वाराणि च प्यधात्। स्त्रीभिः सहितः स्वयमेकल एव च पुरुषोऽन्तःस्थः प्रच्छन्नतया पलायितुं व्यचेष्टिष्ट।

इतस्तु कश्चित् कोलाहलमिवाऽऽकर्ण्य द्वार-देशस्था रक्षकाः पार्श्वकोष्ठेषु चन्द्रशालासु मण्डपेषु च सुप्ता अपरे वीराः समुत्थाय श्येना इव समापतन्। महाराष्ट्रैः "हर हर महादेव" इति, यवनैश्च

=कन्धराम्। समालिङ्गन् = समाश्लिषन्। वशंवदम् = स्वाधीनम्। व्यधुः = कृतवन्तः। स्वेन अधिष्ठितस्य = अध्युषितस्य, विशालप्रकोष्ठस्य = महत्याः शयनकक्षायाः। प्रधानमार्गम्=गमागमपथम्। पक्षद्वाराणि="खिड़की" इति ख्यातानि। प्यधात् = अर्गलितवान्। एकलः = एकाकी। अन्तस्थः = कोष्ठस्थः, लुक्कायित इति यावत्। प्रच्छन्नतया = गुप्ततया। व्यचेष्टिष्ट = यतितवान्।

पार्श्वकोष्ठेषु = द्वारपार्श्वयो रक्षकनिवासाय रचितेषु लघुसदनेषु। चन्द्रशालासु = शिरोगृहेषु। मण्डपेषु = अङ्गनान्तरालशयनीयसदनेषु। तृणादि-

हुए, अन्ततः चेतना प्राप्त करने पर समझा कि पूना नगर को अपने अधिकार में करके मराठों ने हरम पर भी हमला कर दिया है। उसके बाद उसने झटपट उठकर, जिधर से भी भागना चाहा, उधर ही तलवार लिए मूर्तिमान् मृत्यु की भाँति मराठे वीर को उपस्थित देखकर, पुनः प्रवेश कर, अपने रहने के विशाल कक्ष के मुख्य द्वार को तथा किनारे के छोटे दरवाज़ों को भी बन्द कर लिया, और स्त्रियों के साथ अकेले ही, छिप कर, गुप्त रूप से भाग जाने की कोशिश करने लगा।

इधर कुछ कोलाहल सा सुनकर द्वारपाल तथा पार्श्वभाग की ओर ऊपर की कोठरियों तथा बरामदों में सोए हुए सैनिक उठकर बाज़पक्षी की तरह

"अल्ला अल्ला" इति युद्धारम्भसूचको महानिनदोऽक्रियत। तस्मिन् घोरेऽन्धकारे दीप-प्रकाश-साक्षिकं कुट्टिमेऽट्टे प्राङ्गणे च खड्ग-खणत्कार-क्ष्वेडा-हुङ्कार-ध्वनि-प्रतिध्वनि-धर्षित-प्रतिवेशि-निचयं मुहूर्त्तं यावत् तुमुलं युद्धमभूत्। "आक्रान्तमाक्रान्तम्, जितं जितम्" इति वर्द्धितोत्साहै-र्महाराष्ट्रैः-"आक्रान्ता आक्रान्ताः, जिता जिताः"–इति भग्नोत्साहा यवनाः परितो विशस्यमानाः स्वमज्जारुधिरमेदोनिचयैर्मेदिनीं मेदस्विनीं पङ्किलां च समकार्षुः।

निर्मितेषु लोकप्रसिद्धस्य तादृशसदनमात्रे प्रयोग इति बोधयति। **महानिनादः** = विशिष्टो ध्वनिः। **दीपप्रकाशसाक्षिकम्** = प्रदीपालोकसम्मुखे। **कुट्टिमे** = निबद्धभूमौ। 'कुट्टिमोऽस्त्री निबद्धा भूरि'त्यमरः। **प्राङ्गणे** = चत्वरे। 'अङ्गणं चत्वराजिरे' इत्यमरः। **खड्गखणत्कारस्य** = असिखडखडाशब्दस्य, **क्ष्वेडायाः** = सिंहनादस्य, **हुङ्कारस्य** = हुंशब्दस्य च, **ध्वनिप्रतिध्वनिभि** = शब्दप्रतिशब्दैः, **धर्षितः** = भयाकुलीकृतः। **प्रतिवेशिनिचयः** = पार्श्वसदनीयजनव्रातो यस्मिन् कर्मणि तादृशम्। येन तदिति युद्धविशेषणं वा। **मुहूर्त्तं यावत्** = घटिकाद्वयपर्यन्तम्। **तुमुलम्** = सङ्कुलम्। **भग्नोत्साहाः** = विनष्टहर्षाः, **विशस्यमानाः** = हिंस्यमानाः। **मज्जा** = शरीरगतधातुविशेषः, **रुधिरम्** = लोहितम्, **मेदः** = अस्थिसारो धातुविशेषः, तेषां **निचयैः** = समूहैः। **मेदस्विनीम्** = मेदसा बहुलाम्। **पङ्किलाम्** = कर्दमवतीम्।

झपटे। मराठों ने 'हर-हर महादेव', और यवनों ने 'अल्ला, अल्ला' की युद्ध प्रारम्भ होने की सूचक महागर्जना की। उस घोर अन्धकार में, दीपक के प्रकाश में ही, फ़र्श पर, अटारियों पर, और आँगन में, थोड़ी देर तक, तलवारों की खनखनाहट, सिंहनाद तथा हुंकार की ध्वनि-प्रतिध्वनि से पड़ोसियों को भयभीत करने वाला घमासान युद्ध हुआ। 'घेर लिया, घेर लिया, जीत लिया, जीत लिया', इस प्रकार कहते हुए, बढ़े हुए, उत्साह वाले मराठों द्वारा चारों ओर काटे जाते हुए, 'घिर गए, घिर गए हार गए, हार गए', इस प्रकार चिल्लाते हुए उत्साहहीन यवनों ने अपनी मज्जा, रक्त तथा चर्बी के ढेरों से पृथिवी को पङ्किल बना दिया।

तावत् प्रासादबहिर्भागे एकमग्निमयं रक्तं कुसुमाकारं स्फुलिङ्ग-निकुरम्बकमपि गगनं चुचुम्ब ।

शिवराजस्तु सेनापतिमेवान्विष्यन् शुद्धान्तदिश्यापतितो मार्ग-मवरुध्य स्थितं द्वाविंशतिवर्षदेश्यमेकं सुन्दरं यवनयुवकमवलोक्य चान्द्रेण संवादिनीमिव तदाकृतिं निर्धारयन् उक्तवान् यद् "मन्ये, चान्द्रखानस्य पुत्रोऽसि"। स ऊचे—"ओम्" इति ।

शिवोऽभाणीद्—"अपसराऽपसर, किमिति मृषा स्वपितृ-शोणित-दिग्ध-मत्करवाल-धारा-तीर्थे शरीरं विसिसृक्षसि ? समालोक्य तव मुग्धं मुखमण्डलं करुणा-परवशः क्रौर्यमाचरितुं नोत्सहे"।

कुसुमाकारम् = पुष्पाकृति । स्फुलिङ्गनिकुरम्बकम् = अग्निकणव्रजः । गगनं चुचुम्ब = नभः पस्पर्श । पूर्वनिश्चयानुसारं दूरस्थितभटसूचनाय सङ्केतोऽयम् ।

शुद्धान्तदिशि = अन्तःपुरमार्गे । आपतितः = वेगाच्चालितः। द्वाविंशति-वर्षदेश्यम् = प्रायो द्वाविंशतिहायनवयस्कम् । चान्द्रेण = चान्द्रखानेन । संवादिनीम् = सदृशीम् । तदाकृतिम् = तदाकारम् । ओम् = एवम् । अङ्गी-कारेऽयं शब्दः ।

स्वपितृशोणितेन = त्वज्जनकलोहितेन, दिग्धे = छुरिते, मत्करवाल-धारातीर्थे = मत्खड्गधारा-पुण्यस्थले । विसिसृक्षसि = विस्रष्टुमिच्छसि । यदि नापसरसि नूनं तदा मया हन्यसे इत्यर्थः । मुग्धम् = सुन्दरम् । करुणापरवशः = दयाधीनः । क्रौर्यम् = क्रूरताम् ।

इसी बीच राजमहल के बाहर वाले प्रदेश में एक अग्निमय रक्तिम पुष्प के आकार का अङ्गारपुञ्ज आकाश में ऊपर जाता दिखाई दिया ।

शिवाजी शाइस्ता खाँ को ही खोजते हुए अन्तःपुर की ओर आ गए, और वहाँ मार्ग रोक कर खड़े हुए करीब बाईस वर्ष के एक सुन्दर युवक को देखकर, उसकी आकृति को चाँद खाँ से मिलती-जुलती पाकर बोले : 'मालूम होता है कि तुम चाँद खाँ के पुत्र हो' । उस युवक ने कहा : 'हाँ' ।

शिवाजी ने कहा—'हट जाओ, हट जाओ, अपने पिता के खून से सनी मेरी तलवार की धारा के तीर्थ पर अपने शरीर को व्यर्थ ही क्यों छोड़ना चाहते

इति कथयत एव तस्याऽकस्मादुत्प्लुत्य शितधारं खड्गं मूर्द्धनि प्राहिणोत् स रिपुबालः। शिवस्तु स्तिमित उत्प्लुत्य यावदेकतस्तिष्ठन् स्व–खड्ग–त्सरुं दृढं करेणाऽऽकलयति; तावदद्राक्षीद् यद् भयानक-शल्यया कयाचित् हृदयं भित्त्वा परतोऽपि निस्सृताग्रया शक्त्या तीव्रं विद्धो भूमौ शायितोऽस्ति शत्रुरिति। तावद् दृष्टवान्—यत् पिचण्डिल एकोऽपरः कृष्ण–कूर्च–प्रचय–चुम्बित–वक्षोभागो ज्वलद्भ्रुचामिव विस्फारिताभ्यां नयनाभ्यां दिधक्षन्निव सक्ष्वेडम्–"अरे रे! अपसद!

उत्प्लुत्य=उच्छालं कृत्वा। शितधारम्=तीक्ष्णाग्रम्। प्राहिणोत्=प्रैरयद्। रिपुबालः=शत्रुसूनुः। स्तिमितः=स्तब्धीभूतः। स्वखड्गत्सरुम्=स्वासिमुष्टिम्। दृढम्=अशिथिलम्। भयानकम्=भीतिजनकम्, शल्यम्=भल्लम्, यस्यामेवम्भूतया शक्त्येति विशेष्यम्। हृदयम्=वक्षः। भित्त्वा=विदार्य। परतोऽपि=हृदयद्वितीयपार्श्वेऽपि, पृष्ठेऽपीति यावत्। निःसृताग्रया=समुद्गताग्रभागया। विद्धः=क्षतः। पिचण्डिलः=दीर्घोदरः। "वृहत्कुक्षिः पिचण्डिलः" इत्यमरः। कृष्णकूर्चप्रचयेन=कालबालसमूहेन, चुम्बितः=स्पृष्टः, वक्षोभागो यस्य सः। ज्वलद्भ्रुचामिव=वह्निमुद्गिरद्भ्रुचामिव। दिधक्षन्निव=दग्धुमभिलषन्निव। सक्ष्वेडम्=ससिंहनादम्।

हो? तुम्हारे भोले-भाले मुखमण्डल को देखकर मुझे दया आती है, और मैं क्रूरता नहीं करना चाहता।'

शिवाजी यह कह ही रहे थे कि चाँद खाँ के लड़के ने सहसा उछल कर अपनी तेज धार वाली तलवार उनके सिर पर चला दी। शिवाजी ने स्तब्ध होकर, उछल कर, एक तरफ खड़े होते हुए, अपनी तलवार की मूँठ को मजबूती से पकड़ते हुए देखा कि उनके शत्रु को भयानक अग्रभाग वाली एक बर्छी ने, छाती चीर कर, बुरी तरह बींध कर, धराशायी कर दिया है, और उस बर्छी की नोक (शत्रु की छाती चीर कर उसके शरीर के) दूसरी ओर भी निकल आई है। तब तक उन्होंने (शिवाजी ने) देखा कि एक दूसरे, बड़ी तोंद वाले, अपनी काली दाढ़ी के बालों द्वारा चुम्बित वक्षस्थल वाले (अर्थात् जिसकी काली दाढ़ी छाती तक लटक रही थी ऐसे), जलते हुए से, विस्फा-

शास्तिखान-पुत्र-हस्तेनैव ते निधनं स्थिरीकृतं धात्रेति प्रकटमवलोकयन्तु सर्वैः" इति कथयन् शक्तिमुदतूतुलत्। तच्छक्तिं छेत्तुं खड्गं सज्जीकुर्वन्नेव च केनापि भूमौ निपात्य च्छुरिका-विदार्यमाणं वेपमानावयवं शत्रुमपश्यत्।

एवमुत्थितं च विघ्न-हर्तारं शत्रु-शोणित-शोणीकृत-करद्वयम् इन्द्रगोप-द्युति-द्योतित-बिन्दु-वृन्दाच्छादित-वारबाणं निपुणमवलोक्य "रघुवीर" इति पर्य्यचेष्ट।

ततश्च "साधु रघुवीर! साधु, न विस्मरिष्यामि ते वीरताकार्यमिदम्"—इति व्याहृत्य प्रणमतः पृष्ठं स्पृष्ट्वा पुनरग्रतो याव-

---

उदतूतुलत् = उदस्थापयत्। छेत्तुम् = द्विधा कर्तुम्। सज्जीकुर्वन् = सन्नह्यन्। शिववीर इति कर्त्ता। छुरिकया = असिधेन्वा, विदार्यमाणं = स्फार्यमाणं, वेपमानावयवम् = कम्पमानगात्रम्।

विघ्नहर्त्तारम् = प्रत्यूहवारकम्। शत्रुशोणितशोणीकृतकरद्वयम् = रिपुलोहितरक्तीकृतहस्तयुगलम्। इन्द्रः, गोपाः = रक्षको यस्य सः, इन्द्रगोपः= वर्षाकालिको रक्तः कीटविशेषः, तद्द्युतिद्योतितैः = तत्कान्तिभासितैः, बिन्दुवृन्दैः = पृषद्व्रजैः। आच्छादितम् = प्रावृतम्, वारबाणम् = कवचो यस्य तम्। निपुणम् = विचारपूर्वकम्। पर्यचेष्ट = परिचितवान्।

रित नेत्रों से उन्हें (शिवाजी को) भस्म कर देने की इच्छा रखने वाले यवन ने शेर की तरह गरजते हुए, 'अरे कम्बख्त' तेरी मौत खुदा ने शाइस्ता खाँ के लड़के के हाथों ही लिखी है, इसे सब लोग जाहिर देख लें', यह कहते हुए, बर्छी तान ली। उस बर्छी को काटने के लिये तलवार सँभालते हुए ही शिवाजी ने, किसी के द्वारा पृथ्वी पर लटक कर छुरे से फाड़े जा रहे और काँपते हुए अंगों वाले अपने शत्रु को देखा।

अपने ऊपर आई हुई विपत्ति को दूर करने वाले योद्धा के उठकर खड़े होने पर, उसके शत्रु (यवन) के रक्त से रञ्जित दोनों हाथ और बीरबहूटियों की कान्ति को प्रकट कर रहे रक्त बिन्दुओं के समूह से व्याप्त कवच को अच्छी प्रकार देखकर शिवाजी ने पहचान लिया कि वह रघुवीर है।

तदनन्तर, 'शाबाश, रघुवीर! शाबाश! मैं तुम्हारे इस वीरता के कार्य

ज्जिगमिषति; तावदकस्मादट्टालिकातो भटानां विंशतिरिव सोत्फालं शिवस्य परितः समापतत् ।

शिवस्तु चन्द्रहास–चालने अद्वितीय इति झटिति केषाञ्चिदविहितोत्फालानामस्पृष्टतलानां गगन एवोदरं सविदरमकार्षीत् । परेषां परिपत्योत्तिष्ठासतामेव शिरोधरामशिरोधरां व्यधित । अन्येषां मेदोमांस–पिच्छिल–कर्दम-चलितान् चरणानसञ्चरणानकृत, इतरेषां च खड्गोत्क्षेपणोत्क्षिप्तान् करान् निजासि-वृक्ण-बाहुमूलानुदक्षैप्सीत् ।

जिगमिषति = गन्तुमिच्छति । **विंशतिरिव** = प्रायो विंशतिसङ्ख्याकाः । अपरिगणितत्वादिवः । **सोत्फालम्** = सकूर्दनम् ।

चन्द्रहासचालने = असिमारणे । **अस्पृष्टतलानाम्**=भूतलमनुपेयुषाम् । **गगन एव** = नभस्येव । **विदरम्** = विदीर्णम् । **परिपत्य**=ऊर्ध्वाद् भूमिमागत्य । **उत्तिष्ठासताम्** = उत्थातुमिच्छताम् । **शिरोधराम्** = ग्रीवाम् । **अशिरोधराम्** = शिरोधारणकर्मरहिताम्, खण्डितकण्ठामिति यावत् । **व्यधित** = अकार्षीत् । मेदोमांसपिच्छिले कर्दमे **चलितान्** = स्खलितान् । **चरणान्** = पदः, "पदङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः । **असञ्चरणान्** = गन्तुमनर्हान् । **खड्गोत्क्षेपणाय**=करवालसञ्चालनाय, **उत्क्षिप्तान्** = उत्थापितान् । **निजासिना, वृक्णम्** = खण्डितम्, बाहुमूलं येषां तान् । **उदक्षैप्सीत्** = उत्क्षिप्तवान् ।

को कभी नहीं भूलूँगा', इतना कह कर शिवाजी ने प्रणाम कर रहे रघुवीर की पीठ का स्पर्श कर पुनः ज्यों ही आगे बढ़ना चाहा, तब तक एकाएक लगभग बीस सैनिकों ने अट्टालिका से कूद कर उन्हें चारों ओर से घेर लिया ।

शिवाजी तलवार चलाने में अप्रतिम थे । अतः उन्होंने शीघ्रता से कई ऐसे यवन सैनिकों के, जो अभी कूदे भी नहीं थे, और पृथ्वी का स्पर्श भी नहीं कर सकते थे, उनके पेट आकाश में ही चीर डाले; कूद कर उठने की चेष्टा कर रहे अन्य यवन सैनिकों की शिरोधरा (गर्दन) को अशिरोधरा (शिर से रहित) बना दिया; कुछ अन्य यवन सैनिकों के मज्जा और मांस से पिच्छिल कीचड़ में चलने वाले चरणों को चलने फिरने के अयोग्य कर दिया; और अन्य यवन सैनिकों के तलवार चलाने के लिए उठे हुए हाथों को अपनी तलवार से

क्रमतश्च रघुवीरोऽपि द्वित्रानपातयन् । तस्मिन् समिद्धक्रोधाः पञ्चषा युगपदेव परितः समापतन् यवन-भटाः । तं चाभिमन्युमिव महारथै-राक्रान्तमालोक्य सगर्जनं चन्द्रहासचक्रेणेव समावृतः समापतत् शिववीरः । चन्द्रहास-चालन-चातुरी-महिम्ना च खड्गेनैव तेषा-माघातान् प्रतिरुन्धन्, तेषु बहून् यम-सदनमनैषीत् । तावदन्येऽपि महाराष्ट्राः परितः श्येना इवाऽभिपत्य काकोलाऽनिवातिलोलांस्तान् दोला-योग्यानकार्षुः । एवं हतेषु बहुषु, परेषु पतितेषु, आर्तनादेन प्रासादं ध्वनयत्सु, उपद्रवः प्रशशाम । पुनरग्रेऽवरोधमवरोद्धुं प्रचचाल

अपातयत्=अपोथयत् । तस्मिन्=रघुवीरे । समिद्धक्रोधाः=विवृद्धकोपाः । अभिमन्युमिव=उत्तरागर्भजमर्जुनसूनुमिवेत्युपमा । महारथैः=अतिबलैः । य एकल एव हस्त्यश्वरथपादातैरनेकसङ्ख्यैर्योद्धुं शक्नोति स महारथ इति पारिभाषिकाः । चन्द्रहासचक्रेणेव=करवालसहस्रेणेव । चन्द्रहासचालने या चातुरी=कुशलता । तन्महिम्ना=तत्प्रभावेण । श्येना इव=पक्षिमारका इवेत्युपमा । काकोलान्=कृष्णकाकान् । 'डोम कौआ" इति हिन्दी । अति-लोलान्=परमचञ्चलान् । दोलायाः=शिविकायाः, "डोली" इति हिन्दी, योग्यान् । स्वयंचलितुमसमर्थत्वादिति भावः । आर्तनादः=पीडितानां क्रन्दन-

---

कन्धे पर से ही काट डाला । रघुवीर सिंह ने भी दो-तीन यवनों को एक-एक करके क्रम से गिरा दिया । पाँच-छः अत्यन्त क्रुद्ध यवन सैनिक उसके ऊपर चारों ओर से एक साथ ही टूट पड़े । रघुवीर को महारथियों से घिरे हुए अभिमन्यु की भाँति यवन सैनिकों से घिरा हुआ देख कर, गरजते हुए तलवारों के समूह से घिरे हुए से शिवाजी कूद पड़े, और उन्होंने तलवार चलाने की अपनी निपुणता की महिमा से उन यवन सैनिकों के आघातों को अपनी तलवार से ही रोकते हुए उनमें से बहुतों को यमराज के घर भेज दिया । तब तक अन्य मराठे सैनिक भी चारों ओर से बाज की तरह झपट पड़े, और उन्होंने काकोल (डोम कौओं) की भाँति अति चञ्चल यवन सैनिकों को डोली में चढ़ कर चलने योग्य कर दिया । इस प्रकार बहुत से यवन सैनिकों के मार डाले जाने और अन्य यवन सैनिकों के गिर कर करुण चीत्कार से महल को गुँजा देने के बाद उपद्रव शान्त

ध्वनिः। महाराष्ट्रमण्डलीमण्डनः। तत्र रुद्धान्यरराणि पादाघातैः प्रासनिपातैश्च भित्त्वा, "हर हर महादेव" इति गर्ज्जनैरन्तर्निविश्याऽपश्यत्–यद् गवाक्षिकान्तः सर्वाः स्त्रियः पूर्वमुत्तार्य पश्चात् सेनानीरप्युत्तरतीति। शिवराजस्यैकेन चरेण खड्गः क्षिप्तः। तस्य च प्रसारित–करस्याऽङ्गुलिद्वयमेव च्छिन्नम्, तावत् सोत्फालमन्धकार–महोदधौ निमग्नः।

इतस्तु दानवा इव मानवान् महाराष्ट्रा म्लेच्छान् घ्नन्तीत्यालोक्य व्यर्थहत्या शिवेन निवारिता। "विजितं सनातनधर्मेण, विजितं महाराष्ट्रराजेन" इति महानभूज्जयध्वनिः।

"सम्प्रति साधनीयम्, पलायितः शास्तिखानो नाऽऽयास्यति सम्मुखमिति क्षिप्रं सिंहदुर्ग आसादनीयः"–इति शिवेनाऽऽज्ञप्तास्त्यक्त–

उपद्रवः=हिंसादिरूपः, अवरोधम्=अन्तःपुरम्। महाराष्ट्रमण्डलीमण्डनः=मरहट्टसमुदायभूषणः। अरराणि=कपाटानि। "कपाटमररं तुल्ये" इत्यमरः। प्रासनिपातैः=भल्लपातनैः। गवाक्षिकातः=वातायनिकातः। स्त्रियः=नारीः। चरेण=दूतेन। तस्य=सेनापतेः शास्तिखानस्य। सोत्फालम्=सकूर्दनम्। अन्धकारमहोदधौ=तमोवारिधौ। दानवाः=दनुतनया राक्षसाः। इवेनोपमा। व्यर्थहत्या=अनावश्यकमारणम्। जयध्वनिः=जयशब्दः।

साधितम्=विहितम्। साधनीयम्=कार्यम्। आसादनीयः=प्राप्तव्यः,

हो गया, और मराठों के दल के शृंगार शिवाजी हरम को घेरने के लिए आगे बढ़े। वहाँ वन्द किवाड़ों को पैरों तथा भालों के प्रहार से तोड़कर 'हर हर महादेव' की गर्जना करते हुए भीतर प्रवेश कर शिवाजी ने देखा कि पहले सभी स्त्रियों को खिड़की से उतार कर वाद में उसी खिड़की से स्वयं सेनापति शाइस्ता खाँ भी उतर रहा है। शिवाजी के एक गुप्तचर ने तलवार फेंककर मारी। शाइस्ता खाँ के हाथ फैले हुए थे उसकी दो उँगलियाँ ही कटीं, तव तक वह कूद कर अन्धकार के समुद्र में लीन हो गया।

इधर शिवाजी ने यह देख कर कि मराठे यवनों को उसी प्रकार मार रहे हैं, जैसे दानव मनुष्यों को मारते हैं, निरर्थक हिंसा रोक दी, और 'सनातन धर्म की विजय हुई! शिवाजी की विजय हुई!' का जयघोप होने लगा।

"अब चलना चाहिये, शाइस्ता खाँ भाग गया, अब सामने नहीं आयेगा,

रुधिराऽऽरक्त–वसनाः, प्रासाद–नागदन्तिकावलम्बितैरेव बहुभिर्वसनै-र्वेष्टिताः, कतिचन प्रत्यर्थि-परिचारक-वसनपट्टिका-शस्त्रैरालोचकानां यवन-भृत्य-भ्रममुत्पादयन्तः, निर्भयाः सर्वेऽपि घोरान्धकारायां यामिन्यां प्रचलिताः। निर्विघ्नं पुण्यनगराद् बहिरागत्य, यथासङ्केत-माक्रमणेन विजित-बाह्य-सेना-सन्निवेशं सम्यगुन्मुद्रित-सर्वगोपुरं संस्था-पित-निज-यामिक-द्वार-रक्षकं स्वर्णदेव-गौरसिंहाधिष्ठितं बलं साक्षात्-कुर्वन्तः, गव्यूतिं यावदन्धतमस एवोच्चावचं पाणिन्धममध्वानं व्यतीत्य,

---

त्यक्तानि=दूरीकृतानि, रुधिरारक्तानि=लोहिताप्लुतानि, वसनानि यैस्ते। प्रासादस्य=हर्म्यस्य, नागदन्तिकासु=कीलिकासु, अवलम्बितैः=स्थापितैः, वेष्टिताः=परिहितवसनाः, प्रत्यर्थिनः=शत्रोः, परिचारकाणाम्=भृत्यानाम्, वसनपट्टिकाशस्त्रैः। आलोचकानाम्=द्रष्टॄणाम्। यवनभृत्यभ्रमम्=म्लेच्छ-परिचारकभ्रान्तिम्। यामिन्याम्=रात्रौ। निर्विघ्नम्=निष्प्रत्यूहम्। विजितबाह्यसेनासन्निवेशम्=स्वायत्तीकृतबहिर्गतबलशिविरम्। उन्मुद्रित-सर्वगोपुरम्=उद्घाटितनिखिलपुरद्वारम्। बलम्=सेनाम्। अन्धतमसे= गाढान्धकारे। उच्चावचम्=निम्नोन्नतम्। पाणयो ध्मायन्ते सर्पाद्यपनोदाय

अतः शीघ्र ही सिंहदुर्ग पहुँच जाना चाहिए" इस प्रकार शिवाजी की आज्ञा पाकर योद्धाओं ने अपने रक्तरञ्जित वस्त्रों को उतार कर, महल की खूँटियों पर टँगे हुए अनेक वस्त्रों को लपेट (पहन) लिया, कुछ योद्धा शाइस्ता खाँ के परि-चारकों के वस्त्रों, कमरबन्दों और शस्त्रों को धारण कर दर्शकों में यवनों के सेवक होने का भ्रम पैदा करते हुए निर्भीक होकर घोर अन्धकारवाली रात्रि में चल दिए, और विना किसी विघ्न के पूना नगर से बाहर आकर स्वर्णदेव तथा गौर-सिंह द्वारा संरक्षित सेना से मिले। स्वर्णदेव गौरसिंह की सेनाओं ने पूर्वनिश्चित संकेत के अनुसार ही आक्रमण कर शाइस्ता खाँ की बाहरी (नगर से बाहर तैनात) सेना के शिविर पर धावा बोलकर उसे जीत लिया था, और पूना नगर के सारे बाहरी दरवाजे खोल रखे थे, और उन दरवाजों पर अपने ही पहरेदार तथा दरवान नियुक्त कर दिए थे। तदनन्तर वे मराठा योद्धा दो कोस तक घने

ततः शतशो दीपान् संज्वल्य, पुण्यनगरस्थैः कान्दिशीकैः पराजित-प्रत्यर्थिभिः प्रजाभिश्च वीक्ष्यमाणाः कुशलेन सिंहदुर्गमारुरुहुः।

इति सप्तमो निश्वासः

यस्मिंस्तम्, पाणिन्धमम्। अध्वानम्=मार्गम्। पाणिन्धमपदार्थकुक्षौ नाध्व-प्रवेशो योगमात्रार्थप्रवृत्तिनिमित्तकत्वात्। कान्दिशीकैः=भीतैः। पराजितैः=परास्तैः, प्रत्यर्थिभिः=शत्रुभिः। प्रजाभिः, सानन्दाभिरति शेषः। वीक्ष्य-माणाः=दृश्यमानाः। कुशलेन=क्षेमेण। आरुरुहुः=आरूढवन्तः।

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्यां सप्तमनिश्वासविवरणम्

अंधेरे में ही टटोल-टटोल कर चलते हुए ऊँचे-नीचे रास्ते को पार कर, पूना नगर में स्थित युद्ध से भागे हुए, हारे हुए शत्रुओं द्वारा सैकड़ों दीपक जलाकर और पूना की प्रजा द्वारा देखे जाते हुए सकुशल सिंह दुर्ग पर चढ़ गये।

शिवराजविजय का सातवाँ निश्वास समाप्त

॥ श्रीः ॥

अष्टमो निश्वासः

"वेधा द्वेधा भ्रमं चक्रे कान्तासु कनकेषु च।
तासु तेष्वप्यनासक्तः साक्षाद् भर्गो नराकृतिः॥"

—कुवलयानन्दे

तोरणदुर्गे तु रसनारी काभिश्चन मूर्छितप्रायाभिरुत्थाप्य समानीताभिः पुनः प्राप्तसंज्ञाभिः चेटीभिः सहिता, मञ्चासन्दी-पल्यङ्क-

---

अष्टमेऽवरङ्गजीवतनयाया रसनार्याः श्रीशिववीरेऽनुरागं विवाहेच्छां च वर्णयिष्यति कविः, तत्र च नायकोदात्तत्वरक्षणाय सत्यमेव श्रीशिववीरानङ्गीकरणं प्रदर्शयिष्यति, तदेतदुपक्षेप्तुं कुवलयानन्दीयं पद्यमुपक्षिपति—वेधा इत्यादि। वेधाः=जगन्निर्माता। द्वेधा=द्वाभ्यां प्रकाराभ्याम्। भ्रमं चक्रे=भ्रान्तिमुत्पादयामास। कान्तासु=आपाततो रमणीयासु रमणीषु। कनकेषु=धत्तूरविषायमाणेषु हिरण्येषु च। तासु=रमणीषु। तेषु=कनकेषु। अपिः समुच्चये। अनासक्तः=असंलग्नः। नराकृतिः=मानवदेहधारी। साक्षात्=प्रत्यक्षतां गतः, भर्जयति कामादीनिति भर्गः=शङ्करः। नोभयोरणुतरोपि भेद आकृतिविभिन्नत्वातिरिक्त इति तत्त्वम्। रूपकालङ्कारः।

तोरणदुर्गे तु रसनारी न वेत्ति स्मेति सम्बन्धः। मूर्छितप्रायाभिः=प्रायो गतचैतन्याभिः। प्राप्तसंज्ञाभिः=लब्धचैतन्याभिः। मञ्चः=लघुसुखा-

---

विधाता ने दो प्रकार से भ्रम की रचना की है; एक तो सुन्दरियों में तथा दूसरे सुवर्ण में। इन दोनों में अनासक्त रहनेवाला व्यक्ति मनुष्य के रूप में शरीरधारी साक्षात् शंकर ही है!

तोरणदुर्ग में लगभग मूर्च्छित हो जाने पर उठाकर लाई गई और फिर होश में आ गई अपनी कुछ परिचारिकाओं सहित राजमहल की मचिया

वितान-तूलिकोपबर्हादि-सकल-परिच्छद-परिष्कृतायाम् अतिरम्य-हर्म्याट्टालिकायामवरुद्धा 'क्वाऽऽयाता ? केन संयता ? किं भावि ?' इति किमपि न वेत्ति स्म। तत्परिचर्य्यायामितरा महाराष्ट्र-देशीया अपि दास्य आसन्, किन्तु ता अपि रसनार्या बहुशः प्रलोभिता अपि सप्रश्रयं पृष्टा अपि तेषु तेषु विषयेषु वाचमेव न यच्छन्ति स्म।

रसनारी हि नित्यं प्रातर्निर्मलं कोष्णं यूथिका-मल्लिका-चन्दना-ऽऽदिवासितम् आनीय स्थापितं स्नानीयं पानीयम्, कर्पूरकाश्मीर-

सनिका, "मंचिया" इति हिन्दी। आसन्दी = "कुर्सी" इति ख्याता, पल्यङ्कः = पर्यङ्कः, वितानम् = उल्लोचः, "चन्दोवा" इति हिन्दी। तूलिका = तूल-विष्टरम्, उपबर्हः = उपधानम्, एवमादिभिः सकलपरिच्छदैः = समस्तावश्यक-वस्तुजातैः, 'परिच्छदो नृपार्हेऽर्थे' इत्यमरः। परिष्कृतायाम् = भूषिता-याम्। अतिरम्यायाम् = अतिहृद्यायाम्। हर्म्याट्टालिकायाम् = प्रासादाट्टे। अवरुद्धा = निगृहीता। संयता = बद्धा, वन्दीकृतेति यावत्। तत्परिचर्य्या-याम् = तत्सेवायाम्। दास्यः = भृत्याः। प्रलोभिताः = गर्द्धिताः। सप्रश्रयम् = सविनयम्। तेषु विषयेषु = प्रश्नगोचरेषु। यच्छन्ति स्म = ददति स्म। मौनिन्योऽवर्तन्तेति भावः।

निर्मलम् = पवित्रम्, कोष्णम् = ईषदुष्णम्। शिरोऽतिरिक्तस्य शरीरस्य पावनाय कोष्णमेव वारि भवत्युपयुक्तम्, रोमच्छिद्रप्रविष्टमलापकर्षकत्वात्। शिरसो धावनं तु शीतलवारिणेति वैद्यकग्रन्थेषु स्फुटम्। यूथिकादिभिः वासितम्

कुर्सी, पलँग, चँदोवा, तोशक, रजाई, मसनद इत्यादि समस्त वस्तुओं से सजाई गई अत्यन्त रमणीक अट्टालिका में बन्दी वनाकर रखी गई रोशन आरा, वह कहाँ आ गई है ? उसे किसने वन्दी वनाया है ? और अव क्या होने वाला है ? इत्यादि कुछ भी नहीं जानती थी। उसकी सेवा में कुछ अन्य महाराष्ट्रदेश की दासियाँ थीं, परन्तु वे भी उसके द्वारा अनेक बार प्रलोभन देने तथा विनम्रतापूर्वक पूछने पर भी उन विषयों का उत्तर ही नहीं देती थीं।

रोशन आरा प्रातःकाल निर्मल, कुछ उष्ण, जूही, चमेली चन्दन इत्यादि से सुवासितकर स्नान के लिये लाकर रखा गया जल, कपूर, केसर, तथा चन्दन

पाटीर-क्षोद-रचितमुद्वर्त्तनं च रजत-पात्रेषु विन्यस्तम्, पटवास-वासितानि सुसूक्ष्माणि सौवर्ण-प्रान्तानि नानावर्ण-कौशेय-कुसुम–रचना–विचित्रितानि वासांसि प्रसाधनीं दर्पणं धूपं सिन्दूरं कुसुममालाः अङ्गरागं चूडाबन्धं च प्रस्तुतमेवाऽवलोकयति स्म। विविधासु दासीषु सतैलाभ्यङ्गं सोत्सादनमर्दनं सकेशमार्जनं च स्नानसेवां विहितवतीषु, धारितकौशेया द्राक्षा-द्रव-दाडिम्ब-दुग्धादिमहामधुर-महोपस्कारमयीम्

=सुरभीकृतम्। आनीय=सम्प्रापय्य। स्थापितम्=निहितम्। स्नानीयम् =स्नानयोग्यम्। कर्पूरः=हिमवालुका, काश्मीरम्=कश्मीरदेशोद्भवं केसरम्।

"सहोदराः कुङ्कुमकेसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासाः।
न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः॥"

इति विह्लणः। पाटीरम्=चन्दनम्। एतेषां क्षोदेन=चूर्णेन, रचितम् =निर्मितम्। उद्वर्त्तनम्=देहनिर्मलीकरणद्रव्यम्, "उवटन" इति हिन्दी। रजतपात्रेषु=रौप्यभाजनेषु। विन्यस्तम्=स्थापितम्। पटवासैः=वसनवासकैः कुङ्कुमादिचूर्णविशेषैः। वासितानि=कृतसुगन्धीनि। सौवर्णप्रान्तानि =सुवर्णविकारतन्तुनिर्मितदशानि। "सुनहली जरी की किनारी" इति हिन्दी। नानावर्णानाम्=अनेकरङ्गाणाम्, कौशेयकुसुमानाम्=पट्टसूत्ररचितपुष्पाणाम्, रचनया, विचित्राणि=दर्शनीयानि, प्रसाधनीम्=कङ्कतिकाम्, "कंघी" इति हिन्दी। दर्पणम्=आदर्शम्। धूपम्=केशवासकम्। अङ्गरागम्= शरीरानुलेपनद्रव्यम्। चूडाबन्धनम्=जूटिकाबन्धनम्। सतैलाभ्यङ्गम्= तैलमर्दनपूर्वकम्। सोत्सादनमर्दनम्=सोद्वर्त्तनलेपनम्। "उद्वर्त्तनोत्सादने द्वे" इत्यमरः। सकेशमार्जनम्=सकचक्षालनम्।

धारितकौशेयाः=परिहितपट्टवस्त्राः। द्राक्षाद्रवः=गोस्तनीरसः, दाडिम्बम्

के चूर्ण से बनाया गया और चाँदी के बर्तन में रखा गया उवटन, इत्र से सुगन्धित, अत्यन्त सूक्ष्म, सुनहले किनारे वाले, विविध रंग के रेशमी फूलों की कढ़ाई से चित्रित वस्त्र; कंघी, दर्पण, धूप, सिन्दूर, पुष्पमालाएँ, अङ्गराग तथा चूडाबन्ध आदि प्रस्तुत ही पाती थी। अनेक दासियाँ तेल की मालिश करके, उवटन मलकर और बालों को साफ कर उसे नहलाती थीं। तदनन्तर

आहार–सामग्रीमुपलभते स्म। क्षणे क्षणे जातीपत्र–केसर–कर्पूर–लवङ्गैला—सुवासितानि ताम्बूलानि, प्रहरे प्रहरे च पाटल-सुगन्धि-ताम्रक-पिष्टकाऽङ्गारक – परिपूर्ण–साच्छादनक–हाटकामत्रिकाऽलङ्कृ-तोर्ध्वभागं केतक–तोय–पूरित–पयःपात्र–परि–लसित–मूलं काञ्चन—चञ्चू–चमत्कृत–प्रलम्ब–नलिका–संवलितं धूमपानयन्त्रम्,

=दाडिमीफलम्, दुग्धम्=पयः, एवमादिका, महामधुरा=अतिमिष्टा, महोपस्कारमयी=विशिष्टोपकरणयुता, ताम्। आहारसामग्रीम्= भोजनपदार्थम्। जातीपत्रम्=जातीदलम्, केसरः=काश्मीरजः, कर्पूरः= हिमवालुका, लवङ्गम्=देवकुसुमम्, एला=चन्द्रवाला, आभिः सुवा-सितानि=सुरभीणि। पाटलसुगन्धि=आशुव्रीहिसुरभि, यत् ताम्रकम्= "तमाखू" इति ख्यातम्, तस्य पिष्टकस्य="टिकिया" इति ख्यातस्य, अङ्गार-केण='अङ्गार' इति हिन्दीप्रसिद्धेन। परिपूर्णया=युतया, साच्छाद-निकया=सप्रावरणिकया, "ढकी हुई" इति हिन्दी। हाटकामत्रिकया=सुवर्ण-निर्मितधूमपानसाधनिकया, 'सोने की चिलम" इति हिन्दी। अलङ्कृतः=भूषितः, ऊर्ध्वभागो यस्य तत्। केतकतोयेन="केवडा" इति प्रसिद्धपुष्पवासितेन वारिणा, पूरितेन=भरितेन,पयःपात्रेण=जलपात्रेण, परिलसितम्=अतिशोभितम्, मूलं यस्य तत्। काञ्चनचञ्च्वा=सुवर्णनिर्मिताग्रभागेन, चमत्कृतया=सुस-ज्जितया, प्रलम्बया=सुदीर्घया, नलिकया=धूमाकर्षिकया, "हुक्के की नली" इति हिन्दी। संवलितम्=विशिष्टम्। धूमपानयन्त्रम्="हुक्का" इति प्रसिद्धम्।

वह रेशमी वस्त्र पहन कर, अँगूर के रस, अनार, दूध इत्यादि अत्यन्त मधुर विविध पदार्थों से युक्त भोजन सामग्री प्रस्तुत पाती थी। क्षण-क्षण पर जातीपत्र, केसर, कर्पूर, लवङ्ग, इलायची से सुगन्धित ताम्बूल ; घड़ी-घड़ी पर गुलाब की सुगन्ध वाली तम्बाकू की टिकिया तथा अङ्गारों से भरी, ढक्कन सहित सोने की चिलम से अलङ्कृत ऊर्ध्वभाग वाला, केवड़े के जल से पूर्ण जल-पात्र से सुशोभित अधोभाग वाला, सोने के अग्रभागवाली नली के कारण चमकती

सर्वदा च व्यजन-चामर-पतद्ग्राह-हस्ता दास्यः इत्यखिलं सुसज्ज-मेवाऽवलोकयति स्म।

क एवमाद्रियते ? कस्य कक्षे आपतिता ? कोऽधुनाऽपि मर्यादां न भनक्ति ? इति तया किमपि ज्ञातुं न शक्यते स्म।

पुरुषः कोऽपि निकट एव नाऽऽयाति। निज-चेटी-द्वारा कथं कथ-मपि पृष्टश्च मूक इव न किमपि वक्ति, इति विचित्रं चरित्रं पश्यन्ती 'विलक्षणमिदं कारागारम्, अलौकिका अत्रत्या मानवाः' इति मनस्येव तर्कवितर्कैश्चिर–चिन्ता–निमग्ना अभूत्।

अथैकदाऽट्टालिकायां पर्यटन्त्या, दक्षिणस्यां सुदूरं विस्तृतानां कानना-

---

व्यजन-चामर-पतद्ग्राहा हस्ते यासां ताः। पतद्ग्राहः=पतद्ग्रहः, "पतद्ग्राहः पतद्ग्रहः" इत्यमरः। "पीकदान" इति हिन्दी। सुसज्जम्=सन्नद्धम्। अवलो-कयति स्म=अपश्यत्।

आद्रियते=आदरं करोति। कक्षे=बाहुमूले। सर्वविधाधिकार इति यावत्। मर्यादाम्=सीमानम्, परदारदूषणरूपाम्। न भनक्ति=न त्रोटयति। मूक इव=वाक्शक्तिशून्य इव। विलक्षणम्=विचित्रम्, अलौकिकाः=दिव्याः। असाधारणा इति यावत्।

'अथैकदाऽट्टालिकायां पर्यटन्त्या बहूनां पादध्वनिरिवाश्रावि' इति सम्बन्धः।

हुई लम्बी निगाली (नली) से युक्त हुक्का तथा हर समय पंखा, चामर तथा पीकदान लिए हुए दासियाँ, सब तैयार ही देखती (पाती) थी।

इस प्रकार मेरा सम्मान कौन कर रहा है ? मैं किसके कक्ष में पहुँच गई हूँ ? वह कौन जो अब भी मर्यादा को नहीं तोड़ रहा है ? इत्यादि कुछ भी वह नहीं जान सकी थी।

कोई पुरुष तो उसके पास ही नहीं जा पाता था, और उसकी दासियों द्वारा किसी प्रकार पूछने पर भी कोई कुछ भी नहीं बोलता था, मानो सभी मूक हों। यह अद्भुत आचरण देखती हुई, "यह कारागार विलक्षण है, यहाँ के मनुष्य अलौकिक हैं" इस प्रकार मन ही मन तर्क-वितर्क करती हुई रोशनआरा बहुत देर तक चिन्ता में डूबी रहती थी।

नाम्, अभ्रंलिहानां शैल-शिखराणाम्, कालिन्दी-सलिल-सौन्दर्य्य-विजित्वराऽतिहरित-वनौषधि-वृन्द-व्याप्तानामुच्चावच-तलाऽन्तः-स्रवत्-प्रस्रवण-स्रोतस्समीप-नरीनृत्यमान-मेघनादानुलासि-लास्य-ललितानामुपत्यकानाम्, द्रुमाद् द्रुमम्, शाखातः शाखाम्, गण्ड-शैलाद् गण्ड-शैलम्, दन्तकाद् दन्तकम्, पादाच्च पादम्, सपत्र-कम्पनम्, सचञ्चु-चाञ्चल्यम्, सग्रीवाभङ्गम्, सपक्षति-कण्डूयनम्, सतनूरुह-स्फुरणम्, सकूजनं च प्रडीनोड्डीन-सण्डीनैरुड्डीय गच्छतां कल-

सुदूरम्=अतिविस्तीर्णप्रदेशम्। अभ्रंलिहानाम्=मेघस्पर्शकारिणाम्। अत्युच्चानामिति यावत्। शैलशिखराणाम्=पर्वतशृङ्गाणाम्। कालिन्दी-सलिल-सौन्दर्य-विजित्वरेण=यमुनाम्भोलावण्यविजयकारिणा, अति-हरितेन=अतितरां हरिद्वर्णेन, वनौषधिवृन्देन व्याप्तानाम्, उच्चावच-तलानाम्=निम्नोन्नतभूभागानाम्, अन्तः स्रवताम्=प्रवहताम्, प्रस्रवणानाम्=निर्झराणाम्, स्रोतसाम्=प्रवाहाणाम्, समीपे=अन्तिके, नरीनृत्यमानानाम्=भृशं नृत्यताम्, मेघनादानुलासिनाम्=मयूराणाम्, "मेघनादानुलास्यपि" इत्यमरः। लास्यैः=नर्त्तनैः, ललितानाम्=मनोहराणाम्। दन्तकात्=अद्रिकटकात्। "दन्तोऽद्रिकटके कुञ्जे दशनेऽथौषधौ स्त्रियामि"ति। पादात्=प्रत्यन्तपर्वतात्। सपत्र-कम्पनम्=पक्षधूननसहितम्। सचञ्चु-चाञ्चल्यम्=सत्रोटिचापल्यम्। सपक्षतिकण्डूयनम्=सपक्षमूल-खर्जनम्। सतनूरुह-स्फुरणम्=सरोमहषम्। सकूजनम्=सशब्दम्। प्रडीनोड्डीन-

तदनन्तर एक बार अटारी पर टहलती हुई, दक्षिण दिशा में दूर तक फैले हुए जङ्गलों, गगनचुम्बी पर्वतशृङ्गों यमुना के जल के सौन्दर्य को पराजित करने वाली अत्यन्त हरी भरी जङ्गली औषधियों के समूह से व्याप्त ऊँचे-नीचे धरातलों के बीच बहने वाले झरनों के प्रवाहों के समीप नृत्य कर रहे मयूरों के नर्तन से मनोहर लगनेवाली उपत्यकाओं, एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर, एक डाली से दूसरी डाली पर, एक चट्टान से दूसरी चट्टान पर, एक दन्तक (पहाड़ के बीच से निकले टेढ़े पत्थर) से दूसरे दन्तक पर और एक तलहटी से दूसरी तलहटी पर, पङ्खों को हिलाते हुए, चोंच चलाते हुए, गर्दन टेढ़ी करते हुए, डैनों को खुजलाते हुए, रोमाञ्चित होते हुए, तथा कूजते हुए, प्रडीन, उड्डीन

विङ्कानाम्, कर्करेटूनाम् किकीदिवीनाम्, कपोतानाम्, कोकानाम्, काकानाम्, कीराणाम्, क्रौञ्चानाम्, कुरराणां च शोभाः पश्यन्त्या अकस्मादश्रावि पादध्वनिरिव बहूनाम्।

झटिति तत आगत्य द्वारोपरिस्थ-गवाक्षाच्चाऽऽलोकितवती—यदेक ईषच्छ्यामलः सुन्दरो विधृत-मौक्तिक–माणिक्य–मरकतगुच्छाङ्कितोष्णीषः सौवर्ण-सूत्र-रचित-कञ्चुको जाम्बूनद–कौशेय-कुसुम-

---

सण्डीनैः=पक्षिणां गतिविशेषैः। "प्रडीनोड्डीनसण्डीनान्येताः खगगतिक्रियाः" इत्यमरः। कलविङ्कानाम्=चटकानाम्। कर्करेटूनाम्=करेटूनाम्। "कर्करेटुः करेटुः स्यादि"इत्यमरः। किकीदिवीनाम्=चाषाणाम्। "अथ चाषः किकीदिविरि"त्यमरः। कपोतानाम्=पारावतानाम्। कोकानाम्=चक्रवाकाणाम्। काकानाम्=वायसानाम्। कीराणाम्=शुकानाम्। क्रौञ्चानाम्=चक्रवाकविशेषाणाम्। कुरराणाम्=उत्क्रोशकारिणां पक्षिणाम्। पादध्वनिः=चरणशब्दः। बहूनामिव=अनेकेषामिव। अदृश्यत्वादनुमेयत्वं बहुत्वस्येतीवशब्दः।

झटिति=त्वरितम्। द्वारोपरिस्थगवाक्षात्=निर्गममार्गोपरिविद्यमानाद् वातायनात्। ईषत् श्यामलः=किञ्चित् कृष्णवर्णः। विधृतम्=शिरसि स्थापितम्, मौक्तिकमाणिक्यमरकतगुच्छैः अङ्कितम्; उष्णीषम्=शिरोवेष्टनम्, येन सः। मौक्तिकम्=हस्त्यादिलब्धमणिः। माणिक्यम्=खनिप्राप्तमणिः। मरकतस्य मणिविशेषत्वेऽपि ब्राह्मणवशिष्ठन्यायेन पृथगुक्तिः। सौवर्णसूत्ररचितकञ्चुकः=हैरण्यतन्तुनिर्मितचोलकः। जाम्बूनदैः=सुवर्णरचितैः, कौशेयैः=

और सण्डीन गतियों से उड़कर जाते हुए गौरैया, कर्करेटु, नीलकण्ठ, कबूतर, चक्रवाक, काक, शुक, क्रौञ्च, और कुरर पक्षियों की शोभा देखती हुई रोशनआरा ने अकस्मात् अनेक व्यक्तियों के आने की पदध्वनि सुनी।

रोशन आरा ने शीघ्रतापूर्वक वहाँ से आकर द्वार की ऊपरवाली खिड़की से देखा कि एक साँवला, सुन्दर, मोती, मानिक और मरकत मणियों के गुच्छों से अलंकृत पगड़ी धारण किए, सुनहले सूत्रों से निर्मित कञ्चुक (कुर्ता)

चित्राऽश्चित-प्रावार-परिलसित-वामस्कन्धो महार्ह-वज्रक-प्रचया-ऽऽकलितकोशस्थ-चञ्चच्चन्द्रहासाऽवलम्बित-कटि-तटो मरकतमणि-महामाला–लसित–गल–कमनीयो युवाऽऽगच्छतीति । तस्याग्रे पश्चात् पार्श्वयोश्च समागच्छतः शतशो भुशुण्डिका-तोमर-पट्टिश-सौवर्ण-दण्ड-कलितकरान् भटान्; अपरांश्च च्छत्र-चामर-वेत्र-व्यजन-हस्ता-ननुचरान् आलोक्य निश्चितमेष एवाऽध्यक्षो दुर्गस्यैतस्य, एष एव च सम्बोभोति परिवृढोऽस्मल्लुण्ठकगणस्येति मन्यमाना, किञ्चिद् भीतेव, स्तब्धेव, खिन्नेव, क्षुभितेव, उद्विग्नेव च सा समवित्त ।

पट्टसूत्ररचितैश्च, कुसुमचित्रैः=पुष्पाकृतिनिर्माणैः, अञ्चितेन=भूषितेन, प्रावा-रेण=उत्तरासङ्गेन, "द्वौ प्रावारोत्तरासङ्गौ" इत्यमरः । परिलसितः=शोभितः, वामः=दक्षेतरः, स्कन्धो यस्य सः । महार्हवज्रकप्रचयेन=वहुमूल्यहीरकव्रजेन, आकलिते=युते, कोशे=असिधान्याम्, तिष्ठतीति तथाभूतेन, चञ्चता=चम-त्कुर्वता, चन्द्रहासेन, अवलम्बितम=आश्रितम्, कटितटं यस्य सः । मरकत-मणिमहामालमा लसितेन=मण्डितेन, गलेन कमनीयः=मनोहरः । भुशुण्डिका ="वन्दूक" इति ख्याता, तोमरम्, पट्टिशम्, सौवर्णदण्डाः=हैरण्ययष्टयः, एभिः कलिताः=युक्ताः करा येषां तान् । सम्बोभोति=अतिशयेन भवति । परिवृढः =प्रभुः । "प्रभौ परिवृढः" । अस्माकम्, कर्मणि षष्ठी, लुण्ठकस्य=चोरयितुः, गणस्य=समूहस्य । भीता=भयाक्रान्ता । अन्तिमनिर्णयकर्त्ताऽऽयाति, किमनुष्ठा-स्यतीति विचारेण । स्तब्धा=निश्चेष्टा । खिन्ना=खेदाक्रान्ता । क्षुभिता=

धारण किए, सुवर्णसूत्र तथा रेशम से कढ़े पुष्पाकार वूटों वाली चादर से सुशो-भित वाम स्कन्ध वाला वहुमूल्य हीरों से जड़ी म्यान में रखी हुई चमचमाती तल-वार कमर में लटकाए हुए, मरकत मणियों की लम्वी माला से सुशोभित कण्ठ-वाला युवक आ रहा है । उसके आगे-पीछे और दायें-वायें आते हुए, हाथों में वन्दूक, तोमर, पट्टिश और स्वर्ण दण्ड लिए सैकड़ों सैनिकों तथा छत्र-चामर और पंखा लिये नौकरों को देखकर, निश्चय ही यही व्यक्ति इस दुर्ग का अध्यक्ष है, और वहुत सम्भव है कि यही हम लोगों को लूटने वालों

अथ रसनारी स्वोपवेश-देशं प्रविश्य स्विन्नां गण्डस्थलीं यावत् पटान्तेन परिमार्ष्टि; तावत् प्रतिसीरामुत्क्षिप्य झटिति प्रविश्य शिरो-नमन-पुरःसरमादराचारं विदधदवलोकितः स एव वीरवरः। इयं तम् आदरेङ्गितैः प्रत्यर्च्य, तद्वचन-सुधाधारा-पिपासिताभ्यामिव कर्णाभ्यां परमैकतानता-जडीकृताभ्यामिव नयनाभ्यां चित्रार्पितेवाभूत्। महा-राष्ट्रराजस्तु बद्धकरसम्पुटः समवर्तत। न च विन्दुमपि विसर्गमपि

सञ्चलिता। व्याकुलेति भावः। उद्विग्ना=मानसिकोद्वेगवती। समवित्त= अज्ञासीत्।

स्वोपवेशदेशम्=स्वावासभूमिम्। स्विन्नाम्=चिन्तासञ्जातघर्मजल-वतीम्। गण्डस्थलीम्=कपोलपालिम्। परिमार्ष्टि=प्रोञ्छति। प्रति-सीराम्=यवनिकाम्। "प्रतिसीरा यवनिका स्यात् तिरस्करिणी च सा" इत्यमरः। उत्क्षिप्य=उत्थाप्य। शिरोनमनपुरस्सरम्=मस्तकनतिपूर्वकम्। आदरे-ङ्गितैः=आदरसूचकचेष्टाभिः। तद्वचनसुधाधारापिपासिताभ्यामिव= तदुक्तिपीयूषप्रवाहपानाभिलापुकाभ्यामिव, उत्प्रेक्षा। परमैकतानताजडीकृता-भ्यामिव=अत्यन्तैकाग्रीकृतिनिश्चेष्टीकृताभ्यामिव। "एकतानोऽनन्यवृत्तिरि"-त्यमरः। चित्रार्पितेव=चित्रलिखितेव। बद्धकरसम्पुटः=कृताञ्जलिः।

विन्दुमपि विसर्गमपि=उच्चारयितुमनर्हः केवलो विन्दुरूपोऽनुनासिको

का मुखिया हो, यह समझती हुई रोशन आरा कुछ डर सी गई, और स्तम्भित-सी, उदास सी, व्याकुल सी तथा उद्विग्न सी हो गई।

तदनन्तर रोशन आरा अपने बैठने के कमरे में जाकर, स्वेदयुक्त कपोल-स्थल को पोछ ही रही थी कि चिक हटाकर, शीघ्रता से प्रवेश कर सिर झुका-कर, सम्मान प्रदर्शित करता हुआ वही वीर युवक दिखाई पड़ा। उसे सम्मान सूचक संकेतों से अभिनन्दित कर, उसकी वाणी रूपी अमृत की धारा के पिपासु कर्णों तथा अत्यन्त एकाग्रता के कारण निश्चेष्ट से हो गए नेत्रों वाली रोशन आरा चित्रलिखित सी हो गई। शिवाजी हाथ जोड़े खड़े रहे और विन्दु या विसर्ग

चाऽब्रूत। ततः पराधीना तदाकार-सौजन्य-लावण्य-गाम्भीर्याऽऽदराचाराद्यवलोकन-मोहिता रसनारी स्वयमेवाऽऽरभ्य एवमालपत्—

रसनारी—आगम्यतामियमासन्दी सनाथ्यताम्।

शिवराजः—यदाज्ञाप्यतेऽत्रभवत्या।

(इत्येकस्यामासन्द्यां महाराष्ट्रराजः, अपरस्यां च रसनारी, सार्द्धहस्तोच्छ्रायायाः कौशेय-वसनाच्छन्नायाः सजल-कुसुम-स्तवकालङ्कृतमध्याया वर्तुलपीठिकाया प्राक् प्रत्यक् चोपाविक्षताम्।)

विन्दुद्वयरूपो विसर्जनीयश्चापि यदा नोक्तस्तदा वर्णसमूहरूपपदाद्युच्चारणचर्चैव केति कैमुतिकन्यायेन किमपि नाकथयदित्यत्र तात्पर्यम्। भाषणभङ्गीपाटवप्रदर्शनाय त्वेवमभिधानम्। अनुनासिकविसर्जनीययोर्लिपिरेव बिन्द्वात्मिका, तौ तु वर्णाविवेत्ययोगवाहनामट्सु शर्षु चोपसङ्ख्यानेन भाष्ये दर्शितमित्यादिकं शाब्दिकशैलीविदां नातितिरोहितमिति शम्।

पराधीना=अस्वतन्त्रा। **तदाकारस्य**=तदाकृतेः, **सौजन्यस्य**=सज्जनतायाः, **लावण्यस्य**=सौन्दर्यस्य, **गाम्भीर्यस्य**=प्रच्छन्नभावस्य। **आदराचारादेश्च**=आदृतिशिष्टाचरणादेश्च, अवलोकनेन, **मोहिता**=वशीकृता।

आसन्दी=आसनविशेषः। **सनाथ्यताम्**=सस्वामिकीक्रियताम्। उपविश्यतामिति यावत्। आदरातिशयद्योतनायैवमुक्तिः।

आज्ञाप्यते=आदिश्यते। अतिशयनम्रताध्वननायेदम्।

सार्धहस्तोच्छ्रायायाः=अर्धेन सह विद्यमानो हस्तः, अर्धादिकः, **उच्छ्रायः**

भी नहीं बोले। तदनन्तर उनकी (शिवाजी की) आकृति तथा उनका सौजन्य, लावण्य, गाम्भीर्य और शिष्ट व्यवहार आदि देखकर मुग्ध हो गई परतन्त्र रोशनआरा स्वयं ही बातचीत का आरम्भ करती हुई बोली—

रोशनआरा—आइये, इस कुर्सी को सनाथ कीजिए।

शिवाजी—जैसी आपकी आज्ञा।

[तदनन्तर डेढ़ हाथ ऊँची, रेशमी मेज़पोश से ढकी हुई, जलयुक्त फूलों के गुच्छों से अलंकृत (गुलदस्तों से अलंकृत) मध्य भाग वाली, वर्तुलाकार मेज़ के आमने-सामने एक कुर्सी पर शिवाजी बैठ गए, तथा दूसरी पर रोशन आरा बैठ गई।]

रसनारी–वीर ! अतिसमादृताऽपि सुखं स्थापिताऽपि दुःखिताऽस्मितमाम्, यतो यत्नैरपि न ज्ञातुमशकं निज-धन्यवाद-भाजनं धन्य-धन्यं कमपि मान्य-वदान्यम् ; यत्प्रदत्तं द्राक्षा-दाडिम-जातमास्वादमास्वादं केकि-केका-कोकिल-कूजितानि श्रावं श्रावं दर्शं दर्शं चोपत्यका-शाद्वलेषु शम्वर–शल्लकी–शशक–शिवा–पलायनानि दिनानि गमयामि।

शिवराजः–आर्ये ! अपि कस्यापि महाराष्ट्र–वीरस्य शिवराज इति नामधेयं श्रीमत्याः कर्ण–शष्कुलीमस्पार्क्षीत् ?

=औन्नत्यं यस्यास्तस्याः। कौशेयवसनाच्छन्नायाः=पट्टवस्त्रप्रावृतायाः। सजलकुसुमस्तवकैः=सवारिपुष्पगुच्छैः, अलङ्कृतं मध्यम्=मध्यभागो यस्यास्तस्याः वर्तुलपीठिकायाः=गोलाकृतिकाष्ठपीठिकायाः, "मेज" इत्याङ्गलशब्दस्य हिन्दीप्रयोगविषयस्याऽभिधेयायाः। उपाविक्षताम्=आसिषाताम्। केकि-केकाः=मयूररुतानि, कोकिलकूजितानि=परभृतरणितानि। श्रावं श्रावम् =श्रुत्वा श्रुत्वा। शम्वरस्य=मृगविशेषस्य, शल्लक्याः=श्वाविधः, "साही" इति हिन्दी। शशकस्य, शिवायाः=शृगाल्याश्च, पलायनानि=धावनानि। दिनानि गमयामि=दिवसान् क्षपयामि। निरर्थं यापयामि कालमिति यावत्।

कर्णशष्कुलीम्=श्रवणझिल्लीम्। श्रोत्ररन्ध्रम्। अस्पार्क्षीत्=स्पर्शन-

---

रोशन आरा—वीर! अत्यन्त सम्मानित की जाती हुई भी, सुखपूर्वक रखी जाती हुई भी मैं दुःखी हूँ, क्योंकि कोशिश करने पर भी मैं अपने धन्यवाद के पात्र, अतिशय धन्य उस माननीय आश्रयदाता को नहीं जान सकी, जिसके दिये गए अंगूर, अनार आदि का आस्वादन कर मयूरों की केका, तथा कोयलों की काकली को सुन-सुनकर तथा उपत्यकाओं के घास के मैदानों में हरिणों, शल्ल-कियों(साहियों) खरगोशों तथा शृगालियो का भागना देख-देखकर दिन काट रही हूँ।

शिवाजी—आर्ये ! क्या किसी महाराष्ट्र वीर के 'शिवाजी' इस नाम ने आपके कानों का स्पर्श किया है ?

रस०—(क्षणं चिन्तयित्वेव) किं पार्वतोन्दुरुः शिव इति ?

शिवराजः–[दिल्ली-कलङ्का वराका एते मां पार्वतोन्दुरुमेवाऽऽख्यान्ति" इति स्वगतमेव विचार्य किञ्चिद् ह्रीण इव पुनरुन्नतीभूय] भद्रे ! महाराष्ट्रराजः शिववीरः।

रसनारी—[समौग्ध्यम्] तत् किं पार्वतोन्दुरुः कोऽप्यन्यः ?

शिव०—अत्र भवती न वेत्ति मर्म्मैतस्य। अस्माकं सदैव युद्धानि भवन्ति श्रीमत्यास्तातचरणैः सह। वयं सदैव तान् विजयामहे। तदीयानि कदर्य्याणि आचरणान्यवलोक्य च 'दिल्ली–कलङ्का इमे' इति कथयामः। ते च दग्धहृदया अस्मान् 'पार्वतोन्दुरून्' प्रचक्षते, परन्तु यथा तव तातस्तत्र राजा, तथा शिववीरोऽत्र राजा। तव तातस्तत्र प्रजासु तु, येषां दारा अपह्रियन्ते; येषां देवमन्दिराणि निपात्यन्ते; येषां च तीर्थस्थानानि बलाद् विलोप्यन्ते; ते प्रतिप्रभातं प्रतिसायं च

मकार्षीत् शिवराज इति नाम कर्णयोर्गतं श्रुतमिति प्रश्नः। पार्वतोन्दुरुः=पर्वतीयाखुः। आख्यान्ति=कथयन्ति।

मर्म्म=रहस्यम्। कदर्य्याणि=अतिनिन्द्यानि। आचरणानि=कर्त्तव्यानि। दग्धहृदयाः=ज्वलितान्तःकरणाः। प्रचक्षते=कथयन्ति। दाराः=वनिताः। अपह्रियन्ते=चोर्यन्ते। विलोप्यन्ते=अदृश्यतां नीयन्ते। प्रतिप्रभा-

---

रोशन आरा—[क्षण भर सोचती हुई सी] क्या पहाड़ी चूहा शिवाजी ?

शिवाजी—[मन में 'यवन मुझे पहाड़ी चूहा ही कहते हैं' यह सोचकर कुछ लज्जित से होकर पुनः सिर उठाकर] भद्रे ! महाराष्ट्र के राजा शिवाजी।

रोशन आरा—[भोलेपन से] तो क्या पहाड़ी चूहा कोई और है ?

शिवाजी—आप इसका रहस्य नहीं जानतीं हैं। हमलोगों का आपके पिताजी के साथ सदा ही युद्ध हुआ करता है; हमलोग सदैव उन्हें पराजित करते हैं, और उनके निन्दनाय कुकृत्यों को देखकर, 'ये दिल्ली के कलङ्क हैं,' ऐसा कहा करते हैं, परन्तु जैसे आपके पिता वहाँ राजा हैं, वैसे ही शिवाजी यहाँ के राजा हैं। आपके पिताजी के राज्य में जिन लोगों की स्त्रियों का अपहरण कर लिया जाता है, जिनके देवमन्दिर गिरा दिये जाते हैं तथा जिनके तीर्थ स्थान बलपूर्वक लुप्त किये जाते हैं, वे लोग प्रतिदिन प्रातःकाल और सन्ध्या के

बाष्प-वारि-बिन्दु-सन्दोहैराननं क्षालयन्तः, दग्धहृदयाः, धमद्धमद्-धमनी-धावमान-रुधिर-धारा-दुर्धर्ष-वदनाः, हस्तावुन्नमय्य तव तातस्योच्छेदाय शपन्ते, शिवराज्ये तु प्रजाः प्रतिक्षणमाशीराशीनुच्चारयन्ति। त्वत्पितृराज्यं बहिरेव; न तु प्रजानामन्तःकरणे। शिवस्य तु राज्यं महाराष्ट्र-देशीय-प्रजानामन्तर्बहिश्च।

रस०—[सलज्जम्] तत् किं शिवराज्ये यवना अपि मोदन्ते?

शिव०—सर्वासां प्रजानां समान एव मोदः, न भवति शासनकाले जातिनामाद्युट्टङ्कनमावश्यकम्।

रस०—ततः किमित्यहमपहारिताऽस्मि?

तम् = प्रतिप्रातः। प्रतिसायम् = प्रतिसूर्यास्तमनवेलम्। बाष्पवारिबिन्दुसन्दोहैः = अस्रजलपृषत्समूहैः। क्षालयन्तः = धावयन्तः। धमद्धमन्तीषु = भीत्याऽतितरां धडत्कुर्वतीषु, धमनीषु = नाडीषु, धावमानस्य = शीघ्रगतेः; रुधिरस्य, धाराभिः = प्रवाहैः दुर्धर्षाणि, वदनानि = लपनानि येषां ते। उच्छेदाय = नाशाय, शपन्ते = अनिष्टमाशंसन्ते। उन्नमय्य = ऊर्ध्वीकृत्य। आशीराशीन् = आशीर्वादततीः। अन्तःकरणे = चेतसि।

मोदन्ते = प्रसन्नतामनुभवन्ति। शासनकाले = रक्षणवेलायाम्। जातिनामादीनाम्, उट्टङ्कनम् = प्रकटीकरणम्। अपहारिता = चोरिता।

समय आँसुओ की बूँदों के समूह से मुख धोते हुए, जले हृदय से, धमकती हुई धमनियों में दौड़ते हुए रक्त को धारा से, कठोर मुख से अपने दोनों हाथ उठाकर आपके पिता के विनाश के लिये शाप दिया करते हैं। किन्तु शिवाजी के राज्य में तो प्रजा प्रतिक्षण आशीर्वादों का उच्चारण करती रहती है। आपके पिता का राज्य बाहर ही है, प्रजा के अन्तःकरण में नहीं। शिवाजी का राज्य तो महाराष्ट्र की प्रजा के हृदय पर भी है और बाहर भी।

रोशन आरा—[लज्जापूर्वक] तो क्या शिवाजी के राज्य में यवन लोग भी प्रसन्न रहते हैं?

शिवाजी—सारी प्रजा समान रूप से प्रसन्न है। शासन के समय जाति नाम आदि का उल्लेख आवश्यक नहीं होता।

रोशन आरा—तो फिर मुझे क्यों अपहृत किया गया?

शिव०—मा स्म भूच्छ्रीमत्याः काचन बलात्कार–भीतिः। बहुभी रुधिर–प्रवाहैर्भगवती विश्वम्भरा स्नापिता, बहवश्च युद्धाऽऽहत-वीर-रमण्यो रोदिताः, इति यदि भवतीमाश्रित्य भवत्याः पित्रा सह सन्धातुं शक्येत; तद्यत्नायैव समानीता मङ्गलमय्यत्र भवती। नैतद् मौद्गल-राज्यम्; यत्र प्रजानामपि भवेद् बलात्कार-साध्वसम्। अत्र तु महा-राष्ट्राणां राज्यम्; यत्र परिपन्थिनामपि युव-जन-मनो-मोहनेनाऽति-मधुरेण कौमारात् परेण वयसाऽऽलिङ्गिता अपि सौन्दर्य-सार-विरचिता इवापि दुहितरः सम्मान्यन्ते, न त्ववहेल्यन्ते। अत्रभवत्येवात्र प्रमाणम्।

रस०—[तदाकर्ण्य शिरो नमयित्वा, अपाङ्ग-क्षिप्त-लोल-तारकेण लोचनेन

विश्वम्भरा = धरणी। स्नपिता = निर्णेजिता। युद्धे आहतानाम् = मारितानाम्, वीराणां, रमण्यः = स्त्रियः। मङ्गलमयी = माङ्गल्यकारिणी। बलात्कारात् साध्वसम् = भीतिः। परिपन्थिनाम् = लुण्ठकानाम्। युवजन-मनोमोहनेन = नववयस्कचेतस्समाकर्षकेण, कौमारात् परेण वयसा=यौवनेन। आलिङ्गिताः आश्लिष्टाः। नवयुवत्य इति यावत्। सौन्दर्यसारविरचिताः= लावण्यतत्त्वनिर्मिताः, दुहितरः = कन्यकाः। अवहेल्यन्ते = तिरस्क्रियन्ते। अत्र-भवती = माननीया। अत्र = अस्मिन् विषये। अतो न पौनरुक्त्यम्। प्रमाणम्= प्रमाकरणम्। मदुक्तिसत्यतासाधकमिति यावत्।

अपाङ्गे = नेत्रप्रान्ते, क्षिप्ता = प्रेरिता, लोला = चञ्चला, तारका =

शिवाजी—आप किसी बलात्कार का भय न करें। रक्त की अनेक धाराओं से भगवती वसुन्धरा को स्नान कराया जा चुका है, युद्ध में मारे गये सैनिकों की अनेक स्त्रियाँ रोने के लिए विवश की जा चुकी हैं, अतः शायद आपके सहारे आपके पिता से सन्धि हो सके, यही सोचकर सन्धि के लिए प्रयत्न करने के लिए मङ्गलमयी आप यहाँ लाई गई हैं। यह मुगलसाम्राज्य नहीं है; जहाँ प्रजा को भी बलात्कार का भय रहे। यहाँ मराठों का राज्य है; जहाँ युवकों के मन को मुग्ध करने वाले अत्यन्त मधुर यौवन से आलिङ्गित मानों सौन्दर्य के सार से बनी शत्रु की भी लड़कियाँ सम्मानित की जाती हैं, उनकी अवहेलना नहीं की जाती। इस सम्बन्ध में आप ही स्वयं एक प्रमाण हैं।

रोशन आरा—[यह सुनकर, सिर झुकाकर, जिनकी चञ्चल पुतलियाँ

शिव-मुखमसकृदीक्षमाणा, उरोजयोः स्रंसदिव वस्त्रं पुनः स्कन्धयोः क्षिप्त्वा] अथ क्वाऽसौ महाराष्ट्रराजो मोदित-सकल-समाजो रणधीरः शिव-वीरः ? तं दिदृक्षत एष जनः ।

शिव०—[समुत्थाय] एषोऽत्र भवत्याः सम्मुख एव बद्धकरसम्पुट उपतिष्ठते शिवः, तदाज्ञाप्यतां काचन सेवा ।

रस०—[ससम्भ्रममुत्थाय] आः ! एवमेतत् ? अपि श्रीमानेव महाराष्ट्रराजः, यो मामेवं धृष्टवादिनीं मनोरमैर्नम्रालापैर्लज्जयते ? उपविश्यतामुपविश्यताम् । मनसाऽप्यकल्पनीयोऽयमीदृशः स्वभावः, यत् सपत्नोऽप्यादरेष्वेव सयत्नो भवान् ।

कनीनिका, यस्य तेन, लोचनेन = नयनेन । असकृत् = अनेकवारम् । ईक्षमाणा = अवलोकयन्ती । उरोजयोः = स्तनयोः । स्रंसदिव = स्खलदिव । इवेन न स्वयं वस्त्रस्खलनमपि तु शिवासक्तिसूचनाय रसनार्यैवपातितमिति ध्वनितम् । स्कधयोः असंयोः । क्षिप्त्वा = अस्तव्यस्तं संस्थाप्य । "फेंक कर" इति हिन्दी ।

मोदितसकलसमाजः = प्रसन्नीकृतसमस्तजनसमूहः । दिदृक्षते = द्रष्टुमिच्छति ।

धृष्टवादिनीम्—धाष्टर्येन भाषमाणाम् । मनोरमैः = चेतोहरैः । नम्रालापैः = कोमलभाषणः । लज्जयते = लज्जितां करोति । अकल्पनीयः =

कोनों में जा लगी थीं, ऐसे नेत्रों से शिवाजी के मुख को बार बार देखती हुई, स्तनों से सरकते हुए से वस्त्र को पुनः कन्धों पर डालकर] अच्छा, समस्त प्रजा को प्रसन्न करने वाले महाराष्ट्र के राजा रणधीर शिवाजी कहाँ हैं ? मैं उन्हें देखना चाहती हूँ ।

शिवाजी—(उठकर) यह आपके सामने ही हाथ जोड़े शिवाजी सेवा में उपस्थित है, कोई सेवा का आदेश दीजिए ।

रोशन आरा—[घबराहट के साथ उठकर] अहा ! ऐसी बात है ? क्या आप ही महाराष्ट्र के नरेश हैं, जो उच्छृङ्खलता पूर्वक बोलने वाली मुझको मनोरम नम्र वचनों से लज्जित कर रहे हैं । बैठिए, बैठिए, ऐसा स्वभाव तो मन से

ततः परमुपविष्टयोर्मुहूर्तं यावद् बहव आलापास्तयोः परस्परं चकितयोर्मुदितयोरनुरक्तयोश्चाऽभूवन् ।

अथ समार्दवं तदनुमतिमासाद्य, सिंहदुर्गं प्रति निवर्तमानो मार्ग एव महता हिमगिरि-खण्डेनेव कर्पूर-पूर-निर्मितेनेव चन्द्रचन्द्रिका-चय-रचितेनेव मूर्तनेव महाराष्ट्र-यशसा दुग्ध-धवलेन घोटकेन धावमानः, कतिभिश्चन सप्रसाद-नयनैरुत्साहमिव वमद्भिः, प्रत्यर्थि-प्रतापमिवाऽरुण-रश्मिवन्धं सव्येन करेण वशयद्भिः, निज-विजय–ध्वजेनेव

अननुमेयः । सपत्नः = अरिः । आदरेषु = सम्मानेषु । सयत्नः = सश्रमः ।

चकितयोः = साश्चर्ययोः । मुदितयोः = प्रसन्नयोः । अनुरक्तयोः = अन्योन्यासक्तिमतोः । सर्वत्रात्र 'पुमान् स्त्रिये'त्येकशेषो वोध्यः ।

समार्दवम् = सकोमलतम् । हिमगिरिखण्डेनेव = प्रालेयाचलांशेनेव । कर्पूरपूरनिर्मितेनेव = हिमवालुकावूलिरचितेनेव । चन्द्रचन्द्रिका-चयरचितेनेव = शशाङ्कदीधितिनिकरनिर्मितेनेव । दुग्धधवलेन = पयःश्वेतेन । सप्रसाद-नयनैः = प्रसन्ननेत्रैः । वमद्भिः = उद्गिरद्भिः, प्रकटयद्भिरिति यावत् । प्रत्यर्थि-प्रतापमिव = शात्रवतेज इव । अरुणम् = ईषद् रक्तम्, रश्मिवन्धम् = प्रग्रहम् । सव्येन = वामेन । वशयद्भिः = स्वायत्तीकुर्वद्भिः । पुष्टतया गृह्यद्भिरिति

भी नहीं सोचा जा सकता कि मेरे शत्रु होते हुए भी आप मेरे सम्मान के लिए सचेष्ट हैं ।

उसके वाद दोनों के वैठ जाने पर क्षण भर चकित, प्रसन्न तथा अनुरक्त उन दोनों की परस्पर वहुत सी वातें हुईं ।

तदनन्तर रोशन आरा से विनम्रता पूर्वक अनुमति लेकर सिंहदुर्ग को लौटते हुए शिवाजी ने मार्ग में ही हिमगिरि के टुकड़े के समान, कर्पूर के समूह से बने हुये से, चन्द्रमा की चाँदनी के पुञ्ज से निर्मित किए गए से, मराठों के मूर्तिमान यश के से, दुग्ध के समान सफेद घोड़े पर सवार, प्रसन्नता भरी आँखों से उत्साह उगलते हुए से; शत्रु के प्रताप की सी लाल लगाम को वाँये हाथ से नियन्त्रित किए हुए; अपनी विजयपताका के समान

मन्दमाघूर्णमानेन कशाग्रेण हयान् हेषयद्भिः, कटितट–विलम्बि–विलोल-करवालैरुष्णीष–पर–प्रान्त–दोदुल्यमानाऽनिल–वल-विलोल-बाल–जालैः सादिभिरनुगम्यमानो माल्यश्रीकः समागच्छन्नालोकि। समीपमागतास्ते सर्वे 'जय जीव !' इत्युच्चैः शिवराजमाचाराशीयाशिभिः सममानयन्। माल्यश्रीकस्तु "विजयतां श्रीमान्! प्रतिहत-ममङ्गलम्, हताः परिपन्थिनः" इत्युदीर्य किञ्चन रहस्यं निवेदनीयं न्यवीविदत्।

अथ शिवेङ्गितमासाद्य सर्वेष्वश्वारोहेषु धनुषां विंशत्यामिव दूरतः

यावत्। निज-विजय-ध्वजेनेव = स्वजयवैजयन्त्येव। आघूर्णमानेन = सञ्चलता। कशाग्रेण = अश्वताडनीप्रान्तेन। "अश्वादेस्ताडनी कशा" इत्यमरः। हेषयद्भिः = हिणत्कारं कारयद्भिः। कटितट–विलम्बि–विलोल–करवालैः = मध्यभागावलम्बिचञ्चलचन्द्रहासैः। उष्णीषपरप्रान्ते = शिरोवेष्टनद्वितीयाञ्चले, दोदुल्यमानस्य = अतिशयेनोड्डीयमानस्य, अनिलस्य = वायोः, वलेन, विलोलानि = चञ्चलानि, बालजालानि = केशवृन्दानि, येषां तैः। आलोकि = दृष्टः। प्रतिहतम् = विध्वस्तम्। अमङ्गलम् = अशुभम्। न्यवीविदत् = न्यबोधयत्।

शिवेङ्गितम् = शिववीरचेष्टाम्। धनुषां विंशत्यामिव = प्रायो विंश-

---

धीरे-धीरे हिलने वाले चाबुक के अग्रभाग से घोड़ों को हिनहिनाने के लिए प्रेरित करते हुए; कमर में चञ्चल तलवारों को लटकाए; तथा पगड़ी की दूसरी ओर उड़ने वाले, पवन के वेग से चञ्चल केश समूहों वाले; कुछ अश्वारोहियों से अनुगत माल्यश्रीक को आते हुए देखा। समीप आने पर अश्वारोहियों ने ज़ोर से, 'जय जीव !' कहकर शिवाजी को आचारानुकूल आशीर्वादों से सम्मानित किया, और माल्यश्रीक ने "महाराजकी जय हो, अमङ्गल का नाश हुआ और शत्रु मारे गए" यह कहकर निवेदन किया कि कुछ रहस्य की बातें बतानी हैं।

अनन्तर शिवाजी का संकेत पाकर सभी अश्वारोहियों के, लगभग वीस धनुष

कृतमण्डलेषु, मन्दमन्दं तुरग-निगालाऽऽस्फोटन-पुरस्सरं प्रचलत्सु, शिवस्य वामतः शनैः स्वमश्वं चालयन् मन्दं मन्दमगादीन्माल्यश्रीकः।

माल्यश्रीकः—[जनान्तिकम्] न्यवेदयमेव ह्यो रात्रौ श्रीमच्चरणेषु यत् पुरुषमयं पारावार-प्रवाहमिव सह नयन् दिल्लीकलङ्कस्याऽवरङ्गजीवस्य तनयो मायाजिह्मो महाराष्ट्रैः सह योद्धुमायातीति।

शिव०—आम्! ततः परमुच्यताम्!

माल्य०—स त्वितो गव्यूति-सप्तकान्तराल एवोपकार्य्याः समासज्याऽवसरं प्रतीक्षमाण आसीत्।

तिधनुःपरिमितायामिव। **कृतमण्डलेषु** = विहितपरितःस्थितिषु। वर्तुलाकारेणोपविष्टेष्विति यावत्। **तुरगनिगालास्फोटनपुरस्सरम्**=अश्वगलोद्देशास्फालनपूर्वकम्। **जनान्तिकम्**—

'त्रिपताककरेणाऽन्यानपवार्यान्तिके जनान्।
अन्योन्यामन्त्रणं यस्माद् जनान्ते तज्जनान्तिकम्॥' इत्युक्तम्।

पुरुषमयम् = मानवप्रचुरम्। **पारावारप्रवाहमिव** = सिन्धुधारामिव। **मायाजिह्मः** = "सुल्तान मुआजिम" इति प्रसिद्धः।

गव्यूतिसप्तकान्तराले = चतुर्दशक्रोशमध्ये। **उपकार्य्याः**=शिबिराणि। **समासज्य** = सम्यगायोज्य। **प्रतीक्षमाणः**=प्रतीक्षां कुर्वन्।

की दूरी पर मण्डल बनाकर धीरे-धीरे घोड़े की गर्दन थपथपाते हुए चल देने पर, माल्यश्रीक शिवाजी की बाईं ओर अपना घोड़ा बढ़ाते हुए धीरे-धीरे कहने लगे—

माल्यश्रीक (जनान्तिक में)—मैंने आपके चरणों में कल रात्रि में निवेदन किया ही था कि मनुष्यों का महासागर सा साथ लेकर दिल्ली-कलङ्क औरङ्गजेब का लड़का 'सुल्तान मुआज़म' मराठों से युद्ध करने के लिए आ रहा है।

शिवाजी—हाँ, उसके बाद कहिए।

माल्यश्रीक—वह वहाँ से चौदह कोस की दूरी पर ही शिविर लगाकर अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था।

शिव०—आसीदस्ति वा ?

माल्य०–प्रभो ! आसीदेव, सम्प्रति तु श्रीमच्चरणानां वशंवदः सञ्जातः इति विशकलय्य निवेद्यते ।

शिव०––[सप्रसादं हसन्निवाऽऽकाशे दृष्टिं बध्वा] अहह ! अरे रे ! अवरङ्गजीव ! महाराष्ट्रान् वञ्चयितुमिच्छसि ? न वेत्सि अस्मदीया बाला अपि त्वादृशांस्तृणाय मन्यन्ते । [माल्यश्रीकाभिमुखम्] अपि सत्यं निगृहीत एषः ?

माल्य०—महामान्य ! कोऽत्र संशयः ? स भवान्; यस्य प्रतापो नृसिंहस्य सटाम्, कपर्दिनो जटाम्, फणिराजस्य स्फटां च स्पृशन् जाज्वल्यते ।

हसन्निव = हासं कुर्वन्निव । महतां हासो नोग्रतामाश्रयतीति ध्वननायेतीवाऽभिधानम् । तृणाय, "मन्यकर्मण्यनादरे" इति चतुर्थी ।

प्रतापः = तेजः । नृसिंहस्य = हिरण्यकशिपुहन्तुरवतारविशेषस्य । सटाम् = केशरम् । कपर्दिनः = शिवस्य । "उग्रः कपर्दी" इत्यमरः । फणिराजस्य = शेषस्य । स्फटाम् = फणाम् । भवान् सुदूरव्यापिप्रताप इति यावत् ।

शिवाजी—था या है ?

माल्यश्रीक—महाराज ! था ही, इस समय तो आपके आधीन है; यही विस्तार पूर्वक निवेदन कर रहा हूँ ।

शिवाजी—[प्रसन्नता से हँसते हुए से आकाश की ओर देखकर] अहा ! अरे ! औरङ्गजेव ! मराठों को धोखा देना चाहते हो ? नहीं जानते कि हमारे बच्चे भी तुम जैसों को तिनका समझते हैं । [माल्यश्रीक की ओर देखते हुए] क्या सचमुच उसे कैद कर लिया गया ?

माल्यश्रीक—महामान्य ! इसमें क्या सन्देह है ? आपका प्रताप नृसिंह की सटा (केसर), भगवान शङ्कर की जटा तथा शेष नाग की फणा को स्पर्श करता हुआ जल रहा है ।

शिव॰—अथ विशकलय्य क्रमतः कथ्यताम् ।

माल्य॰—आर्य्य ! विनिवेदयामि भूतार्थम् । मायाजिह्म एष लम्पटराजस्य पुत्रः, इति कथं नानुहरेत् स्वपितरमिति महाराष्ट्रदेशे आगतमात्र एव "एतद्देशीयाः कीदृश्यो वारवनिताः ? कीदृश आसां वेषः ? कीदृशं गानम् ? कीदृशं च नृत्यम् ?" इति लाम्पटयगर्भमभिलाषं प्रकटितवान् ।

शिव॰—ततस्ततः ?

वृत्तान्तममुं पाञ्चसाहस्रिको गौरसिंहः समाकर्ण्य मायाजिह्मे मायां रचितवान् ?

शिव—आचार्य एष मायाकल्पनेषु । ततस्ततः ?

विशकलय्य = विविच्य ।

भूतार्थम्—व्यतीतं सत्यं वस्तु । लम्पटराजस्य = परस्त्रीलोलुपाऽधिनाथस्य । नानुहरेत् = नानुकुर्वीत । वारवनिताः = वेश्याः । वेषः = नेपथ्यम् । लाम्पटयगर्भम् = परस्त्रीलोलुपतामिश्रम् ।

पाञ्चसाहस्रिकः = शरसहस्रसेनापतिः, पञ्चसहस्रभटाध्यक्ष इति यावत् ।

शिवाजी—तो विस्तार पूर्वक कहिए !

माल्यश्रीक—महाराज ! घटित हुए वृत्तान्त को वता रहा हूँ । यह मुआज़िम, लम्पटों के सरदार (औरङ्गजेव) का पुत्र है, अतः अपने पिता का अनुकरण क्यों न करे ! इसलिए महाराष्ट्र में आते ही उसने, यहाँ की वेश्याएँ कैसी हैं ? उनका वेष कैसा होता है ? उनका संगीत और नृत्य कैसा होता है ? इस प्रकार की लम्पटता पूर्ण जिज्ञासा व्यक्त की ।

शिवाजी—उसके वाद ?

इस वृत्तान्त को सुनकर पाँच हजार अश्वारोहियों के सेनापति गौरसिंह ने मुआज़िम पर माया जाल फैलाया ।

शिवाजी—वह तो कपट रचना में पण्डित है ही ; उसके वाद ?

मान्य०—प्रभो ! गौरः प्रकृत्यैवाऽतिसुन्दरः, तत्रापि दिवाकीर्ति-माहूय मसृणमुखः संवृत्य, अधररागम् अञ्जन–रञ्जनं वारवधू–योग्य-माभरण-जातं प्रच्छद–पटं च धारयित्वा, पटवास–वासित–दिगन्तरः, रति–प्रतिकृतिरिव स्मितैः कटाक्ष–क्षेपैः, मधुर-वचनैः, सजघनकम्प-पाद–क्षेपैः, सकृत्रिम–कुच–वेपन–वलित–वलि–भङ्ग-ललित-कञ्चु-किका–दर्शनैः, यूनां मनो मन्मथोन्मथितं विदधत्, ब्रह्मचारि–कुटीर-

---

दिवाकीर्त्तिम्=नापितम्। एतद्वाचकशब्दानां रात्रौ नोच्चारणं कार्यमन्यथा मरणाशौचापात इति मैथिलेषु प्रसिद्धिः। सा चैतदभिधानमूलिका युक्ता चेति वेदितव्यम्। मसृणमुखः=चिक्कणाननः। संवृत्य=भूत्वा। अधररागम्=ओष्ठलौहित्यकारकं रञ्जनद्रव्यम्, अञ्जनरञ्जनम्=कज्जलेन शोभासम्पादनम्, अक्ष्णोरिति शेषः। प्रच्छदपटम्=आवरकवस्त्रम्। पटवास-वासित-दिगन्तरः=वसनसौगन्ध्यसुरभितहरिदन्तरालः। रतिप्रतिकृतिरिव=कामपत्नीप्रतिमूर्तिरिव। स्मितैः=ईषद्धास्यैः। कटाक्षक्षेपैः=भ्रूभङ्गसञ्चालनैः। मधुरवचनैः=कोमल-भाषणैः। सजघनकम्पपादक्षेपैः=जघनवेपनपुरस्सरमङ्घ्रिन्यासैः। कृत्रिमयोः=निर्मितयोः, कुचयोः वेपनेन=कम्पेन, वलितैः=उपचितैः, वलिभङ्गेन=त्रिवलीभङ्गेन, ललितैः=सुन्दरैः, कञ्चुकिकादर्शनैः=चोलिकाप्रकटनैः। मन्मथोन्माथितम्=काममर्दितम्। विदधत्=कुर्वाणः, शत्रन्तम् 'नाभ्यस्ता-

---

मान्यश्रीक–महाराज ! एक तो गौरसिंह स्वभावतः ही अत्यन्त सुन्दर है, उस पर भी उसने नाई को बुलाकर (दाढ़ी मूँछ बनवाकर) चिकने मुख वाला बनकर, अधरों पर लाली लगाकर, नेत्रों में काजल डालकर, वेश्या के योग्य सभी आभूषण धारणकर, तथा चादर ओढ़कर, वस्त्रों की सुगन्धि से दिशाओं को सुरभित करते हुए, मूर्तिमती रति के समान, मुस्कान, कटाक्षविक्षेप, मधुर वाणी द्वारा तथा जघनों को हिलाने के साथ चरणन्यास करते हुये कृत्रिम स्तनों को कँपाने के साथ ही साथ हो गए त्रिवलिभङ्ग से सुन्दर लगने वाली कञ्चुकी को दिखा-दिखाकर युवकों के मन को कामोन्मत्त करते

वासि-संन्यासिनामेव परिवर्तितवेषैः, कैश्चित् कलितमृदङ्गैः, अपरैस्तानपूरिका-ताल-झर्झर-करैः, अन्यैर्व्यंजन-पतद्ग्रह-ताम्बूलकरङ्क-मञ्जीर-पोटलिकादि-वाहकैः, इतरैश्च पञ्चषैः कलित-दासीरूपैरनुगम्यमानः, सौवर्णप्रच्छदाऽऽच्छन्नामतिरमणीयामेकां शिबिकामारुह्य, धीरैरेवाऽऽकलित-भारवाह-वेषैरुह्यमानः, तदीय-शिबिर-मण्डलमासाद्य "पद्मिनीनाम्नी जगत्प्रसिद्धा महाराष्ट्र-देशीया वाराङ्गना समागच्छति" इति समसूसुचत् ।

शिव०—ततः ?

च्छतुः' इति न नुम् । **परिवर्तितवेषैः**=नवीकृतनेपथ्यैः । **कलितमृदङ्गैः**=धारितमृदङ्गैः । **व्यजनम्**=तालवृन्तकम्, **पतद्ग्रहः**=निष्ठ्यूतग्रहः । **ताम्बूलकरङ्कम्**=ताम्बूलाधारपात्रम्, "पानडब्बा" इति हिन्दी । **मञ्जीरपोटलिका**="घुँघुरुओं की पोटली" इति हिन्दी । इत्यादीनां **वाहकैः**=प्रापकैः, भृत्यैः । **पञ्चषैः**=पञ्चभिः षड्भिर्वा । **कलितदासीरूपैः**=गृहीतभृत्यानेपथ्यैः । **सौवर्णेन**=हैरण्येन, **प्रच्छदेन**=आच्छादनपटेन, "आहार" इति हिन्दी । **आच्छन्नाम्**=परितः पिहिताम्, **आकलित भारवाह-वेषैः**=धारितशिबिकोद्वाहकनेपथ्यैः । **ऊह्यमानः**=नीयमानः । **वाराङ्गना**=गणिका । **समसूसुचत्**=समबूबुधत् ।

हुए; मृदङ्ग धारण करने वालों, तानपूरा, करताल, झाँझ, पंखा, पिकदान, पानदान, घुँघरू की पोटली आदि ले चलने वालों एवं दासियों का वेश धारण-कर पीछे-पीछे चल रहे ब्रह्मचारियों की कुटियों में रहने वाले कुछ संन्यासी वीरों के द्वारा अनुगत, कहारों का वेश धारण किये हुए मराठा सैनिकों द्वारा वहन की जा रही, सुनहली चादर से ढकी हुई एक अत्यन्त सुन्दर पालकी में बैठकर, मुआजिम के शिविर के पास पहुँच कर, उसके पास यह सूचना भेजी कि पद्मिनी नाम की महाराष्ट्र देश की विश्वविख्यात वेश्या आ रही है ।

शिवाजी—तब ?

माल्य०—ततो नामश्रवणमात्रेण पुलकितः प्रफुल्लितः स्विन्नः आनन्दितश्च मायाजिह्मः रङ्ग-शिबिरं प्रवेष्टुमादिदेश।

शिव०—रङ्ग–शिविरम् ?

माल्य०—प्रभो! लम्पटानां शिबिर-सन्निवेशेषु रङ्गशिविर-मपि भवति; यत्र केवलं दुरोदरं वा वारवधू-विलासो वा नर्मशर्माणि वा पान-परम्परा वा भवति। तत्र न सर्वेऽपि निविशन्ते; किन्तु कैश्चि-देवात्यन्तमन्तरङ्गैर्विषय-भोग-भाजो भवन्ति भट्टारकाः।

शिव०—एवम्! ततः किमभूत् ?

माल्य०—आर्य! तन्निदेशेन रङ्गशाला-द्वारि शिबिकामास्थाप्य सह सर्वैरनुचरैरन्तः प्रविवेश पद्मिनी। तत्रैकत्राऽऽस्तीर्णा वितस्त्यु-

---

पुलकितः = सरोमाञ्चः। प्रफुल्लितः = विकसितः। स्विन्नः = आर्द्र-वपुः। आनन्दितः = प्रसन्नीकृतः। रङ्गशिबिरम् = नृत्योपकार्याम्।

शिबिरसन्निवेशेषु = सेनानिवेशदेशेषु। दुष्टमुदरं दुरोदरम् = द्यूतम्। नर्मशर्माणि = हास्यादिसुखानि। पानपरम्परा = मद्यपानाभ्यासः। भट्टा-रकाः = अधिपतयः सेनादीनाम्, लघुराजा वा 'राजा भट्टारको देवः' इत्यमरः।

आस्थाप्य = संस्थाप्य। अनुचरैः, साकमिति शेषः। वितस्त्युच्छ्राया =

माल्यश्रीक—तदनन्तर पद्मिनी का नाम सुनकर ही रोमाञ्चित, खिले हुए, पसीने से भीगे हुए तथा प्रसन्न मुआजिम ने रंगशाला में प्रवेश करने का आदेश दिया।

शिवाजी—रङ्गशाला ?

माल्यश्रीक–महाराज! लम्पटों के सैन्यशिविर में रङ्गशाला भी होती है, जहाँ केवल जूआ, वेश्या के साथ विलास, हँसी-मजाक या मद्यपान ही होता है। वहाँ सभी नहीं जा सकते, अपितु कुछ अत्यन्त अन्तरंगों के साथ अधिकारी ही विषयोपभोग के सुख का अनुभव करते हैं।

शिवाजी—ऐसा! फिर क्या हुआ ?

माल्यश्रीक—महाराज! उसके आदेश से पद्मिनी ने रङ्गशाला के द्वार पर पालकी रखवाकर सभी अनुचरों के साथ भीतर प्रवेश किया। वहाँ एक ओर

च्छाया कनक-सूत्रमयी तूलिका। तदुपरि स्थापितास्तादृशा एव त्रय उपबर्हाः। सम्मुखतः सौवर्णे वर्तुलास्तरणे सुसज्जितं प्रलम्बनलं कटूमधुराऽऽमोदामोदित-दिगन्तरं धूमपानयन्त्रम्। एकतो राजत-पीठिकायां विन्यस्तानि, अन्तःस्थ-रक्त-पीताऽरुण-द्रवाभा-भार-धारा-स्नपिताऽऽस्तरणानि, मध्यस्थ-दीप-द्योत-द्योतित-दीप्ति-प्रचय-विहित-बहुल-चाकचक्यानि, अधोमुख-विन्यस्त-विविध-काच-चषक-वृत्तानि माध्वीक-

---

हस्तार्धोच्छ्रितिः। वितस्तिः = "वित्ता" इति हिन्दी। कनकसूत्रमयी = सुवर्णतन्तुशिल्पसमेता। तूलिका = "गद्दी" इति हिन्दी। उपबर्हाः = उपधानानि। वर्तुलास्तरणे = गोलमञ्चिकाविष्टरे। प्रलम्बनलम् = दीर्घधूमाकर्षकम्। कटुमधुरामोदमोदितदिगन्तरम् = अतिमिष्टसुगन्धिसुरभितहरिदन्तरालम्। राजतपीठिकायाम् = रौप्यपीठे। अन्तस्थानाम् = अन्तर्वर्त्तमानानाम्, रक्त-पीताऽरुणद्रवाणाम्, अर्थात् तद्वर्णानां सुराणाम्। आभायाः = भासः, भारधारया = गुरुतरस्रोतसा। स्नपितानि = क्षालितानि, तत्तद्रागरञ्जितानीति यावत्। तद्गुणालङ्कारः। आस्तरणानि = वर्तुलाच्छादनवसनानि यैस्तानि। मध्यस्थदीपद्योतेन = अन्तरालस्थापितदीपप्रकाशेन, द्योतितः = प्रकाशितः, यो दीप्तिप्रचयः = स्वस्वच्छविसमूहः, तेन विहितम् = सम्पादितम्, बहुलम् चाकचक्यम् = चमत्कृतिर्येषु तानि। अधोमुखानि = निम्नाननानि, विन्यस्तानि = स्थापितानि, विविधानि = अनेकानि, काच-चषक-वृत्तानि = काच-निर्मित-पान-भाजनानि।

एक बालिश्त ऊँची तोशक बिछी थी, जिस पर सोने की ज़री का काम था। उसके ऊपर वैसे ही तीन मसनद रखे हुए थे। सामने सोने की वर्तुलाकार मेज पर लम्बी नली वाला कड़वी एवं मधुर गन्ध से दिशाओं को सुरभित करने वाला हुक्का रखा था। एक ओर चाँदी की चौकी पर शराब की बोतलें रखी थीं। उन बोतलों के भीतर भरी हुई लाल, पीली और गुलाबी मदिरा से निकल रही कान्ति की (स्थूल) धारा आस्तरण (बिछौने) को स्नान करा रही थी (रंगीन कर रही थी)। बोतलें बीच में रखे हुए दीपक की ज्योति से फैल रहे प्रकाशपुञ्ज से अत्यधिक चकाचौंध उत्पन्न कर रही थीं, और उनके चारों ओर औंधे मुँह करके रखे गए विभिन्न प्रकार के शराब पीने के उपयोग में

मैरेय–जगल–वारुण–परिपूरितानि, ऊर्ध्वमुखानि काचपात्राणि, परितोऽष्टापद–रचितमष्टापदम्; रत्न-निर्मिताः शारिवाटिकाः, दन्तिदन्त-सार-रचिताः पाशकाः, परितो विलम्बमानेषु नानावर्ण-काच-कुसुम-स्तबकेषु ज्वलन्तः शतशो दीपाः, कोणेषु तूष्णीं स्थिता व्यजन-युजो भरण्यभुजश्चाऽऽसन् ।

शिव०—ओम् !

माल्य०—तत्र प्रविश्यैकतः स्थित्वा किञ्चित् प्रतीक्षमाणायामेव पद्मिन्याम्, झटिति द्वित्रैवयस्यैर्वृतः, ताम्बूल–चर्वण–चञ्चल–रदन–

माध्वीकम् = मधूकपुष्पजातं मद्यम्, मैरेयम् = "मीरा" नामकौषधनिर्मित आसवः, जगलः, = मद्यकल्कः, "मेदको जगलः समौ" इत्यमरः, वारुणी = सुरा, एताभिः परिपूरितानि = भरितानि । ऊर्ध्वमुखानि = उन्मुखानि, काचपात्राणि=वर्तुलानि, "बोतल" इति हिन्दी । अष्टापदेन=सुवर्णेन, रचितम् = निर्मितम् । अष्टापदम्=पाशक्रीडार्थं शारिकाधारस्वरूपं चतुष्पाटीनामकं वसनम् । "चौपड़" इति हिन्दी । शारिवाटिकाः = पाशकप्रक्षेपार्थं निर्मितानि कोष्ठकानि । दन्तिदन्तसाररचिताः = करिदशनमध्यनिर्मिताः, पाशकाः = 'पासा' इति हिन्दी । विलम्बमानेषु = अधोमुखेषु स्थितेषु । नानावर्णानाम्, काचानाम्, कुसुमस्तवकेषु = कुसुमचित्रितगुच्छवदवभासमानेषु । व्यजनयुजः = तालवृन्तकवाहिनः । भरण्यम् = वेतनम्, भुञ्जत इति भरण्यभुजो वैतनिककर्मकराः । "भरण्यभुक् कर्मकरः" इत्यमरः ।

वयस्यैः = समानावस्थाकैर्मित्रैः । ताम्बूलचर्वणे = वीटिकास्वादने,

आने वाले] काँच के प्याले रखे हुए थे । उन बोतलों में माध्वीक, मैरेय, जगल और वारुणी भरी थी, तथा उनका मुँह ऊपर की ओर था । चारों ओर सोने की बनी हुई चौपड़ और उसके रत्नमय कोष्ठ (खाने) और हाथीदाँत के बने हुए पाँसे थे । चारों ओर लटक रहे अनेक रंगों के झाड़-फ़ानूसों में सैकड़ों दीप जल रहे थे, और कोनों में पंखे लिए हुए नौकर चुपचाप खड़े थे ।

शिवाजी—हाँ !

माल्यश्रीक—तदनन्तर पद्मिनी के अन्दर जाकर एक ओर बैठकर कुछ ही देर तक प्रतीक्षा करने के बाद शीघ्र ही दो तीन साथियों के सहित, ताम्बूल

वदनः, विस्फारिताभ्यामिव नयनाभ्यां पिबन्निव, विविध-परिमल-परिमर्द्दिताग्रया घोणया जिघ्रन्निव च मायाजिह्मः प्रविश्य पद्मिनी-दत्तदृष्टिरेव तूलिकामलञ्चकार।

अथ ताम्बूल-परिमलैला-लवङ्ग--पत्रक-पटवास-दानादानैरेव कियन्तं समयमतिवाह्य, सहासं सस्मितं सानुरागं सकटाक्ष-विक्षेपणं सभ्रूभङ्ग-सकन्धरा-परिवर्त्तनं च पद्मिन्या सहाऽऽलप्य, मुहूर्तं ससाधु-वादं तद्गानानन्दं चाऽनुभूय, पारितोषिकं निजकण्ठहारं समर्प्य, रजन्याः प्रथम-प्रहर-व्यत्यय-सूचकं समुरलीरणनं भेरीनादमाकर्ण्य, सहचरान् विसृज्य, एकाकी संवृत्य, किञ्चित् समीपमुपसृत्य शनैः

चञ्चलाः = चपलाः, रदनाः = दन्ताः यस्य तादृशं वदनं यस्येति बहुव्रीहिगर्भित-बहुव्रीहिः। अथवा रदनाः वदनं च यस्येति केवलो बहुव्रीहिर्वा। विविध-परि-मल-परिमर्दिताग्रया = नानासौरभपरिमथितप्रान्तया। घोणया = नासिकया। पद्मिनीदत्तदृष्टिः = पद्मिनीनिरीक्षणनिरतः।

ससाधुवादम् = 'साधु गीतम्' इत्यादिकथनपुरस्सरम्, पारितोषिकम् = प्रसन्नेन सता दीयमानम्। प्रथम-प्रहर-व्यत्यय-सूचकम् = आदिम-याम-

---

चर्वण के कारण चञ्चल दाँतों से युक्त मुख वाले मुआज़िम ने पद्मिनी को विस्फारित नेत्रों से पीते हुए से, विभिन्न सुगन्धों (इत्र आदि) से अनुलिप्त अग्रभाग वाली नासिका से सूँघते हुए से, प्रवेश किया और उस पर आँख गड़ाए हुए ही, तोशक को अलंकृत किया (बैठ गया)।

तदनन्तर मुआज़िम ने ताम्बूल, इत्र, इलायची, लवङ्ग, पत्ती सुगन्धित चूर्ण इत्यादि के आदान-प्रदान में ही कुछ समय व्यतीत कर हँसते-मुस्कराते, अनुराग दिखाते, कटाक्ष-पात करते, भौंहों को टेढ़ी करते तथा गर्दन घुमाते हुए पद्मिनी के साथ बातचीत कर कुछ देर तक उसके गीतों का आनन्द लेकर, उसके गीत की प्रशंसा करते हुए, पुरस्कार में अपने अपने गले का हार सौंपकर; रात्रि के प्रथम प्रहर के बीतने की सूचना देने वाले मुरली की तान मिश्रित भेरी शब्द को सुनकर साथियों को विदा कर, अकेला

पद्मिनीं पान-गोष्ठी-सहचार-स्वीकार-भिक्षां ययाचे। सा च स्मयमानेव लज्जमानेव सग्रीवा-भङ्गमवनत-मुखी, कपटह्रिया स्वयं स्वस्मिन्नेव निविशमाना, तूष्णीङ्कारेणैवाऽङ्गीकारमाचक्षाणा चूर्ण-कुन्तलमूलं कण्डूयितुमारेभे।

शिव०—ततः ?

माल्य०—ततो भ्रूभङ्गेन पद्मिनीसहचरानपि पुरुषान् द्वारदेशे प्रतीक्षितुमाख्याय, तेषु गतेषु द्वित्रासु पद्मिन्याश्चेटिकास्वेव वर्त्तमानासु मायाजिह्मो हाटकामत्राादुत्थाप्य पञ्चषा एलाः पद्मिन्याः करे आर्पयत्। साऽपि सखीहस्तादेकं रजत-सम्पुटमादाय, ततो वीटिकाद्वयं

समाप्ति-बोधकम्। एकाकी = अद्वितीयः। संवृत्य = भूत्वा। पानगोष्ठीसहचारस्वीकारभिक्षाम् = मद्यसभासम्मिलनाङ्गीकरणयाञ्चाम्, स्मयमानेव = ईषद्धास्यनिरतेव। अवास्तवत्वादिवोक्तिः। कपटह्रिया = कृत्रिमत्रपया। तूष्णीङ्कारेणैव = मौनेनैव, 'मौनं स्वीकारलक्षणम्' इति न्यायात्। आचक्षाणा = कथयन्ती। चूर्णकुन्तलमूलम् = कुटिलकेशमूलम्।

चेटिकासु = भृत्यासु। वर्तमानासु = तिष्ठन्तीषु। हाटकामत्रात् = सुवर्णपात्रात्। रजतसम्पुटम् = रौप्यनिर्मितं ताम्बूलाधारभाजनं लघुभूतम्।

होकर, कुछ पास पहुँचकर, धीरे से पद्मिनी से मदिरा पान की गोष्ठी में सम्मिलित होने की स्वीकृति की भिक्षा माँगी (शराब पीने में साथ देने का आग्रह किया)। वह भी मुस्कराती सी, लजाती सी, गर्दन टेढ़ी किए हुए, मुख नीचा किए बनावटी लज्जा से स्वयं अपने में ही समाती हुई, मौन से ही स्वीकृति की सूचना देती हुई अलकों के मूल भाग को खुजलाने लगी।

शिवाजी—तत्पश्चात् ?

माल्यश्रीक—तदनन्तर भौंह के संकेत से ही पद्मिनी के सहायक पुरुषों को भी द्वार पर प्रतीक्षा करने के लिए कहकर, उनके चले जाने पर पद्मिनी की दो तीन दासियों के रह जाने पर मुआज़िम ने स्वर्ण पात्र से पाँच छः इलायचियाँ निकाल कर पद्मिनी के हाथ में समर्पित की। पद्मिनी ने भी एक

सुवासितं पूग-चूर्णं ताम्रक-सार-लेहं च तस्मै प्रायच्छत् ।

शिव०—साधितं पद्मिन्या । ततः ?

माल्य०—भगवन् ! स तु वीटिकामास्वादयन्नेव प्रेम—वार्ता विदधदेव, शनैः शनैस्तन्द्रा-परवश इव, विनैव मैरेय-शराव-चुम्बनं मदपराधीन इव, उपबर्हं पृष्ठेनाऽऽश्रयीकृत्य, शनैः शिरोऽपि तस्मिन् समासज्य निद्रापरवशोऽभूत् ।

पद्मिनी तु मूर्च्छक—महौषध-मिश्रितं किञ्चित् परिमलं नासा-पुटयोः संयोज्य तमधिकं मूर्छयित्वा, तस्य वस्त्राण्यपहृत्य स्वकीयेनांशुकेन तदङ्गमावृत्य, स्वयं च पोटलिकास्थेनाऽपरेण दासीयोग्येन वाससा

ताम्रकसारलेहम् = "किमाम" इति प्रसिद्धं ताम्बूलोपयोगिद्रव्यम् ।

तन्द्रा = निद्रापूर्वरूपम्, आलस्यविशेषात्मकम् । मदपराधीन इव = मद-वशग इव । तस्मिन् = उपबर्हे । समासज्य = संयोज्य ।

मूर्च्छकम् = मूर्छाजनकम्, यत् महौषधम् = श्रेष्ठौषधिः, तन्मिश्रितम् = तत्संपृक्तम् । परिमलम् = सुगन्धिद्रव्यम् । अपहृत्य = दूरयित्वा ।

सखी के हाथ से चाँदी की पिटारी लेकर, उसमें से पान के दो बीड़े, सुगन्धित सुपारी का चूर्ण तथा किमाम मुआज़िम को प्रदान किया ।

शिवाजी—पद्मिनी ने काम बना लिया । फिर ?

माल्यश्रीक—महाराज ! वह पान का बीड़ा खाते-खाते ही, प्रेमालाप करते-करते ही, धीरे-धीरे आलस्य के वशीभूत हुआ सा, मदिरा का प्याला अधरों से लगाए विना ही मतवाला सा, मसनद का सहारा लेकर, मसनद पर पीठ रखे हुए, कुछदेर बाद सिर को भी धीरे से उसी (मसनद) पर रखकर सो गया ।

पद्मिनी ने इसकी नाक में मूर्च्छित करने वाली महौषधि से युक्त कोई सुगन्ध लगाकर उसको और अधिक मूर्च्छित कर उसके कपड़ों को उतार कर, अपने कपड़ो से उसे ढककर, तथा स्वयं पोटली में रखे हुए दासियों के

दासीभूय, बहुरूपविद्यया क्षणेन स्वाकृतिं तदाकृतिं च परिवर्त्य माया-जिह्मपटैरुपवर्हमेकं संश्रृङ्गार्य शाययित्वा, उत्तरीयेण चैकत आच्छाद्य, चेटीभिः सह कलित-पद्मिनी-वेषं मायाजिह्ममुत्थाप्य, बहिरानीय, पश्यतामेव भ्रान्तानां द्वारपालानाम्—"अहो! महानद्य विहितः सरकः, कादम्बरीयमतितीक्ष्णा, अवदंशमप्यास्वादयितुं न पारयसि, प्रविश, शेष्व पालङ्क्यामेव"—इति सहचरीरालपन्ती शिविकायामतिष्ठिपत्।

एका चेटी द्वारपालमेकं शनैरकथयत्—"अत्रभवान् युवराजः शेते,

अंशुकेन = प्रावरकेण। वाससा। दासीभूय = दासीनेपथ्यभूषिता भूत्वा, बहुरूपविद्यया = अनेकस्वरूपधारणकलया। क्षणेन, एतेन तद्विद्यायामतिपाटवं बोधयति। परिवर्त्य = विनिमयं कृत्वा। उपवर्हम् = उपधानम्। संश्रृङ्गार्य=अलङ्कृतं विधाय। शाययित्वा = प्रस्वाप्य। आच्छाद्य = सङ्गोप्य। भ्रान्तानाम् = भ्रमे निपतितानाम्। द्वारपालानामित्यत्र "षष्ठी चानादरे" इति षष्ठी। सरकः = सुरापानम्। कादम्बरी = वारुणी। अवदंशम् = भक्षणम्, "अवदंशस्तु भक्षणम्" इत्यमरः। मद्येन सह भक्ष्यमाणं व्यञ्जनादि। शेष्व = स्वपिहि। पालङ्क्याम् = शिविकायाम्। सहचरीः = चेटीः। आलपन्ती = कथयन्ती। अतिष्ठिपत् = अस्थापयत्। गृहीतदासीनेपथ्या कर्त्री, ग्राहित-पद्मिनीवेषा च कर्मत्वाश्रयीभूतेति वेदितव्यम्।

योग्य वस्त्रों को धारण कर दासी का वेष बनाकर, वेषपरिवर्तन की विद्या से क्षणभर में ही उसकी तथा अपनी आकृति को बदल कर, उसके कपड़ों से एक मसनद को सजाकर, लिटाकर और एक चादर से एक ओर ढककर, दासियों के साथ, पद्मिनी का वेष बनाए मुआज़िम को उठाकर बाहर लाकर, भ्रम में पड़े हुए द्वारपालों के देखते-देखते ही "अहा! आज बहुत मद्यपान हुआ, यह शराब बहुत तेज है, अधिक पी जाने के कारण आप भोजन का भी आनन्द नहीं ले पा रही हैं, प्रवेश कीजिए, पालकी में ही सो जाइए" इस प्रकार कहते हुए उस दासी का वेष धारण किए हुए गौरसिंह ने पद्मिनी (के वेष में मुआज़िम) को पालकी में डाल (बिठा) दिया। एक दासी ने एक द्वारपाल से धीरे से कहा : "शाहज़ादा

तद् निर्मक्षिकमेव विधेयं भवद्भिः" । स च "अस्माकमन्तः प्रवेष्टुं नाऽधिकारः, वयं नग्नचन्द्रहासा अत्रैव पर्य्यटितुं नियुक्ताः" इत्युदतारीत् ।

वाहकाश्च पल्यङ्कीमुत्थाप्य 'चल चले'ति चेलुः, अनुचराश्च सहैव 'गच्छत गच्छते'ति जग्मुः ।

शिव०—[आकाशे दृष्टिं बध्वा] धिक् त्वां रे मायाजिह्म ! सम्यग् गृहीतोऽसि !

माल्य०— भगवन् ! ततो नल्व–द्वयान्तराले प्रतीक्षमाणानश्वानारुह्य त्यक्त–चेटी–वादकादि–वेषा वीराः सावधानतया मायाजिह्ममभुं ब्रह्मचारि–कुटीरे समानीतवन्तः सन्ति । तदत्र प्रभुचरणा एव प्रमाणम् ।

मक्षिकाणामभावो **निर्मक्षिकम्** = जनसञ्चारशून्यम् । **अन्तःप्रवेष्टुम्** = अन्तराले गन्तुम् । **नियुक्ताः** = अधिकृताः । **उदतारीत्** = उत्तरयाम्बभूव ।

नल्वयोः = चतुश्शतहस्तमितदेशयोः, "नल्वः किष्कुचतुश्शतमि"त्यमरः, द्वयम्, तदन्तराले ।

सो रहे हैं, अतः आप लोग वहाँ न जाएँ" । द्वारपाल ने उत्तर देते हुए कहा कि "हमलोगों को भीतर प्रवेश करने का अधिकार नहीं है । हमलोग नंगी तलवार लेकर यहीं टलहने के लिए नियुक्त हैं ।"

पालकी ढोने वाले पालकी उठाकर 'चलो-चलो' कहते हुए चल दिए, और अनुचर भी 'चलो-चलो' कहकर साथ ही चले गए ।

शिवाजी—(आकाश की ओर दृष्टि लगाकर) अरे मुआज़िम ! तुम्हें धिक्कार हैं पूरी तौर से पकड़ में आ गए ।

माल्यश्रीक—महाराज ! वहाँ से दो नल्व (आठ सौ हाथ) की दूरी पर प्रतीक्षा कर रहे अश्वों पर आरूढ होकर, दासी तथा तवलची आदि का वेष छोड़कर हमारे वीर सैनिक सावधानी से उसे (मुआज़िम को) ब्रह्मचारियों की कुटी में ले आए हैं । अव श्रीमान् की जैसी इच्छा हो ।

शिव०—अथ काऽवस्था तत्सेनासन्निवेशस्य ?

माल्य०—वीर ! प्रातरेव ते प्रनष्टं मायाजिह्ममालोक्य, विवर्णाः पृष्ठत एव प्रस्थितवन्त इत्यश्रौषम्।

शिव०—अथासौ माया-भवने स्थापनीयो भोजनासनादिभिश्च सत्कारणीयः, अहमेनमवसरे द्रक्ष्यामि ।

अथोमित्युक्त्वा कुटीराभिमुखं प्रस्थिते माल्यश्रीके, सिंहदुर्गाभिमुखं च पुनः प्रचलति महाराष्ट्रभूपरिवृढे, पश्चिमघट्ट-महापर्वत-श्रेणीतः समुत्तीर्य, समुद्धूत-ध्वजाः सन्देशहराः पञ्च सादिनः फेनाविलवल्गैः, ह्रेषा-विहित जयध्वनि-प्रातिनिध्यैः, सचामरैरिवोत्थितपुच्छैः,

---

प्रनष्टम् = अदर्शनतां गतम् "नशेः षान्तस्ये"ति णत्वनिषेधः। विवर्णाः = म्लानाः । दुःखिन इति यावत् । मायाभवने = कूटागारे ।

अथ ओम् = ततः स्वीकृत्य । "ओमाङोश्च" इति पररूपम्। महाराष्ट्र-भुवः परिवृढे = प्रभौ । पश्चिमघट्टे = "घाटी" इति हिन्दी । ये महान्तः पर्वताः, तेषां श्रेणीतः = परम्परातः, समुद्धूतध्वजाः = समुच्चालितवैजयन्तीकाः । फेनाविलवल्गैः = डिण्डीरसपृक्तकविकाभिः । ह्रेषया = हिणत्कारेण, विहितं जयध्वनिप्रातिनिध्यं यैस्तैः । उत्थितपुच्छैः, उत्थितं पुच्छम् = लाङ्गूलं येषां

शिवाजी—और उसके सैन्य शिविर की क्या दशा है ?

माल्यश्रीक—महाराज ! उसके सैनिक प्रातःकाल उसे (मुआज़िम को) मरा हुआ समझकर उदासीन होकर पीछे की ओर ही लौट गए, ऐसा सुना है।

शिवाजी—उसे कूटागार में रखा जाए, तथा भोजन और आसन आदि से सम्मानित किया जाए । मैं अवसर आने पर उससे मिलूँगा ।

तदनन्तर "अच्छा" कहकर माल्यश्रीक के कुटी की ओर प्रस्थान करते ही तथा शिवाजी के पुनः सिंहदुर्ग की ओर चलते ही, पश्चिम की घाटी की विशाल पर्वत श्रेणी से उतरकर, पताका फहराते हुए, सन्देश-वाहक पाँच अश्वारोही फेन से भीगी लगाम वाले, हिनहिनाहट से जय-ध्वनि का प्रतिनिधित्व करने वाले, पूँछ उठाए चामरयुक्त से, कानों को उठाए

कलित-कमल-दल-द्वयैरिवोर्ध्वकर्णैः, हर्ष-वर्ष-स्नातैरिव स्विन्नैः, घोट-कैर्धावमाना दूरादेव 'जय जये'ति वादिनः पञ्च सादिनः समागताः। कोङ्कणेश्वरश्च तान् समासादित-शुभ-संवादानवगत्य, निजाजानेय-रश्मिमाकृष्य स्वगतिं निरुरोध, भ्रूसंज्ञयैव च किमिति पप्रच्छ। तेषु जयध्वनि-धाराभिर्धराधरं धाराधरं धरां च ध्वनयत्सु, तेषामेकः समुपसृत्य साञ्जलि-बन्धं प्रणम्य प्रावोचत्—

"भगवन्! विजयस्व, विजयस्व, सर्वोऽपि खान-देशः, सकलोऽपि च पोत-परम्परा-प्रधावमान—सांयात्रिक-सकौतुक-वीक्षित—पारावार-वीचि-व्रज-मार्जितः कोङ्कणदेशः श्रीचरणानां हस्तगतः सम्पन्नः।

तैः। सचामरैरिवेत्युत्प्रेक्षा। कलितकमलद्वयैरिव=धारितपद्मद्वितयैरिवेत्युत्प्रेक्षा। ऊर्ध्वकर्णैः=उद्गतश्रोत्रैः। हर्षवर्षस्नातैरिव=आनन्दवृष्टिनिर्णिक्तैरिव। पञ्च सादिनः=पञ्च सङ्ख्याका अश्वारोहाः। समासादितशुभसंवादान्=समानीतहर्षसदेशान्। अवगत्य=बुद्ध्वा। धरा धरम्=पर्वतम्। धाराधरम्=जलधरम्। धराम्=पृथिवीम्। समुपसृत्य=अन्तिकमागत्य।

पोतपरम्पराभिः=नौकाश्रेणीभिः, प्रधावमानैः=शीघ्रगतिभिः, सांयात्रिकैः=पोतवणिग्भिः, सकौतुकम्=सकौतूहलम्, वीक्षितः=दृष्टः। पारा-

---

हुए कमल की दो पंखुड़ियाँ धारण किए हुए से आनन्द की वर्षा से स्नान किए हुए के समान पसीने से भींगे घोड़ों पर बैठे हुए उन्हें दौड़ाते हुए, दूर से ही जय-जय करते आ गए। कोङ्कणेश्वर (शिवाजी) ने उन्हें शुभ समाचार लाने वाले समझ कर अपने घोड़े की लगाम खींचकर अपनी गति को रोक दिया और भौंह के संकेत से ही 'क्या है?' यह पूछा। उन्होंने जयध्वनि की धारा से पर्वत मेघ और पृथ्वी को गुंजा दिया, और उनमें से एक शिवाजी के पास पहुँचकर हाथ जोड़कर प्रणामकर बोला—

"महाराज की जय हो, महाराज की जय हो। सम्पूर्ण खान देश आपके अधीन हो गया है। जहाजों पर बैठकर तीव्रगति से (समुद्र में) गमन करने वाले समुद्री व्यापारियों द्वारा कुतूहल पूर्वक देखी जाने वाली समुद्र की लहरों के समूह से प्रक्षालित कोंकण देश भी सारा का सारा आपके अधिकार में आ

सागर-संसर्पि-प्लव-कूपकानां मस्तकेष्वपि महाराष्ट्रमण्डलाऽऽख-ण्डलस्यैव जय-पताका गगन-तलं विलोडयन्ति । विजयतां विजयतां विजयतां महाराजः । सेनापतिना पत्रमिदमर्पितम्" इति कक्ष-गुटिकातो निस्सार्य पत्रमेकमार्पयत् ।

शिव०—[पत्रावरणमुन्मुञ्चन्] अपि जानास्यवस्थां सुरतयुद्धस्य ?

सन्देशहरः—विजयतां भट्टारकः । एकेनैवाह्ना विजिताः सर्वेऽपि भारतद्रुहः । साम्प्रतं सुरत–नगरस्यापि गृहे गृहे चत्वरे चत्वरे प्राङ्गणे प्राङ्गणे च देवस्यैव विक्रम-कथा जेगीयते ।

वारवीचिव्रजमार्जितः=जलधिलहरिव्रातधौतः । सागरे संसर्पिणाम् = संसरताम् । प्लवानाम् = पोतानाम् , ये कूपकाः = "गुणवृक्षकाः" इत्यमरः । "मस्तूल" इति हिन्दी । "जयपताकाः = विजयवैजयन्त्यः । विलोडयन्ति = सङ्घर्षयन्ति । कक्षगुटिकातः = वाहुमूलस्थपोटलिकातः ।

पत्रावरणम्="लिफाफा" इति प्रसिद्धम् । सुरते=गुर्जरदेशैकदेशे "सूरत"–इति नाम्नाऽधुना प्रसिद्धे, यद् युद्धं तस्य ।

भट्टारकः=स्वामी । अह्ना = दिवसेन । देवस्य = भवतः । विक्रमकथा=

गया है । समुद्र में चलने वाले पोतों के मस्तूलों के ऊपर महाराष्ट्र देश के अधिपति आपकी ही विजयपताकाएँ आकाश तल को विलोडित कर रही हैं। महाराज की जय हो, जय हो, जय हो । सेनापति ने यह पत्र दिया है, "

यह कहते हुए उस अश्वारोही ने अपनी काँख से दवी पोटली से एक पत्र निकाल कर शिवाजी को दिया ।

शिवाजी—[लिफ़ाफ़ा खोलते हुए] सूरत के युद्ध की स्थिति जानते हो ?

सन्देशवाहक—महाराज की जय हो । एक ही दिन में सभी भारतद्रोही जीत लिए गए । इस समय सूरत नगर के भी घर-घर, चबूतरे-चबूतरे तथा आँगन-आँगन में आपकी ही वीरता की गाथाएँ गाई जा रही हैं ।

लप्स्यत उत्तरपत्रम्" इति कथयित्वा, इङ्गितज्ञैः, समीरं ग्रसद्भिरिव विपदङ्गणरिङ्गणमीहमानैरिव तुरङ्गैः सपदि सिंहदुर्गमायातः।

* * *

संन्यासिकुटीरे तु दिल्लीश्वर-तनयं तथाऽऽनीतमालोक्य, ब्रह्मचारिगुरुणा सह सर्वेऽपि तत्पार्श्वस्था मुमुदिरे। गौरं च पर्य्यायतः सर्वेऽपि सानन्दं परिषस्वजिरे। गौरस्तु सुप्तस्यैव तस्य पुरुषरूपं परिवर्तयामास।

तस्मिन् गततन्द्रे च सर्वेऽपि सादरं "जय जीव" इति कथयन्तः, "आज्ञप्यतां काऽपि सेवा दिल्ली-वल्लभ–कुमारेण" इति प्रोचुः।

लप्स्यते = प्राप्स्यते। इङ्गितज्ञैः = अभिप्रायवेदिभिः। समीरम् = वायुम्। ग्रसद्भिः = लिहद्भिः। वायुतोऽप्यधिकत्वरितगतिभिरिति यावत्। विपदङ्गणे = विपत्तिचत्वरे, रिङ्गणम् = भ्रमणम्, ईहमानैः = चेष्टमानैः, तुरङ्गैः = घोटकैः।

× × ×

पर्य्यायतः = क्रमतः। परिषस्वजिरे = पर्याशिश्लिषुः। पुरुषरूपम् = नरनेपथ्यम्।

गततन्द्रे = विनष्टमोहे, विधूतालस्ये। आज्ञप्यताम् = आदिश्यताम्।

इस पत्र का उत्तर तुम्हें सिंह दुर्ग में दिया जायेगा", यह कहकर संकेत समझने वाले, (वायु से भी अधिक तेज चलने के कारण) वायु को ग्रसित करते हुए से, आकाश के आँगन में विचरण करने की इच्छा करते हुए से घोड़ों पर सवार (साथियों के साथ शिवाजी) शीघ्र ही सिंह दुर्ग पहुँच गए।

* * * *

संन्यासियों की कुटी में दिल्लीश्वर के पुत्र को उस प्रकार लाया हुआ देखकर ब्रह्मचारियों के गुरु सहित पास में बैठे सभी लोग प्रसन्न हुए। और सभी ने वारी-वारी से प्रेमपूर्वक गौरसिंह का आलिङ्गन किया। मुआजिम के सोते ही सोते गौरसिंह ने उसकी पद्मिनी की आकृति पुरुष की आकृति में बदल दी।

उसकी तन्द्रा समाप्त होने पर सभी आदरपूर्वक 'जय जीव' कहते हुए "दिल्लीश्वर के कुमार कोई आज्ञा दें" यह बोले।

स च वारं वारमाश्चर्यपुषी तन्द्रा–सम्पर्क–जुषी चक्षुषी चिरा–ऽऽलस्य–मन्थराभ्यां हस्ताभ्यां सम्मर्द्य; क्षणमात्मानम्, क्षणं कुटीरम्, क्षणं परितः परिसर्पिणो जनान्, क्षणं सान्द्र–श्यामता–श्यामीकृत-दिग्वलय वनम्, क्षणं च क्वचन कलित–विकोश–खड्गैर्भटैः, क्वचन ब्रह्मपाठ-परैर्ब्रह्मचारिभिः, क्वचन श्मश्रु-कूर्च-केश-जाल-जटालैर्जटिलैः, क्वचन बाहुयुद्धमभ्यस्यद्भिः खड्ग-चालन-चातुरीमासादयद्भिर्व्यायामो-त्तेजितोच्छ्वासैर्धूलि-धूसरैः पटुभिर्वटुभिर्विहितविविधक्रीडं शाद्वलम्, क्वचन सदक्षाऽक्षिकुञ्चनं भुशुण्डीमुत्तोलमुत्तोलं चिञ्चा-

"मितां ह्रस्वः" इति ह्रस्वः। आश्चर्यपुषी=विस्मयाकुले। तन्द्रा-सम्पर्क-जुषी= निद्राद्यवस्थासंसर्गसेविके। चिरालस्येन मन्थराभ्याम् = शिथिलप्रायाभ्याम्। सम्मर्द्य = मर्दनं विधाय। आत्मानम् = स्वम्। परिसर्पिणः = गच्छतः। सान्द्रया = घनीभूतया, श्यामतया = कार्ष्ण्येन, श्यामीकृतम् = कृष्णता-मापादितम्, दिग्वलयम् = हरित्समूहो यस्मिंस्तादृशम्। कलितविकोश-खड्गैः = धारितनग्नाऽसिभिः। ब्रह्मपाठपरैः = वेदाध्ययननिरतैः। जटिलैः= जटायुतैः साधुभिः। बाहुयुद्धम् = नियुद्धम्, "कुस्ती" इति प्रसिद्धम्। आसादयद्भिः = प्राप्नुवद्भिः। व्यायामोत्तेजितोच्छ्वासैः=शरीरपुष्टयर्थक-विधिविशेषवर्धितोच्छ्वासैः। सदक्षाक्षिकुञ्चनम् = दक्षिणनयनसङ्कोचनपुर-

मुआज़िम भी आश्चर्य चकित और अलसाई आँखों को बहुत देर के आलस्य के कारण शिथिल हाथों से बार-बार मलता हुआ, कभी अपने को, कभी कुटी को, कभी चारों ओर चलते फिरते लोगों को, कभी घनी श्यामलता से दिङ्मण्डल को श्यामल करनेवाले वन को, और कभी कहीं नंगी तलवार लिए वीरों, कहीं वेदपाठ में तल्लीन ब्रह्मचारियों, कहीं दाढ़ी मूँछ और सिर के बालों के जाल वाले जटाधारियों, और कहीं कुश्ती का अभ्यास कर रहे, तलवार चलाने में कुशलता प्राप्त कर रहे, व्यायाम करने के कारण लम्बी उच्छ्वास छोड़ रहे धूलि से धूसर हुए कुशल ब्रह्मचारियों की विविध प्रकार की क्रीडाओं के आश्रय भूत घास के मैदान को, और

किशलयाग्रेषु लक्ष्यमनुसन्दधतो वीरांश्चाऽऽलोकमालोकं चकितचकितो भीतभीतो लज्जितलज्जितो वाचंयम एवाऽवर्तिष्ट।

तावदागत्य माल्यश्रीको गौरमालिङ्ग्य मुहुर्तमालप्य युवराजमपि "श्रीमतो निवासाय प्रासाद एकोऽतिरुचिरः प्रस्तुतोऽस्तीति शिविकां सज्जीकृत्याऽऽनीतवानस्मि, करुणया सनाथ्यताम्। तत्रैव च यथोचित-सेवाऽऽदेशैरस्मादृशोऽनुगृह्यतां च" इति सादरमालपत्।

स तु हाटक–करहाट–च्छवि–कपोलो लोलतारको मुखमवनमय्य,

स्सरम्। उत्तोलमुत्तोलम् = उत्थाप्योत्थाप्य। चिञ्चाकिसलयाग्रेषु = तिन्तिडीदलाग्रेषु। लक्ष्यम् = शरव्यम्। चिञ्चादलानां तनुत्वात् तान्येव लक्ष्यतां नीत्वा प्रावीण्यं लब्धुमभिलपन्तीति भावः। अनुसन्दधतः = गवेषयमाणान्। वाचयमः = मौनी। अवर्तिष्ट = स्थितः।

आलिङ्ग्य = आश्लिष्य। प्रासादः = हर्म्यम्। करुणया = दयया। सव्यङ्ग्यं विनयप्रदर्शनम्। यथोचितसेवादेशैः = यथायोग्यशुश्रूषणादेशैः। अनुगृह्यताम् = अनुग्रहपात्रं क्रियताम्।

हाटक–करहाट–च्छवि–कपोलः=सुवर्ण-शिफाकन्दक-कान्तिकगण्डस्थलः।

कहीं दाहिनी आँख बन्द कर बन्दूक उठा-उठा कर इमली की कोंपलों के किनारों पर निशाना साधते हुए वीरों को देख-देख कर अत्यन्त चकित भयभीत और लज्जित होकर मौन ही साधे रहा (चुप ही बैठा रहा)।

तब तक माल्यश्रीक ने आकर गौरसिंह का आलिङ्गन कर कुछ देर बात करके आदर पूर्वक शहज़ादा मुआज़िम से कहा—

"श्रीमान के निवास के लिए एक अत्यन्त सुन्दर प्रासाद प्रस्तुत है। मैं पालकी सजाकर ले आया हूँ, कृपा कर उस प्रासाद को अलंकृत कीजिए, और वहीं पर उपयुक्त सेवा के लिए आदेश देकर हम जैसों पर अनुग्रह कीजिए।

स्वर्णिम कमलनाल की कान्ति वाले कपोलों वाले चञ्चल पुतलियों वाले

विविधभाव-भावना-भङ्ग-भज्यमान-भावो नोमिति, अथ वा नेति अचकथत्, तन्निर्दिष्टां शिबिकामेव चाऽऽरोहत् ।

एवं तं सह नीत्वा याते माल्यश्रीके, शाद्वले कटमास्तीर्योपविष्टेषु सब्रह्मचारिगुरुषु तत्रत्येष्वखिलेषु, प्रजागर-मन्थरोऽपि क्रियासमभिहारेणाऽऽहूयमानो गौरसिंहस्तत्राऽऽगत्य गोष्ठीमध्यं भेजे ।

कथमिव किमिव संवृत्तं गतयामिन्याम् ? कैः कौशलैः काभिर्मायाभिः कैरुपायैः काभिर्विद्याभिः कैर्नियोगैः काभिः प्रवञ्चनाभिः कैः प्रकारैः काभिश्च घटनाभिः आनीतवानसि मायाजिह्ममेतम् ?

"कराहटः शिफाकन्दः" इत्यमरः । पीतगण्डस्थल इति यावत् । विविधभावानाम् = अनेकविधविचाराणाम्, भावनानाम् = वासनानाम्, भङ्गेन = तरङ्गेण, भज्यमानः = खण्ड्यमानः, भावः = अभिप्रायो यस्य सः । नानाप्रकारविचाराऽऽविर्भावतिरोभावाभ्यां अप्रकटितनिजाभिप्राय इति भावः । तन्निर्दिष्टाम् = तत्प्रदर्शिताम् ।

प्रजागरेण = दीर्घया जागृत्या, मन्थरः = अलसः । क्रियासमभिहारेण = पौनःपुन्येन । आहूयमानः = आकार्यमाणः । भेजे = सिषेवे ।

कौशलैः = चातुर्यैः । मायाभिः = छलैः । नियोगैः = अनुष्ठानैः । प्रवञ्च-

---

और अनेक भावनाओं की तंरगों से खण्डित विचारों वाले मुआज़िम ने भी न तो हाँ कहा, और न नहीं कहा । केवल मुख नीचे करके माल्यश्रीक द्वारा निर्दिष्ट पालकी पर सवार हो गया ।

इस प्रकार मुआजिम को साथ लेकर माल्यश्रीक के चले जाने पर घास पर चटाई बिछाकर वहाँ रहने वाले सभी ब्रह्मचारियों एवं गुरुओं के बैठ जाने पर जागरण से शिथिल होते हुए भी बार-बार बुलाने पर वहाँ पहुँच कर गौरसिंह गोष्ठी के बीच में बैठ गया ।

"विगत रात्रि में कैसे क्या हुआ ? तुम इस मुआजिम को किस कुशलता से, किन मायाओं से, किन उपायों से, किन विद्याओं से, किन क्रियाओं से, किन प्रवञ्चनाओं से, किन तरीकों से और किन घटनाओं से, ले आए हो ?

कथं दीपोद्योत-विद्योत-चतुर्गुणित—चाकचक्य—चञ्चचचन्द्रहास—भासा भयानकानां प्रहरिणां चक्षु:षु रेणुका—राशिमाहितवानसि ?, कथं वा गगनोद्भेदाभ्यासेनेव निशिततरैर्वाताऽऽघात-क्षालितैरिव चमत्कुर्वद्भिः परितः प्रसर्पिभिर्मयूख-पूरैरिव विहिताऽऽतपत्र-विडम्बनैर्भल्लैर्भयङ्कर-करान् प्रतीहारान् मोहितवानसि ? इति सकुतूहलं सोल्लासं सादरं साश्चर्यं च पृष्टवत्सु तेषु, सङ्क्षिप्यैष "एवमेवमि"ति सर्वं यथातथं सूचितवान् । तदाकर्ण्य साधुवादवर्षैः कुटीरमापूरयत्स्वखिलेषु, ब्रह्मचारिगुरुराह—"कथं न स्याः ? परमवीरवरस्य खङ्गसिंहस्य

नाभिः = प्रतारणाभिः । दीपोद्योतस्य = दीपप्रकाशस्य, विद्योतेन = प्रभया, चतुर्गुणितचाकचक्यानाम् = वृद्धिङ्गतचमत्कृतीनाम्, चञ्चताम्, चन्द्र-हासानाम् = खङ्गानाम्, भासा = तेजसा, भयानकानाम् = भीतिप्रदानाम्। प्रहरिणाम् = यामिकानाम् । रेणुकाराशिम् = धूलिनिकरम् । आहितवान् =दत्तवान् । "आँख में धूल झोंका" इति हिन्दी । गगनोद्भेदाभ्यासेनेव = नभोमण्डल-विदारणपरिशीलनेनेव । निशिततरैः=अतितीक्ष्णैः । वाताघात-क्षालितैरिव=वायुताडननिर्णिक्तैरिव । मयूखपूरैः=दीधितिव्रजैः। विहितातपत्र-विडम्बनैः = कृतच्छत्रानुकृतिभिः, भल्लैः = अस्त्रविशेषैः । भयङ्करकरान् = भयानकहस्तान् । सोल्लासम् = सहर्षम् । सङ्क्षिप्य = तनूकृत्य । साधुवाद-

दीप के प्रकाश की प्रभा के कारण चौगुनी चकाचौंध उत्पन्न करने वाली चञ्चल तलवारों की चमक से भयानक दिखाई पड़ने वाले पहरेदारों की आँखों में तुमने धूल कैसे झोंक दी ? और मानों आकाश को चीरने के अभ्यास से तीक्ष्णतर, मानों वायु के आघात से धुले हुए, चमकते हुए, चारों ओर फैल रही किरणों के समूह से छातों का तिरस्कार करने वाले भालों को लिये होने से भयङ्कर पहरेदारों को कैसे मोहित कर लिया ?"

इस प्रकार सभी लोगों के कुतूहलपूर्वक, उल्लासपूर्वक, आदरसहित और आश्चर्य से पूछने पर गौरसिंह ने संक्षेप में यह "इस प्रकार हुआ" यह बताते हुए सारा वृत्तान्त ज्यों का त्यों कह सुनाया । उसे सुन कर सब ने कुटी को प्रशंसात्मक वाक्यों से गूँजा दिया । ब्रह्मचारिगुरु ने कहा—

पुत्रोऽसि, पिता तव बाल्य एव व्याघ्रमृगया–व्यसनी समभूत्, यौवने च बहुभिश्चतुर्गुणबलैरयुध्यत, वार्द्धके च रणाजिर एव वीरगतिं गतो मार्तण्ड-मण्डलं भित्त्वा नन्दनवनविहारमाससाद ।"

ततस्तु अतिकुतूहल-समाविष्टेन गौरेण सह तस्यैवमभूवन् वाचां प्रचाराः—

गौर०—अपि मम तातचरणैः सहाऽऽसीदार्याणां परिचयः ?

ब्रह्मचारिगुरुः—[किञ्चिद् निःश्वस्य] आसीदतितराम् ।

गौरः—[अधिकाधिक-कौतुक-ग्रस्तानामखिलानां मुखमवलोक्य]

आर्य ! क्षम्यतां प्रौढिरेतस्य भवदनुकम्पापात्रस्य। एष चिररात्राय भवन्तं ब्रह्मचारिगुरुनामधेयं महाराष्ट्रराजस्य शुभोदयोदर्काभिलाषिणं

वर्षैः = धन्यवादवृष्टिभिः । आपूरयत्सु = ध्वनयत्सु । व्याघ्रमृगयाव्यसनी= व्याघ्राखेटनिरतः । वार्द्धके = वृद्धावस्थायाम् । रणाजिरे = सङ्ग्रामाङ्गणे । मार्त्तण्डमण्डलम् = भानुबिम्बम् । भित्त्वा = द्विधा कृत्वा । तत एव मार्गादित्यर्थः । नन्दन-वन-विहारम् = इन्द्रकाननक्रीडाम् । आससाद = प्राप ।

अतितराम् = अत्यन्तमधिकम् ।

प्रौढिः = धाष्टर्यम् । चिररात्राय = चिरम् । ब्रह्मचारिगुरुः इति नामधेयं यस्य तम् । न तु नामान्तरं किमप्यस्ति विज्ञातमस्माभिः । शुभोदयोदर्का-

---

"क्यों न हो, परमवीर खड्गसिंह के पुत्र हो । तुम्हारे पिता बचपन में ही शेर का शिकार किया करते थे । युवावस्था में उन्होंने अनेक बार चौगुने बलवालों से युद्ध किया था और वृद्धावस्था में रणभूमि में ही वीर गति प्राप्त कर सूर्य-मण्डल को भेद कर नन्दन वन की सैर की ।"

तदनन्तर अत्यन्त कुतूहलाक्रान्त गौरसिंह के साथ ब्रह्मचारिगुरु की इस प्रकार बातें हुईं—

गौरसिंह—क्या मेरे पिता से आप का परिचय था ?

ब्रह्मचारिगुरु—[निःश्वास पूर्वक] हाँ, बहुत अधिक परिचय था ।

गौरसिंह—[सभी के अत्यधिक उत्सुकता-पूर्ण मुखों की ओर देखकर] आर्य ! अपने इस कृपापात्र की धृष्टता क्षमा कीजिये । मैं बहुत दिनों से आप को ब्रह्मचारिगुरु नामक महाराष्ट्रनरेश के भावी अभ्युदय की कामना वाला

कोङ्कण–पृथिवी-परिवृढस्य परमस्नेहपात्रं विक्रम-व्यापार-व्यत्यायित-यौवनं सदा सदाचार-प्रचार-परं हविष्यभोजनं विविध-देवाऽऽराधना-ऽनुष्ठानैकतानं कञ्चन क्षत्रिय–कुल–कलशं मन्यते ।

महाराष्ट्रभाषां चैवं मधुरतया सुस्पष्टमुच्चार्य्याऽऽलपति भवान्, यन्न भवत्यल्पीयस्यपि मे विचिकित्सा भवतो महाराष्ट्रदेशीयत्वे । महाराष्ट्रदेशीयमहाशयेन च सहोदयपुरनिवासिनो मम तातपादस्य दुर्घटः परिचयः । तद् यावद् विशकलय्य नोच्यते, तावन्न शाम्यत्युद्वेगः शङ्कापङ्कपङ्किलस्य हृदयस्य । तद् यदि नाम न भवेत् किमपि गोप-

---

भिलाषिणम् = उत्तरकालिकाभ्युदयकामनावन्तम् । "उदर्कः फलमुत्तरम्" इत्यमरः । कोङ्कणपृथिवीपरिवृढस्य = कोङ्कणधराधिनाथस्य । विक्रम-व्यापारेषु=पराक्रमकर्त्तव्येषु, व्यत्यायितम् = क्षपितम्, यौवनं येन तम् । सदा = सर्वस्मिन् काले । सताम्, आचाराणाम्, प्रचारपरम् = विवर्धनरतम् । विविधानाम् = अनेकेषाम्, देवानाम् = हनूमन्महादेवादीनाम्, आराधने = सेवायाम्, अनुष्ठाने = मन्त्रादिजपे, एकतानम् = तत्परम्, "एकतानोऽनन्य-वृत्तिः" इत्यमरः । विविधपदस्य आराधनानुष्ठानान्यतरविशेषणत्वं वा । क्षत्रिय-कुलकलशम् = क्षात्रान्वयावतंसम् ।

अल्पीयसी = अतिन्यूना । विचिकित्सा = संशयः । दुर्घटः = दुःखेन भवितुं योग्यः । विशकलय्य = स्पष्टीकृत्य । उद्वेगः = मानसमौत्सुक्यं जिज्ञासा-

---

कोङ्कण देश के नरेश का परम-प्रेम-पात्र, बहादुरी के कामों में यौवन को व्यतीत करने वाला निरन्तर सदाचार के प्रचार में तत्पर, हविष्यान्न का भोजन करने वाला तथा अनेक देवताओं की आराधना और अनुष्ठान में तल्लीन क्षत्रिय कुल का कलश (भूषण) समझता हूँ ।

और आप मराठीभाषा इस प्रकार मधुर एवं स्पष्ट उच्चारण करके बोलते हैं कि आप के महाराष्ट्रीय होने में मुझे जरा भी संशय नहीं होता । महाराष्ट्र में रहने वाले आप के साथ उदयपुर के निवासी मेरे पिता जी का परिचय होना कठिन है । अतः जब तक आप स्पष्ट करके विस्तार से सारी बातें नहीं बतायेंगे, तब तक सन्देह के कीचड़ में फँसे हुए मेरे हृदय का उद्वेग शान्त नहीं होगा । तो

नीयं नीतिविरुद्धं वा, तन्मादृशानुचरानुरोधात् कृपया निर्वचनीयोऽयं वृत्तान्तः'' इत्यभिधाय मौनमाकलयति गौरे, सकुतूहलमेकाग्रेषु चाखिलेषु, क्षणं स्थिरीभूय, उच्छ्वस्य च समारभत व्याहर्तुं ब्रह्मचारिगुरुः।

ब्रह्म०—नास्म्यहं महाराष्ट्रदेशीयः। जनिभूर्मम राजपुत्रदेशः। महाराज-श्रीजयसिंह-निर्मिताद् जयपुर-नगराद् आरादेवाऽऽश्वीन एको 'जितवार'-नामा ग्रामोऽस्ति, तदध्यक्ष एवाहमासम्। मथुरायात्रां कुर्वतः खड्गसिंहस्य मम च पित्रोः स्नेहः प्रगाढो जात इति तन्मूलक एवाऽऽवयोरपि परमः प्रेमा बभूव। सोऽपि बहुवारं मम भवनं सनाथितवान्। अहमपि चानेकशस्तत्र गतः इति।

समुत्थम्, गोपनीयम् = रहस्यम्, अवाच्यमिति यावत्। निर्वचनीयः= निःसन्दिग्धं वक्तव्यः। एकाग्रेषु = संयतमनःसु। उच्छ्वस्य=दीर्घश्वसं गृहीत्वा। व्याहर्तुम् = वक्तुम्।

जनिभूः=जन्मभूमिः। महाराजेन, जयसिंहेन, निर्मितात् = निर्मापितात्, वासितादिति यावत्। आश्वीनः = अश्वेनैकेन दिनेन गन्तुं योग्यः। "त्रिष्वाश्वीनं यदश्वेन दिनेनैकेन गम्यते" इत्यमरः। "अश्वस्यैकाहगम" इति खञ्। "जितवार" नामा=साम्प्रतं "जटवारा" इति ख्यातः, पिता च पिता च=पितरौ, तयोः। प्रकृतेऽस्यैवार्थस्य विवक्षितत्वात् "पुमान् स्त्रिया" इतिनैकशेषः। प्रगाढः= अत्यधिकः, प्रेमा = स्नेहः प्रेमा ना प्रियताहार्दं प्रेमा" इत्यमरः।

यदि कुछगोपनीय या नीति विरुद्ध न हो, तो मुझ जैसे अनुचर के अनुरोध से कृपया इस वृत्तान्त को स्पष्ट कीजिये।" इतना कहकर गौर के मौन हो जाने पर और सभी लोगों के कौतूहल पूर्वक एकाग्र हो जाने पर, क्षण भर स्थिर हो उच्छ्वास लेकर ब्रह्मचारिगुरु ने कहना प्रारम्भ किया—

ब्रह्मचारिगुरु—मैं महाराष्ट्रीय नहीं हूँ। मेरी जन्मभूमि राजपूताना है। महाराज जयसिंह द्वारा निर्मित जयपुर के समीप ही एक दिन में घोड़े से पहुँच सकने की दूरी पर एक जितवार (जटवारा) नामक गाँव है। मैं उसी का अध्यक्ष था। मथुरा की यात्रा करने में खड्गसिंह के पिता तथा मेरे पिता में परस्पर गहरी मित्रता हो गई। अतः वहीं से हम दोनों में भी अत्यधिक सौहार्द हो गया। वे भी बहुत बार मेरे घर आए, और मैं भी कई बार उनके घर गया।

गौर०—अप्यापृच्छे। अपि कथयिष्यति कथमिहाऽऽयातो भवान्? कथं वा त्यक्तवान् निजमाधिपत्यम्?

ब्रह्मचारिगुरुः—गौर! वयं महाराज-जयसिंहस्य अधीना बान्धवाः सेनानियमेन भूमिभुजः। अकस्माज्ज्वरितेषु कतिपयेषु सादिषु बहुभिः कर्णेजपैरीर्ष्यापरवशैः किमप्युक्तोऽसूचितयात्रो महाराजः समायातः। सादिसङ्ख्यामूनावलोक्य विनैव विचारं मम सर्वस्वमाहर्तुं स्वसभाया-मकथयत्। मम पत्नी तु ततोऽपि पूर्वमेव स्मृतिमात्रविषया संवृत्ता। ततोऽहं दशवर्षदेश्यं रामसिंहं तनयं सह नयन् रामेश्वर-दर्शनार्थं प्रचलितः।

अपि = पुनरपि। आपृच्छे = पृच्छामि। "आङि नु पृच्छयोरि"त्यात्मने-पदम्। वर्त्तमानसामीप्ये लट्। आधिपत्यम् = ग्रामाधीशताम्।

भूमिभुजः = "जागीरदार" इति ख्याताः। ज्वरितेषु = ज्वरग्रस्तेषु, ज्वलितेषु वा पाठः। कर्णेजपैः = पिशुनैः, निन्दाकारिभिः। ईर्ष्यापरवशैः = गुणेषु दोषाविष्करणपरायणैः। असूचितयात्रः = अबोधितागमनः। ऊनाम् = अल्पाम्। सर्वस्वम् = निखिलं वित्तजातम्। स्मृतिमात्रविषया = केवल-स्मरणगोचरा। मृतेति यावत्।

गौरसिंह—मैं यह पूछना चाहता हूँ कि क्या आप बतायेंगे कि आप यहाँ कैसे आए? और आपने अपना आधिपत्य क्यों छोड़ दिया?

ब्रह्मचारिगुरु—गौरसिंह! हम लोग महाराज जयसिंह के अधीन बन्धु एवं सेना के नियम से जागीरदार थे। कुछ घुड़सवारों के एकाएक ज्वरग्रस्त हो जाने पर बहुत ईर्ष्यालु निन्दकों के कुछ कहने पर यात्रा की सूचना दिये बिना ही महाराज आ पहुँचे, और घुड़सवारों की संख्या कम देखकर बिना विचार किए ही, उन्होंने सभा में मेरा सब कुछ छीन लेने की आज्ञा दे दी। मेरी पत्नी पहले ही स्मृतिशेष हो चुकी थी (मर चुकी थी)। तदनन्तर मैं अपने लगभग दस वर्ष के पुत्र रामसिंह को साथ लिये हुये रामेश्वर के दर्शन को चल दिया।

गौरो रामेश्वर-यात्रा-समाख्यया तनयस्य नाम रार्मसिह इति स्वयं च खड्गसिंहस्य गेहं वहुवारं गत इति च निष्कृष्टार्थं शृण्वन् देवशर्म्मणा कथितां च नूत्नामेव कथां स्मरन्, समाधिस्थ इवैकतान उदन्तमेतं शुश्राव।

ब्रह्मचारिगुरुः "ततः परं यत् संवृत्तम्, तस्य तु कथनेनाऽपि स्मरण-मात्रेणापि च कम्पते मे हृदयम्। तथाऽपि किं कुर्याम्? वज्रेण रचितं हृदयं मानवानाम्; यस्य स्मरणमात्रेण रोमाण्यञ्चन्ति, वपुर्वेपते, मनो मथ्यते, चित्तं चञ्चल्यते, लोचने लोलतः, जीवनं च जर्जरीभवति; तदेव दुःखम्, तदेव व्यसनम्, तामेव च यन्त्रणाम् अनु-

---

रामेश्वरयात्रायाः **समाख्यया** = नाम्ना। **निष्कृष्टार्थम्** = निर्गलिताभि-प्रायम्। **नूत्नाम्** = नव्याम्। **समाधिस्थः** = चित्तनिरोधार्थकक्रियानिरतः। **एकतानः** = अनन्यमनस्कः। **उदन्तम्** = वृत्तान्तम्।

रोमाणि=तनूरुहाणि। **अञ्चन्ति**=उद्गच्छन्ति। **चञ्चल्यते**=अतितरां चञ्चलं भवति। **लोलतः** = चञ्चले भवतः। **जर्जरीभवति** = शीर्यते। करुण-रसप्रवाहोऽत्र गद्ये, वैदर्भी च रीतिः स्फुटैव।

दुःखव्यसनयोरिह समानार्थत्वेऽपि दुःखिनाऽभिहितमिति न पुनरुक्तदोषः, प्रत्युत

गौरसिंह ने रामेश्वर यात्रा के सम्बन्ध में उच्चरित पुत्र का नाम रार्मसिंह सुनकर, 'स्वयं भी खड्गसिंह के घर बहुत वार गया हूँ' यह सब सारांश सुनते हुए तथा देवशर्मा द्वारा कथित नवीन कहानी को याद करते हुये समाधिस्थ की भाँति एकाग्र होकर इस वृत्तान्त को सुना।

ब्रह्मचारिगुरु—उसके वाद जो हुआ उसके कहने से भी स्मरण करने से भी मेरा हृदय काँपता है। फिर भी क्या करें, मनुष्यों का हृदय वज्र से वना है। जिसका स्मरण करने से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं, शरीर काँपने लगता है, मन व्याकुल हो जाता है, चित्त चञ्चल हो जाता है, आँखे चपल हो जाती हैं, तथा जीवन जर्जर हो जाता है (निस्सार जान पड़ने लगता है); उसी दुःख, उसी

भूयाऽपि जीवामि" इति वदन्नेवोच्छ्वस्य अपाङ्गसङ्गिनो द्वित्रान् वाष्पबिन्दून् पटप्रान्तेन अपाहरत् ।

गौर०--तात ! परिवर्ती संसारः, अवितर्कणीया दैवघटना, अवश्यम्भाविनो भावाः, सुखदुःखमय एव च संसारः, कस्य दुःखासम्भिन्नं सुखम् ? कस्य निःशेषं पूर्णा अभिलाषाः ? कस्य अपरिचित–पश्चात्ताप–सङ्घर्षं हृदयम् ? तत् पौर्वापर्य्येणाऽऽलोच्य धैर्यमेव धारणीयं धर्म–धारि–धौरेयैः ।

ब्रह्मचारिगुरुः—[वाष्पं निरुध्य] अथाऽकस्मादेव सहडहडाशब्दमाकुलयितुमारब्धवती वात्या । पारावारश्च पयसः पर्वतानिव तरङ्ग-

---

गुणः । यन्त्रणाम् = मानसव्यथाम् । उच्छ्वस्य = दीर्घं निश्वस्य । अपाङ्गसङ्गिनः = नेत्रप्रान्तलग्नान् । अपाहरत् = अदूरयत् ।

परिवर्त्ती = परिवर्त्तनशीलः । अवितर्कणीया = असम्भाव्या । दैवघटना= भाग्यकृतिः । भावाः = भवनीयाः पदार्थाः, दुःखेन, असम्भिन्नम् = असम्पृक्तम् । निःशेषम् , यथा स्यात् तथा । अभिलाषाः = मनोरथाः । अपरिचित-पश्चात्ताप-सङ्घर्षम् = अविज्ञातानुतापसङ्घट्टम् । बहुव्रीहिः । धर्मधारिधौरेयैः = धार्मिकाग्रेसरैः ।

आकुलयितुम् = क्षुभितं विधातुम् । वात्या = वातसमूहः । पारावारः=

विपत्ति, तथा उसी यन्त्रणा का अनुभव करके भी मैं जीवित हूँ ।

यह कहते हुये ही लम्बी साँस लेकर पलकों में लगे हुये दो तीन अश्रुबिन्दुओं को वस्त्र के छोर से पोंछ दिया ।

गौरसिंह—तात ! संसार परिवर्तनशील है, दैवी घटना अचिन्त्य है । होने वाली बात भी होकर ही रहती है और संसार भी सुखदुःखमय है; किसका सुख, दुःख से अछूता है ? किसकी अभिलाषायें पूर्ण हो सकी हैं ? किसका हृदय पश्चात्ताप के संघर्ष से अपरिचित है ? अतः पूर्वापर का विचार कर धर्मशीलों में श्रेष्ठ श्रीमान् को धैर्य ही धारण करना चाहिये ।

ब्रह्मचारिगुरु—[आँसू रोक कर] तदनन्तर अकस्मात् ही हहराता हुआ

भङ्गान् रचयितुमारब्धवान्, पोतेन चाऽस्माकमारब्धं दोलयेव दोलितुम्। तावदुद्विग्नानिव कर्णधारानालोक्य महान्तं क्रन्दनकोलाहलं कलितवन्तः सकला यात्रिनिकराः। ततो भय–भ्रान्त–नयनस्य रामबालस्य करं गृहीत्वा समागतः पुरोहितो मां झटित्यवादीत्—

"प्रभो! नाऽयमवसरः शुष्क-चिन्तया क्षणमप्यतिवाहयितुम्। अस्मिन्नुडुपे बहवः कार्पास–भाराः सन्ति, तेषामेकं दृढं कराभ्यां धृत्वा, भवता प्लव–प्रान्तस्थेन भाव्यम्। भवान् किञ्चित् तुन्दिभ इति न पारयिष्यते बालमेनं रक्षितुम्, तदहं पृथुकमेनमात्मना सह गोपायिष्यामि" इति व्याहृत्य, स्वपृष्ठदेशे उत्तरीयेणाऽतित्रस्तं रामसिंहं दृढं बद्ध्वा,

---

अम्भोधिः। पयसः, पर्वतानिवेत्युत्प्रेक्षा। तरङ्गभङ्गान् = वीचिखण्डान्। रचयितुम् = विन्यस्तुम्। दोलयेव = दोलायन्त्रेणेव। दोलितुम् = हिल्लोलितुम्। उद्विग्नान् = भीतिग्रस्तचेतसः। कर्णधारान् = नाविकान्। क्रन्दनकोलाहलम्=रोदनकलकलम्। कलितवन्तः=कृतवन्तः। भयभ्रान्तनयनस्य= भीतिचञ्चलनेत्रस्य।

शुष्कया=कर्तव्यशून्यया, वृथाप्रायया। चिन्तया=विचारधारया। अतिवाहयितुम् = क्षपयितुम्। उडुपे=नावि। कार्पासभाराः=तूलभाराः। प्लवप्रान्तस्थेन=नौकासमीपवर्त्तिना। तुन्दिभः = तुन्दिलः। "तुन्दिलस्तुन्दिभस्तुन्दी" इत्यमरः। रक्षितुम् = गोपायितुम्। पृथुकम् = बालम्। "पृथुकौ चिपिटार्भकावि"त्यमरः। व्याहृत्य = कथयित्वा। उत्तरीयेण = प्रावरणेन। अति-

---

तूफान व्याकुल करने लगा, समुद्र पर्वतों के समान लहरें उछालने लगा, और हमारा पोत भी झूले की तरह झूलने लगा। उसी सयय नाविकों को उद्विग्न सा देखकर सभी यात्री-गण रोने चिल्लाने लगे। तदनन्तर भय से चञ्चल नेत्रों वाले बालक 'राम' का हाथ पकड़े हुए पुरोहित ने आकर मुझसे कहा—

"महाराज! कोरी चिन्ता में एक क्षण भी बिताने का समय नहीं है। इस नौका पर बहुत से कपास के गट्ठर हैं, उनमें से एक को हाथों में दृढ़ता से पकड़कर आप नौका के किनारे हो जाइये। आप कुछ तोंद वाले हैं। अतः इस बालक की रक्षा नहीं कर पायेंगे, इसलिये मैं अपने साथ इस बच्चे की भी रक्षा करूँगा।" यह कहकर अत्यन्त डरे हुये रामसिंह को अपने उत्तरीय से अपनी पीठ

कार्पास-भारमेकमानाय्य, तद्दत्त–हस्तावलम्बनस्तस्थौ। अहमपि च तथैव विहितवान्। द्वावपि चाऽऽवां परमेश्वरं स्मरन्तौ, परितो दोधूयमानस्योदन्वतो दोदुल्यमानैर्लोललोलैः कल्लोलैश्चङ्क्रम्यमाणौ, कर्हिचित् लोकालोकमाकृष्य लोकालोकमिवोल्लिलङ्घयिषुमस्ताचल-चूडा-चुम्बिनं लोकलोचनमालोकमालोकम्, कदाचिद् बाष्प-बिन्दु-स्नात-श्मश्रुं पुरोहितम्, रोरुद्यमानमस्माभिः स्वयं रोदनोन्मुखैरपि

त्रस्तम्=परं भीतम्। तस्मिन्=कार्पासभारे, दत्तम्, हस्तावलम्बनम्= कराश्रयो येन तथाभूतः। दोधूयमानस्य=अतितरां कम्पमानस्य। उदन्वतः= वारिनिधेः। दोदुल्यमानैः=अत्यन्तं चलद्भिः। लोललोलैः=अतिचञ्चलैः। प्रथमविशेषणं तावदुद्गच्छतां कल्लोलानां द्वितीयं तूद्गतानां तेषामिति न पौन-रुक्त्यम्। कल्लोलैः=महालहरिभिः। "महत्सूल्लोलकल्लोलौ" इत्यमरः। चङ्क्रम्यमाणौ=अतितरामुच्छाल्यमानौ। लोकस्य=संसारस्य, आलोकम्= प्रकाशम्। आकृष्य=अपकृष्य। लोकालोकम्=चरमाचलान्तिकगिरिम्। उल्लिलङ्घयिषुम्=उल्लङ्घयितुमिच्छुम्। अस्ताचलस्य=चरमगिरेः, चूडा-चुम्बिनम्=उन्नतभागाश्लेषिणम्। अस्तं यान्तमिति यावत्। लोक-लोचनम्=संसारनेत्रं सूर्यम्। आलोकमालोकम्=दृष्ट्वा दृष्ट्वा बाष्प-बिन्दुस्नातश्मश्रुम्=अश्रुक्लिन्नमुखकेशम्। पुरोहितम्=सर्वश्रेष्ठहितकारकम्, वैदिककार्यनिर्वाहकं ब्राह्मणम्। रोरुद्यमानम्=वारं वारं रुदन्तम्, बोबुध्य-

---

पर मजबूती से बाँधकर एक कपास का गठ्ठर मँगाकर उस पर हाथ टेककर खड़े हो गये। मैंने भी वैसा ही किया। हम दोनों ने ही परमेश्वर का स्मरण करते हुए चारों ओर से उमड़ते हुये समुद्र की लहराती हुई अत्यन्त चपल उत्ताल तरङ्गों से उछाले जाते हुए, संसार के प्रकाश को समेटकर लोका-लोक (अस्ताचल) को लाँघने की इच्छा वाले, अस्ताचल की चोटी का स्पर्श कर रहे संसार के नेत्र (सूर्य) को देखते हुए, कभी आँसू की बूंदों से भींगी मूँछों वाले पुरोहित को और कभी स्वयं रुआँसे होते हुये भी हमलोगों

कथमपि बोबुध्यमानं बालकं च दर्शं दर्शं युगमिव मन्वन्तरमिव कल्पमिव च कांश्चित् क्षणानजीगमाव ।

अथ बलवतैकेन तरङ्गाघातेन क्षणं विस्मृतात्मानौ परतश्च चक्षुषी उन्मील्य आवां दृष्टवन्तौ, यन्न स पोतः, न तत् स्थानम्, न वा ते तथाभूताः सहचराः । विक्षुभितेनापि मया धैर्यमाधायादर्शि यद् धृतकार्पासभारोऽहं कदाचित् तरङ्गोत्तमाङ्गे कदाचिच्च तरङ्गतले तरामि, अपरे च तथैव कार्पासभारान्, अभ्रीः, क्षेपणीः, सेचनानि, आनायान्, कुवेणीश्च धृत्वा सचीत्कारं तरन्ति । तेषामेव च मध्ये मम पुरोहितोऽपि क्रन्दमानं रामं पृष्ठे वहन्, वीचिभङ्गैराहन्यते, इति

मानम् = "मा भैः, पारं प्रापयामस्त्वामद्यैवे"त्यादि शिक्ष्यमाणम् । युगमिव = कलिप्रभृतिमिव । मन्वन्तरमिव = "मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिरि"-त्यमरः । कल्पम् = एकसहस्रमहायुगात्मकं कालम् । अजीगमाव = अक्षपयाव ।

परतश्च = अन्यभागे च । तथाभूताः = मज्जन्तः । आधाय = अवलम्ब्य । अर्दशि = दृष्टम् । तरङ्गोत्तमाङ्गे = लहरिशिरसि । तरामि = प्लवामि । अभ्रीः = काष्ठकुद्दालान् नौ-मल-क्षालनार्थकान्, "अभ्रिः स्त्री काष्ठकुद्दालः" इत्यमरः । क्षेपणीः = नौदण्डान् । "नौकादण्डः क्षेपणी" इत्यमरः । सेचनानि = नौकागतजलदूरीकरणभाण्डानि । आनायान् = जालानि । कुवेणीः = मत्स्या-

द्वारा किसी प्रकार समझाये जा रहे और बार-बार रो रहे बालक रामसिंह को देखते हुए युग की भाँति मन्वन्तर की भाँति और कल्प की भाँति कुछ क्षण बिताए ।

तदनन्तर एक बलवान् तरङ्ग के आघात से क्षणभर आत्मविस्मृत होकर बाद में आँखें खोलकर हम दोनों ने देखा कि न तो वह नौका है, न वह स्थान है, और न तो वे साथी ही हैं । मैंने घबराये हुए होने पर भी हिम्मत करके देखा, कि कपास का गठ्ठर पकड़े मैं कभी तरङ्गों के ऊपर और कभी नीचे तैर रहा हूं, दूसरे भी उसी प्रकार कपास के गट्ठरों, अभ्री (नाव को साफ करने वाली काष्ठमय कुदाल) पतवार, पानी उलीचने के काष्ठमय पात्र, जाल और टोकरी पकड़े चिल्लाते हुए तैर रहे हैं । उन्हीं में मेरे पुरोहित

क्षणत एव च तरङ्गभङ्गैराहतो न वेद्मि, के कुत: प्रयाता: ? पञ्चषा एव च वयं तथाभूता अवशिष्टा: ।

एवमतिलोलं कोलमकूपारस्य तलं प्रवेश्य, प्रशान्तो झञ्झावात: । उदन्वानपि तरङ्गोच्छालन-वेगं कथमपि मन्दमकार्षीत् । तदा मया केवलं पुरोहित एव धृत-कार्पास-भार: सम्मुखमालोकि । इतरे च, नावेदिषम्, वीचि-पात-घातै: कुतो नीता: ? इति । इत: सूर्य्यस्याऽस्तमनसमय:, तत: समागच्छन्ती घोरा रजनी, तटस्य कथाऽपि नाऽऽसीत्, उपरि गगनम्, अधश्च सागर:, परित: प्रसर्पिणो वात-घाता:, परिकलिताल्पिष्ठाकारा अपि भयानकास्तरङ्गभङ्गा: ।

धानी: । "आनाय: पुंसि जालं स्यात्", "मत्स्याधानी कुवेणी स्यादि"ति चामर: । आहन्यते=ताड्यते । तथाभूता: =तरङ्गभङ्गाहता: ।

कोलम् =प्लवम् । अकूपारस्य =क्षीरधे: । तलम् =अन्तरालम् । झञ्झावात: =सवृष्टिको महावायु: । तरङ्गोच्छालनवेगम् =लहरिहिल्लोलनजवम् । नावेदिषम् =नाज्ञासिषम् । समागच्छन्ती =आयान्ती । घोरा = भीतिप्रदा । वातघाता: =समीरनाडनानि । परिकलिताल्पिष्ठाकारा: = धारितलघुतमाकृतय: ।

भी रोते हुये राम को पीठ पर लिये, तरङ्गों के प्रवाह से आहत हो रहे हैं, क्षण भर बाद ही लहरों के प्रवाह से आहत होने के कारण मैं न जान सका कि कौन कहाँ चला गया ? हम पाँच-छ: लोग उस आघात के बाद बचे रहे ।

इस प्रकार अत्यधिक लड़खड़ाती नौका को समुद्र के तल में पहुँचा कर तूफान शान्त हो गया । समुद्र ने भी ऊँची लहरों को उछालने के वेग को किसी प्रकार कम किया । उस समय मैंने कपास का गट्ठर पकड़े हुये केवल पुरोहित को ही सामने देखा । अन्य यात्री लहरों के थपेड़ों से न जाने कहाँ पहुँचा दिये गये । इधर सूर्यास्त का समय था, और उधर से भयानक रात्रि; तट की तो बात ही नहीं थी, ऊपर आकाश नीचे समुद्र, चारों ओर फैल रहे वायु के झोके और छोटी आकारवाली होने पर भी भयङ्कर समुद्री लहरें ।

अथ शनैः शनैः समुद्रेणाऽहमेकतोऽपसारयितुमारब्धः, पुरोहितश्च परतः। उभयोरनिच्छतोरप्यन्तरालमावयोरवर्धिष्ट। क्षणानन्तरमेव च स मम चक्षुषोः पन्थानमतीतः। ततोऽहं कदाचिद् रामं कर्हिचित् पुरोहितं च स्मरन्, कर्हिचित् व्यतीतं निजजीवनं चिन्तयन्, कदाचित् समाप्तमिदं दुःखान्तमायुरिति भावयन्, कर्हिचित् सक्रन्दं परमात्मानं ध्यायन्, प्रतिपदं पयःपूरेण प्लाव्यमान इव, तिमिङ्गिलैर्गीर्यमाण इव, ग्राहैर्ग्रस्यमान इव, सामुद्रिकसत्त्वैरास्वाद्यमान इव, परीवाहैरुह्यमान इव, यमेन नियम्यमान इव, कालेन काल्यमान इव, मृत्युना च मार्य-

---

एकतः = एकस्यां दिशि। अपसारयितुम् = दूरीकर्तुम्। अन्तरालम् = व्यवधानम्। अवर्धिष्ट = ऐधिष्ट। सः = पुरोहितः सवालः। व्यतीतम् = भूतम्। दुःखान्तम् = क्लेशान्तम्। भावयन् = विचारयन्। सक्रन्दम् = सरोदनम्। प्रतिपदम् = पदे पदे। पयःपूरेण = वारिप्रवाहेण। प्लाव्यमानः = निमज्ज्यमानः। तिमिङ्गिलैः = महामत्स्यैः। गीर्यमाण इव = उदरे क्रियमाण इव। ग्राहैः = नक्रैः। ग्रस्यमान इव = कवलीक्रियमाण इव। सामुद्रिकसत्त्वैः = यादोभिः। जलजन्तुभिः। आस्वाद्यमान इव = रस्यमान इव। परीवाहैः=आवर्त्तैः। ऊह्यमान इव=नीयमान इव। यमेन = वैवस्वतेन। नियम्यमान इव = निवध्यमान इव। कालेन = समयेन। मृत्योरग्रेऽभिधाना-

---

तदनन्तर धीरे-धीरे समुद्र मुझे एक ओर वहाने लगा, और पुरोहित को दूसरी ओर। न चाहते हुए भी हम दोनों की दूरी वढ़ती गई। कुछ देर बाद ही वह मेरी आँखों से ओझल हो गए। तव मैं कभी रामसिंह को तथा कभी पुरोहित को स्मरण करता हुआ, कभी अपने बीते हुए जीवन के विषय में सोचता हुआ, कभी यह दुःखान्त आयु समाप्त हो गई यह विचार करता हुआ, कभी रोता हुआ परमात्मा का ध्यान करता हुआ, पद-पद पर जल के प्रवाह से डुवोया जा रहा सा, तिमिङ्गिलों द्वारा निगला जा रहा सा, ग्रहों द्वारा कवलित हो रहा सा, समुद्र के जीवों द्वारा खाया जा रहा सा, आवर्तों द्वारा वहाया जा रहा सा, यमराज द्वारा पकड़ा जा रहा सा, समय द्वारा प्रेरित किया जा रहा सा, और

माण इव, तारकितं गगनम्, तरङ्गितं सागरम्, प्रेङ्खितं वीचिप्रचयम्, क्षार–क्षोद–क्षीयमाणं चाऽऽत्मानमवलोकयन्, न वेद्मि, कैः कैः क्रन्दनैर्धैर्य्य–धारणैर्भगवत्स्मरणैश्च तमीमतिवाहयाम्बभूव ?

अथ शनैः समुद्रफेनेष्विव लीयमानेषु तारकानिकरेषु, उडुपे इव प्रतीच्यां निमग्ने उडुपे, सरस्वतस्तरङ्गोच्छालितांस्तोयकणान् माणिक्यानिव विदधत् प्राचीं कुङ्कुम-बलाहक-निकराक्रान्तामिवाकार्षीद् भगवान् भास्वान्। अस्मिन् समये वीचिक्षोभोऽतिमन्द आसीदित्यपारय-

---

देवमेवार्थः । काल्यमान इव = प्रेर्यमाण इव । मृत्युना = अन्तकेन । मार्यमाण इव = ध्वस्यमान इव । तारकितम्=उडूपेतम् । गगनम्=नभः । तरङ्गितम्= लहरिसमेतम् । प्रेङ्खितम्=उल्लोलितम् । वीचिप्रचयम्=लहरिव्रजम् । क्षार-क्षोदक्षीयमाणम्=समुद्रडिण्डीरापचीयमानम् । तमीम् = रात्रिम् । अतिवाहयाम्बभूव=अतिगमयामास । लिट उत्तमपुरुषस्य रूपम् । न वेद्मीत्यनेन चित्त-विक्षेपाभिधानात् पारोक्ष्यमुपपादनीयम्, "बहु जगदपुरस्तात् तस्य मत्ता किलाहमि"-त्यादाविवेति वेदितव्यम् ।

समुद्रफेनेषु = वारिधिडिण्डीरेषु । तारकानिकरेषु = भगणेषु । उडुपे = नावि, इवेनोत्प्रेक्षा । प्रतीच्याम् = पश्चिमायाम् । निमग्ने = ब्रुडिते । उडुपे = तारकाधिनाथे चन्द्रे । सरस्वतः—अर्णवस्य । "सरस्वान् सागरोऽर्णवः" इत्यमरः । तरङ्गोच्छालितान् = लहरिसमुत्थापितान् । तोयकणान् = अम्भोबिन्दून् । माणिक्यानिव = मौक्तिकानीव । कुङ्कुम-बलाहकनिकराक्रान्तामिव = केसरमेघव्रातव्याप्तामिव । भास्वान् = दिनेशः । वीचिक्षोभः = लहरिसञ्च-

---

मृत्यु द्वारा मारा जा रहा सा, तारकित आकाश, तरङ्गित सागर, उछलती लहरों और नमकीन फेन से गल रहे अपने आपको देखता हुआ, न जाने किस-किस प्रकार रोककर धैर्य धारण कर भगवान् का स्मरण कर रात बिता पाया ।

तदनन्तर तारों के समूह के धीरे-धीरे समुद्र के फेन में विलीन से हो जाने पर, पश्चिम दिशा में चन्द्रमा के नौका के समान डूब जाने पर, समुद्र की तरङ्गों से उछाले गये जलकणों को मणियों के समान बनाते हुए, भगवान् सूर्य ने पूर्व-दिशा को केसर के मेघों से व्याप्त कर दिया। इस समय लहरों के उठने का वेग

महं सुदूरमीक्षितुम्। उद्ग्रीवेणाऽपि विस्फारितचक्षुषाऽपि नाऽऽलोकि पुरोहितो वा भूभागो वा।

समुद्रेण तूर्मिघातैः प्रागेव प्रेर्यमाणश्चिरानन्तरमद्राक्षं गुणवृक्षकमिव कस्यापि पोतस्य। क्षणेनैव वायुना समुद्धूयमानाः पटाः, परतश्च वेगेन मदध्यासितामेव दिशं समुपसर्पन् प्लव एको दृष्टः। तन्नियामकाश्च कथमप्युद्धृतकरं मामवलोक्येव वायुविधूतान् पटान् विचाल्य मामेव लक्ष्यीकृत्य समायाताः, कथं कथमपि च मामुत्थाप्य स्वपोते समुदस्थापयन्। अहं तु तत् स्थानं प्राप्यैव निश्वस्य पतितश्चिरं मूर्च्छामापम्। ते तु तैलसम्मर्द्दनादिभिर्मां सुखयन्तः सुरत–नगरप्रान्त आगत्य मामुद्बोध्य दुग्धादि पाययित्वा तटे व्यसृजन्।

लनम्। अपारयम् = शक्तोऽभूवम्। ईक्षितुम् = द्रष्टुम्। उद्ग्रीवेणाऽपि = उत्कन्धरेणाऽपि। भूभागः = महीतलम्।

ऊर्मिघातैः = तरङ्गताडनैः। प्रेर्यमाणः = प्रोह्यमानः। गुणवृक्षकमिव = कूपकमिव। समुद्धूयमानाः = हिल्लोल्यमानाः। मदध्यासिताम् = मत्सेविताम्। प्लवः=जलयानम्। तन्नियामकाः=तत्सञ्चालकाः। उद्धृतकरम्= उत्थापितहस्तम्। वायुविधूतान् = वातचालितान्। समुदस्थापयन् = सम्यगूर्ध्वमनयन्। आपम् = प्राप्तवान्। व्यसृजन् = त्यक्तवन्तः।

बहुत कम था; अतः मैं बहुत दूर तक देख सकता था। किन्तु गर्दन उठाकर और आँखें फैलाकर देखने पर भी मैं पुरोहित को या भूमिभाग को नहीं देख पाया।

तरङ्गों के आघातों से समुद्र द्वारा पहले से ही बहाये जाते हुये मुझको बहुत देर बाद किसी जहाज का मस्तूल सा दिखाई पड़ा। कुछ देर बाद ही हवा से उड़ते हुये पाल दिखाई दिये; और फिर वेगपूर्वक मेरी ही ओर आती हुई एक बड़ी नौका दिखाई पड़ी। उसके चलाने वाले, किसी प्रकार हाथ उठाए हुये मुझे देखकर हवा में उड़ते हुये पालों की दिशा बदल कर मुझे लक्ष्य कर मेरे पास आ गये; और किसी प्रकार मुझे उठाकर अपनी नाव पर बिठा लिया। मैं वहाँ पहुँचते ही दीर्घनिःश्वास लेकर मूर्छित हो गया, और बड़ी देर तक मूर्छा में ही पड़ा रहा। उन्होंने तेल की मालिश आदि करके मुझे आराम पहुँचा कर, सूरत नगर के किनारे आकर, मुझे जगाकर दूध आदि पिलाकर तट पर छोड़ दिया।

अहं तु क्षारोद–क्षार–नीलीकृत–वर्णः सुरत–नगरे परिभ्रमन्, रामचन्द्र–मन्दिरमेकमवाप्य तत्रैव विरक्त–भिक्षुकाणां मध्ये निवसन् मन्दिराध्यक्षेण चिकित्सित उल्लाघोऽभूवम् । एकदा विहितनित्य-नियमं तं स्वपुत्रपुरोहितयोः कुशलविषये समपृच्छम् । स च चिरं ध्यात्वाऽब्रूत यत्—"मा स्म ग्रसिष्ठा अमङ्गलचिन्तया, क्वाऽपि समुद्रतटे संलग्नौ तव पुत्रपुरोहितौ त्वदपेक्षयाऽधिकं तौ कुशलिनौ स्तः ।"

अथ "भगवन् ! कथं तत्साक्षात्कारो भवेत् ?" इति पृष्टश्च मां मन्त्रमेकमुपादिक्षत्, उक्तवांश्च यद्—"आसन्ने तव तनयस्यो-द्वाहसमये तेन तव सम्मेलनं भविष्यति, तावदेनं मन्त्रराजं जप ।"

अहं तु तत्र वारं वारं लुण्ठकोपद्रवमवलोक्य, तुरुष्क-मौद्गल–

क्षारोदस्य = क्षारवारिधेः, क्षारेण = लवणाम्भसा, नीलीकृतवर्णः = श्यामीकृतः । विरक्तानाम् = विरागिणाम् । भिक्षुकाणाम् = भिक्षारतानाम्, मस्करिणां वा । चिकित्सितः = औषधेनोपचरितः । उल्लाघः = रोगनिर्मुक्तः । "उल्लाघो निर्गतो गदात्" इत्यमरः। विहितनित्यनियमम् = कृतनैत्यिककृत्यम् । तम् = मन्दिराध्यक्षम् । मा स्म ग्रसिष्ठाः = ग्रस्तो मा भूः । अमङ्गल-चिन्तया = मरणादिकल्पनया । कुशलिनौ = सानन्दौ ।

उपादिक्षत् = उपदिष्टवान् । आसन्ने = समीपस्थे । तुरुष्काः "तुर्क"

समुद्र के खारे जल के दीर्घ सम्पर्क के कारण साँवला हो गया मैं सूरत नगर में घूमता हुआ भगवान रामचन्द्र के एक मन्दिर में पहुँच कर वहीं पर विरक्त भिक्षुओं के बीच में रहता हुआ मन्दिर के अध्यक्ष की चिकित्सा से रोग मुक्त हो गया । एक बार मैंने उनकी नित्यविधि के समाप्त होने पर अपने पुत्र और पुरोहित की कुशल के बारे में उनसे पूछा । उन्होंने बहुत देर तक ध्यान लगाकर मुझसे कहा कि "तुम उनके अमंगल की चिन्ता से अपने को दुःखी मत करो । तुम्हारे पुत्र और पुरोहित कहीं समुद्र के किनारे लग गये हैं और तुम से भी अधिक कुशल से हैं ।"

तदनन्तर मेरे, 'महाराज ! उनको कैसे मिल सकूँगा ?' यह पूछने पर उन्होंने मुझे एक मन्त्र का उपदेश दिया और कहा कि "तुम्हारे पुत्र के विवाह के समय के आसन्न होने पर तुम उससे मिलोगे, तब तक इस श्रेष्ठ मन्त्र का जप करो ।"

मैं वहाँ पर वार-वार लुटेरों का उपद्रव देखकर तथा तुर्कों मुगलों, गोरों और

गोरण्ड–पाठीनादीनां महासम्मर्दं च सम्भाव्य इतोऽस्मिन् देशे समागतोऽस्मि । न जाने कदा जीवन्तं रामं द्रक्ष्यामि"इति ।

गौर०—विचित्रा दैवघटना, विचित्र एव चाऽयं भवतो वृत्तान्तः। अवश्यमेव कञ्चित् समयमतिवाह्य मन्त्रवलेन द्रक्ष्यत्यार्यः स्वपुत्रस्याऽपि मुखम् । अपि पृच्छेयं कथमिव महाराष्ट्रराजेन समालापो जातः ? इति ।

ब्रह्मचारिगुरुः—भीमायास्तटे स्नात्वा परावर्तमानस्य ममैकदा द्वाभ्यां म्लेच्छलुण्ठकाभ्यां सह मेलनमासीत् । तयोरेकेनोक्तम् —"त्यज सर्वं वस्त्रादिकम्, अन्यथा व्यापाद्यसे"—इति । तत्क्षणमेव मयैकया प्रवलचपेटिकया स तथाऽभिहतो यत् पीतं रक्तं श्याममिव च दिक्चक्र-मालोकयन् निरुद्धनिश्वासो भ्रान्त्वा भूमिमालिङ्गितवान् । द्वितीयश्च

इति, मौद्गलाः "मोगल" इति, गोरण्डाः "गोरे" इति, पाठीनाः "पठान" इति च ख्याता लोके । महासम्मर्दम् = अतिसङ्घर्षम् ।

विचित्रा = साश्चर्या । कथमिव = केन प्रकारेण । समालापः = वार्त्ता ।

परावर्त्तमानस्य = निवर्तमानस्य । म्लेच्छलुण्ठकाभ्याम् = यवन-चौराभ्याम् । व्यापाद्यसे = हन्यसे । प्रवलया = असहनीयया, चपेटिकया = तलेन । पीतं रक्तं श्याममिव च दिक्चक्रम् = हरिद्गणम् । आसन्नमरणस्वभाव-

---

पठानों के भयंकर संघर्ष की सम्भावना देखकर इधर इस देश में आ गया हूं । न जाने कब जीवित रामसिंह को देखूंगा ।

गौरसिंह—भाग्य का विचित्र खेल है, और आपका यह वृत्तान्त भी अद्भुत है । अवश्य ही कुछ समय व्यतीत कर मन्त्र के वल से आर्य अपने पुत्र का मुख देखेंगे । क्या यह पूछ सकता हूँ कि महाराष्ट्र नरेश से कैसे परिचय हुआ ?

ब्रह्मचारिगुरु—एक वार मैं भीमा नदी में स्नान कर लौट रहा था कि किनारे पर दो यवन लुटेरों से भेट हो गई । उनमें से एक ने कहा—"सभी वस्त्र आदि उतार दो, नहीं तो हम तुम्हें मार डालेंगे ।" उसी क्षण मैंने उसे एक ऐसा जोर का थप्पड़ मारा कि उसे दिशायें पीली, लाल और हरी सी दिखाई देने लगीं, और उसकी साँस रुक गई, तथा वह चक्कर खाकर भूमि पर गिर पड़ा,

निस्त्रिंशं कोषादाकर्षन् मामभिचलितः। तस्य हस्ताच्चाऽर्द्धकृष्टमेव कृपाणमहमाच्छिद्य त्सरुणा तथा मस्तके हतवान्; यथा सोऽपि मूर्च्छितः स्वसहचरस्य चरणयोः पतितः। तत्खड्गं गृहीत्वा चाऽहं कुशलेन न्यवर्तिषि।

घटनामेतां दूरतोऽश्वं चालयन् महाराष्ट्रराजोऽपश्यत्। स च मार्ग एव मत्समीपमागत्य, ससाधुवादं मम जातिमभिप्रेतं च पृष्ट्वा, पञ्चषान् भृत्यान् मम सेवायां नियोज्य, अस्मिंस्तडागतटे पर्णकुटीरे मामस्थापयत्। अहं च सर्वथा तस्य जयमीहमानो यथाशक्यं यतमानश्चाऽत्र तिष्ठामि, मन्त्रं च साधयामि। महाराष्ट्रराजोऽपि मम निखिलं वृत्तान्तं न वेत्ति।

वर्णनम्। निरुद्धनिश्वासः = स्तब्धप्राणवायुः। भ्रान्त्वा=परिक्रम्य, "चक्कर खाकर" इति भाषायाम्। आलिङ्गितवान् = आशिश्लिषे। निस्त्रिंशम् = खड्गम्। कोषात्=असिधान्याः। अभिचलितः=सम्मुखमागतः। अर्धकृष्टम्= कोषादर्धनिष्कासितम्। कृपाणम् = असिम्। आच्छिद्य = प्रसह्य आकृष्य। त्सरुणा = खड्गमुष्टिना। न्यवर्त्तिषि = निवृत्तोऽभूवम्।

जातिम्=ब्राह्मणत्वादिव्यावर्तकधर्मम्। अभिप्रेतम्=इष्टम्। ईहमानः = समभिलषन्। यतमानः = चेष्टमानः।

दूसरा लुटेरा म्यान से तलवार खींचते हुये मेरी ओर बढ़ा, मैंने उसके हाथ से म्यान से आधी खिंची हुई तलवार छीनकर उसकी मूँठ से उसके सिर पर ऐसा प्रहार किया कि वह भी मूर्छित होकर अपने साथी के पैरों पर गिर पड़ा। उसकी तलवार लेकर मैं सकुशल लौट आया।

इस घटना को दूर से ही घोड़ा दौड़ाते हुये महाराष्ट्र नरेश ने देख लिया। उन्होंने मेरे मार्ग में ही मेरे पास आकर मेरी जाति और मेरा उद्देश्य पूछ कर अपने पाँच-छः सेवकों को मेरी सेवा में नियुक्त कर मुझे इस तालाव के किनारे पर्णकुटी में रहने के लिये स्थान दे दिया। मैं भी सर्वथा उनकी विजय कामना करता रहता हूँ, और उनकी विजय के लिये यथाशक्ति प्रयत्न भी करता रहता हूँ, तथा अपना मन्त्र भी सिद्ध करता रहता हूँ। महाराष्ट्र नरेश भी मेरे पूरे वृत्तान्त को नहीं जानते हैं।

गौर०—[मनसि बहुशश्चिन्तयन्] आर्य ! क्षम्यतां श्रीमतो नाम-मन्त्रश्रवणेन कर्णौ पिपावयिषत्येष जनः ।

ब्रह्मचारिगुरुः—किमिव नाम्ना ? यदा मम परितो गच्छतां गजानां घण्टानादैर्दिगन्तोऽपूर्यत, तदा तु स्वप्नेष्वपि शत्रूणां कर्णकुहरं निविशमानं ममाऽपरमेव किमपि नामाऽऽसीत् । अधुना तु ब्रह्मचारि-गुरुरित्येव वदन्ति जनाः ।

गौर०—क्षम्यताम्, परमं मम कुतूहलं तदेव श्रोतुं नाम श्रीमतः ।

ब्रह्मचारिगुरुः—[चिरं तूष्णीं स्थित्वा] वत्स ! तदानीं मां वीरेन्द्र-सिंहः इत्यवदन् जनाः ।

गौर०—[प्रणमन्] आर्य ! तत् किं स्मर्यते यन्मम पित्रा कश्चन सम्बन्धोऽपि प्रतिज्ञातः ?—इति ।

नामैव = अभिधानमेव, मन्त्रः = देवताप्रतिपादकवर्णानुपूर्वीविशेषः । तस्य श्रवणेन = तदाकर्णनेन । पिपावयिषति = पावयितुमिच्छति । भवतो नाम श्रोतुमिच्छामि इति यावत् ।

कर्णकुहरम् = श्रोत्रच्छिद्रम् । कर्णशष्कुलीमिति यावत् ।

गौरसिंह—[मन में अनेक प्रकार से सोचते हुये] पूज्यवर! क्षमा कीजिये, श्रीमान् के नामरूपी मन्त्र को सुनकर मैं अपने कानों को पवित्र करना चाहता हूँ।

ब्रह्मचारिगुरु—नाम में क्या रखा है ? जब मेरे चारों ओर चलने वाले हाथियों के घण्टाध्वनि से दिशायें भर जाती थीं, उस समय स्वप्न में भी शत्रुओं के कर्णकुहर में प्रवेश करनेवाला मेरा दूसरा ही नाम था। अब तो लोग ब्रह्मचारिगुरु ही कहते हैं।

गौरसिंह—क्षमा कीजिये, मुझे आपके उसी नाम को सुनने की उत्सुकता है।

ब्रह्मचारिगुरु—[बहुत देर तक चुप रह कर] पुत्र ! उस समय लोग मुझे वीरेन्द्रसिंह कहा करते थे ।

गौरसिंह—[प्रणाम करते हुये] पूज्यवर ! तो क्या आपको स्मरण है कि मेरे पिता जी से आपने किसी सम्बन्ध की भी प्रतिज्ञा की थी ?

ब्रह्मचारिगुरुः—वत्स ! सर्वं स्मरामि, किन्तु तत्कथोपकथनैर्दुःखमेव वर्द्धतेतमामिति अलमालप्याऽमुष्मिन् विषये ।

गौर०—आर्य ! अलं तद्विषये शोकावहनेन । न भवन्ति भवादृशैः सनियममनुष्ठितानि मन्त्र-साधनानि विफलानि । रामसिंहं वयमपि विशिष्य मार्गयिष्यामः ।

एवमालपतोरेव तयोरकस्मादुपावर्त्तत हयारूढो रघुवीरसिंहः । झटिति रामसिंहमयी दृष्टिरपतत् तदुपरि सर्वेषाम् । "यदि जीवेद् वयसा रूपेण ईदृश एव सम्बोभूयेत रामसिंहः" इति विचारयति वीरेन्द्रसिंहे, किमिति पृच्छति च गौरे—"महाराजः स्मरत्यत्र भवन्तम्"- इति मन्दं गौरसिंहमभ्यधाद् रघुवीरसिंहः । सोऽपि चोमिति व्याहृत्य वाजिनमारुह्य तेन सह सपदि प्रतस्थे ।

तत्कथोपकथनैः = तद्वार्तालापैः । **वर्द्धतेतमाम्** = अतितरामेधते । **सनियमम्** = सविधि । **अनुष्ठितानि** = साधितानि । **मार्गयिष्यामः** = अन्वेषयिष्यामः ।

उपावर्त्तत = परावृत्तः । **रामसिंहमयी** = रामसिंहभावनाभरिता । **सम्बोभूयेत** = सुतरां सम्भवेत् । **तेन** = रघुवीरसिंहेन । **सपदि** = तत्क्षणम् ।

ब्रह्मचारिगुरु—पुत्र ! सब स्मरण है, परन्तु उसकी चर्चा से केवल दुःख ही बढ़ता है । अतः इस बारे में मत पूछो ।

गौरसिंह—आर्य ! उसके विषय में शोक मत कीजिए । आप जैसे लोगों द्वारा नियमानुसार सिद्ध किए गए मन्त्र निष्फल नहीं होते । हम लोग भी विशेष रूप से रामसिंह को खोजेंगे ।

दोनों इस प्रकार वार्तालाप कर ही रहे थे कि घोड़े पर सवार रघुवीरसिंह आ गया । तत्काल सभी लोगों की रामसिंहमयी दृष्टि उसके ऊपर पड़ी । वीरेन्द्रसिंह के, "यदि जीवित होगा तो रामसिंह भी ऐसा ही होगा" इस प्रकार सोचने लगने, तथा गौरसिंह के 'क्या है' यह पूछने पर रघुवीरसिंह ने गौरसिंह से धीरे से कहा कि महाराज आपको याद कर रहे हैं । गौरसिंह भी 'अच्छा' कहकर घोड़े पर सवार होकर रघुवीरसिंह के साथ शीघ्र ही चल पड़ा ।

रघुवीरस्तु कियन्तमद्ध्वानमतीत्य, विकचसारसं सारस–कारण्डवादि–कदम्ब–कूजितं सर एकमवलोक्य, "अहं चिर–तृष्णा–गलितोत्साहं वाहं पानीयं पाययित्वा, अनुपदमेवाऽऽयामि, तावद् गत्वा विलोकनीयः श्रीमता महाराजः" इति कथयित्वा गौरं प्रस्थाप्य स्वयं वाहवल्गां तत एवाऽऽचकर्ष। तत्र च सैन्धवस्य मुखात् फेन–क्षालित–खलीनं रश्मिमपसार्य्य तत्पृष्ठमार्द्रयन् जलं पाययन् सरस्तट–शाद्वले पर्य्याटयंश्च परिश्रममपनेतुमारब्धवान्।

अस्य तु सर्वक्षणे सौवर्णी–मूर्त्यैव चित्रितं चित्रफलकमिव चित्त-

---

विकचसारसम् = प्रफुल्लसरोजम्। वहुव्रीहिः। सारसः = प्रलम्बचञ्चुचरणः श्वेतपक्षी, कारण्डवः = मद्गुनामा पक्षिविशेषः, एवमादीनां कदम्बेन = समूहेन, कूजितम् = नादितम्। चिरतृष्णागलितोत्साहम् = दीर्घकालपिपासाविधूतहर्षम्। वाहम् = घोटकम्। अनुपदम् = पदः पश्चात्। त्वरितमिति यावत्। प्रस्थाप्य=सम्प्रेष्य। सैन्धवस्य=घोटकस्य। फेनक्षालितखलीनम्=डिण्डीरधौतकविकम्। रश्मिम् = प्रग्रहम्। "किरणप्रग्रहौ रश्मी" इत्यमरः। अपसार्य्य = दूरयित्वा। सरस्तटशाद्वले = सरसीतीरस्थघासवत्प्रदेशे। पर्याटयन् = भ्रामयन्। अपनेतुम् = दूरीकर्तुम्।

सौवर्ण्याः, मूर्त्या=प्रतिविम्बेन। चित्रफलकम् = चित्रपट्टम्। चित्तम्=

रघुवीरसिंह ने कुछ मार्ग पारकर, विकसित कमलों वाला, सारस, कारण्डव आदि पक्षियों के समूह से कूजित एक सरोवर देखकर, "मैं बहुत देर से प्यासे होने के कारण शिथिल घोड़े को पानी पिलाकर अभी आपके पीछे ही आ रहा हूँ, तब तक आप चलकर महाराज का दर्शन करें" यह कहकर गौरसिंह को विदाकर अपने घोड़े की लगाम वहीं खींच ली। और फिर वह (रघुवीरसिंह) घोड़े के मुख से निकल रहे फेन में लिपटी लगाम वाली रस्सी को उतार कर, उसकी पीठ भिगोता हुआ, उसे जल पिलाता हुआ तथा सरोवर के किनारे की घास पर टहलता हुआ, उसकी थकान दूर करने लगा। रघुवीर का चित्त तो निरन्तर सौवर्णी की मूर्ति से चित्रित चित्र फलक सा है।

मित्यस्मिन्नेकान्ते पुनरुदभूवंस्तद्विषयिण एव मानसाः कथाप्रसाराः– यत् "किमिव करोमि ? अल्पं मे महत्त्वम् क्षुद्रोऽधिकारः, असि-धारावलेहनमिव कार्यम्, प्रत्यहं वर्द्धमान उपद्रवो महाराष्ट्रदेशे, स्वप्रेम्णा क्रीतवती मे हृदयं सौवर्णी। सा महतां कुलरत्नम्, महा-धिकारस्य श्रीमतो गौरसिंहस्य भगिनी, कस्यापि कृतपुण्यस्य जनस्य जनुः सफलयितुमवतीर्णा, तथाऽपि सा मदर्थमेव रोदिति, दूयते, खिद्यते, क्लिश्यति, रोमाञ्चति, सीदति, स्विद्यति, ताम्यति च। न जाने, केनेवान्तरात्मना प्रेरितोऽहमपि तयैव पाणिपीडां प्रतिज्ञातवान्। अहह! कथमेतत् सम्भवेत्? मनोरथोऽयं चिरेणापि साधयितुं दुःशकः, मन्मथस्तु प्रतिक्षणमेव मनो मथ्नाति।

मानसम्। एकान्ते=रहसि। तद्विषयिणः=सौवर्णीसम्बन्धिनः। कथाप्रसाराः= विविधा आलापाः।

क्षुद्रः=हीनः। अधिकारः=स्वाम्यम्। स्वप्रेम्णा=निजस्नेहेन। कुले= अन्वये। रत्नम्=श्रेष्ठा। कृतपुण्यस्य=विहितसुकृतस्य। जनुः=जन्म। सफलयितुम्=सफलीकर्तुम्। स्त्रियो हि जन्मिनां जन्मनां साफल्यस्य वैफल्यस्य च कारणतां गताः। दूयते-खिद्यते-प्रभृतीनां प्रायः समानार्थकानां खेदाधिक्यप्रदर्शनायाभिधानं वक्तुश्च विरहदूयमानमानसत्वादिति पौनरुक्त्यदोषा-शङ्काऽवधेया।

पाणिपीडाम्=विवाहम्। प्रतिज्ञातवान्=प्रतिश्रुतवान्। मन्मथः= कामः। मथ्नाति=आलोडयति।

अतः उस एकान्त में उसके मनमें पुनः तद्विषयक विचार उठने लगे, कि—

"क्या करूँ? मेरा महत्त्व थोड़ा है, अधिकार कम है, और कार्य तलवार की धार को चाटने के समान दुष्कर है; महाराष्ट्र में प्रतिदिन उपद्रव बढ़ रहा है, सौवर्णी ने अपने प्रेम से मेरा मन मोल ले लिया है। वह महान लोगों के कुल की रत्न है, महान् अधिकारी श्रीमान् गौरसिंह की भगिनी है, और किसी पुण्यवान मनुष्य के जन्म को सफल करने के लिए अवतीर्ण हुई है, फिर भी वह मेरे लिए ही रोती है, कष्ट पाती है, खिन्न होती है, तथा सन्तप्त होती है। न जाने किस अन्तरात्मा से प्रेरित होकर मैंने भी उसी के साथ विवाह करने की प्रतिज्ञा कर

अहह ! तस्यास्तानि तानि भाषितानि, तानि तानीङ्गितानि, तानि तानि भ्रूविभ्रमणानि, तानि तानि प्रेक्षितानि, तानि तानि हसितानि, तानि तानि च रुदितानि शल्यानीव निमग्नानि मम हृदये। स्वप्नेष्वपि तामेव सुदतीं मदर्थं रुदतीमवलोकयामि; "प्रिये! प्रिये! मा स्म मृणाल–कोमलान्यङ्गानि चिन्ता–सन्तान–ज्वाला–जालावलीढानि कार्षीः" इति सक्षोभं विलपंश्च भग्ननिद्रः समुत्थाय परितस्तामेव कटाक्षपातैर्मां निघ्नतीमिवान्वेषयामि।

अहह ! कथं तां प्राप्नुयाम् ? कथं तां परिणयेयम् ? कथं वा तदधर–सीधु–समास्वादेन सुधा–सुखमधरीकुर्याम् ? हन्त ! कष्टं

इङ्गितानि=चेष्टितानि। भ्रूविभ्रमणानि = भ्रूचालनानि । प्रेक्षितानि= अवलोकनानि । शल्यानीव=कण्टका इव । निमग्नानि=खचितानि। सुदतीम्= शोभनदन्तवतीम् । चिन्तासन्तापज्वालावलीढानि = चिन्तनानुतापकीलाल-समूहालिङ्गितानि । निघ्नतीम् = मारयन्तीम् । अन्वेषयामि = गवेषयामि ।

परिणयेयम् = विवाहयेयम् । तदधरसीधुसमास्वादनेन = तदोष्ठ-

ली है। हा ! यह कैसे होगा ? इस मनोरथ को चिरकाल में भी सिद्ध करना कठिन है, और कामदेव प्रतिक्षण ही मन को मथ रहा है।

अहा ! उसकी वे बाते, वे हाव-भाव, वे भौंहों के विलास, कटाक्ष, वे हास्य और वह रुदन मेरे हृदय में काँटों की तरह गड़ गए हैं। स्वप्नों में भी उसी सुदती (सुन्दर दाँतों वाली) को अपने लिए रोती देखता हूँ। और क्षुब्ध होकर "प्रिये ! प्रिये ! कमलनाल के समान सुकुमार अंगों को चिन्ताओं की परम्परा की ज्वाला के समूह में मत जलाओ" इस प्रकार प्रलाप करता हुआ निद्रा टूटने पर उठकर चारों ओर कटाक्षों से अपने को (मुझे) आहत करती सी उसी सौवर्णी को खोजता हूँ।

अहा ! उसे कैसे पाऊँ ? उससे कैसे विवाह करूँ ? और किस प्रकार उसके अधरों की मदिरा के पान से अमृत के भी सुख को तिरस्कृत करूँ ? हा ! मेरे

जीवनं मादृशानाम्, किमिव नाहं युद्धभूमिषु विनाश्ये ? हा दैव ! किं प्रिया-वियोग-दुःखेनैव हृदयहतकं शोषयितुं जीवयसि ?"

एवं चिन्ता–सन्तान–वितान–परवशः सोऽश्वमारुह्य चलितश्चित्र–परवशतया "सिंहदुर्गं यामि" इति मनसि निधाय प्रस्थितोऽपि तोरण-दुर्गं प्राप्तः। तत्र च चकितः काम–परवशतया धैर्य–विरहं च निन्दन्, मारुति–मन्दिर-पूर्व-वाटिकां प्रविष्टः, एकस्मिन् कुञ्जे उपविश्य, निःशब्दं रुदतीं च तामेव प्राणप्रियां ददर्श। सा तु दृष्ट्वैव एनमुत्थाय "कितव ! सुसमये समायातोऽसि, तिष्ठ, यावदहं त्वां पश्यन्त्येव शाखि-शाखयाऽऽत्मानमुद्बध्य प्राणांस्त्यजामि" इति रोषारुणाभ्यां नयनाभ्यामनिमिषमीक्षमाणा व्याहृतवती। रघुस्तु-"प्रिये ! कथय,

---

मधुरस-ग्रहणेन। सुधासुखम्=पीयूषपानानन्दम्। अधरीकुर्याम्=अवरं विदध्याम्। विनाश्ये=मारितो भवामि।

चिन्ता-सन्तान-वितान-परवशः=विचार-समूह-विवर्धन-रतः। काम-परवशताम्= कामाधीनताम्। धैर्यविरहम्=धीरताराहित्यम्। कुञ्जे= लतादिपिहितोदरे स्थाने। निःशब्दम्=ध्वनिशून्यम्, अस्फुटशब्दमिति यावत्। कितव !=धूर्त्त ! शाखिशाखायाम्=वृक्षविटपे। व्याहृतवती=जगाद।

समान लोगों का जीवित रहना ही कष्टपूर्ण है, मैं रणक्षेत्रों में ही क्यों नहीं मार डाला जाता हूँ ? हा ! भगवन् ! क्या प्रिया के विरह के दुःख से ही इस अधम हृदय को सुखाने के लिए मुझे जीवित रख रहे हो ?"

इस प्रकार चिन्ता की परम्पराओं के जाल में फँसा हुआ, वह घोड़े पर सवार होकर चला और चित्त की परवशता के कारण मनमें "सिंहदुर्ग जाऊँगा" यह सोचकर चला हुआ भी तोरणदुर्ग पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर वह आश्चर्य में पड़ गया और काम की पराधीनता तथा धैर्य के अभाव की निन्दा करता हुआ हनुमान मन्दिर के पूर्व की वाटिका में चला गया और वहाँ जाने पर उसके एक कुञ्ज में बैठकर मूक रुदन करती हुई उसी प्राणप्रिया को देखा। सौवर्णी उसे देखते ही उठकर "धूर्त ! अच्छे समय पर आ गए हो, ठहरो मैं तुम्हें देखती हुई ही वृक्ष की डाल में अपने को बाँधकर प्राणों का परित्याग कर दूँ" इस प्रकार क्रोध से लाल नेत्रों से निर्निमेष देखती हुई बोली। रघुवीरसिंह ने निवेदन किया : "प्रिये !

किमिव संवृत्तम् ? केनाऽवहेलिताऽसि ? केन क्ष्वेलिताऽसि ? तोरण–दुर्ग–नेदीयस्यस्मिन् महाराष्ट्र-राज-भट-सङ्घट्ट-रक्षिते उद्याने कस्य वा शक्तिस्त्वां धर्षयितुम् ?" इति न्यवीविदत् ।

सा तु पुनराह–"वीर ! रक्षक एवाऽत्र भक्षकः। योऽयं क्रूरसिंहाऽभिधोऽश्वारोहाणां पञ्चशत्या अध्यक्षोऽत्र तोरणदुर्ग-प्रान्त-रक्षकत्वे नियुक्तः, स स्वयमेव केनाऽपि व्याजेनाऽऽगत्य मामवलोक्य हसति, भ्रुवौ नर्त्तयति, करकम्पनैराह्वयति, मन्दं मन्दं किमप्यभिदधाति च। अद्य तु उद्याने पुष्पाण्यवचिन्वतीं मामकस्मादुपगत्य चिरं "प्रिये प्राणेश्वरि ! अनुगृहाण, पाणिं मे गृहाण" इति अवादीत् । मया बहुशो धिक्कृतश्च "जाने; त्वं रघुवीरेऽनुरक्ताऽसि, तत् सपदि तं मदसि–विलीढमालोक्य मां वरिष्यसि" इत्युक्त्वा च्योतद्रक्ताभ्यामिव नेत्राभ्यां विदारयन् मम हृदयं, निरगात् ।

अवहेलिता = तिरस्कृता । क्ष्वेलिता = हास्यविषयीकृता । तोरणदुर्गस्य नेदीयसि=अन्तिकस्थे । महाराष्ट्रराजस्य, भटानाम् = वीराणाम्, सङ्घट्टेन = सम्मर्देन, रक्षिते = पालिते । धर्षयितुम् = दूषयितुम् ।

तोरणदुर्गप्रान्तरक्षकत्वे = तोरणदुर्गयुतदेशखण्डशासकत्वे । व्याजेन = छद्मना । करकम्पनैः = हस्ताह्वानैः । किमपि = अश्रोतव्यमश्रुतं च । अवचिन्वतीम् = सङ्कलयन्तीम् । उपगत्य = समीपमागत्य । अनुगृहाण = कृपां कुरु । धिक्कृतः=भर्त्सित इति यावत् । मदसिना विलीढम्=विद्धम् । आलोक्य=

कहो, क्या हो गया ? किसने तुम्हारा अपमान किया ? किसने तुम्हारा उपहास किया ? तोरणदुर्ग के समीप ही स्थित महाराष्ट्र नरेश के सैनिकों के समूह से रक्षित इस वाटिका में तुम्हे दूषित करने की किसकी सामर्थ्य है ?"

उसने फिर कहा––"वीर ! यहाँ तो रक्षक ही भक्षक है। यह जो क्रूरसिंह नामक पाँच सौ घुड़सवारों का नायक यहाँ तोरणदुर्ग के प्रदेश के रक्षक पद पर नियुक्त है, वह स्वयं ही किसी बहाने आकर मुझे देखकर हँसता है, भौंहे नचाता है, हाथ हिलाकर बुलाता है, और धीरे-धीरे कुछ कहता भी है। आज तो जब मैं वाटिका में फूल तोड़ रही थी, तो अकस्मात् आकर देरतक "प्रिये ! प्राणेश्वरी ! दया कर, मेरा हाथ पकड़ लो" यह कहता रहा। मेरे बहुत धिक्कारने पर "जानता हूँ, तुम रघुवीर से प्रेम करती हो, तो शीघ्र ही उसे मेरी तलवार से चाटा गया

तदाकर्ण्य दुःखितो रघुवीरश्चिरं तां सान्त्वयित्वा, क्रूरे कुपितः सिंहदुर्गं प्रास्थित । अकस्माच्च तस्मिन्नेव दिने पुण्यनगरात् पूर्वस्यां सेनास्थाने स्व-सादि-समूहेन सह स्थातुं क्रूरसिंहेन महाराजस्याऽऽदेशः प्राप्तः, इति स तथाऽकरोत् । अत्र चाऽन्यः ससादिगणो रक्षक आगतः, इति किञ्चिच्छान्तः सौवर्ण्या आधिः ।

एवं विलक्षणा संवृत्ता दैवघटना; यदेकतः पुत्र-वियोग-दुःखितः पुनस्तत्प्राप्तये साधन-विशेषमनुतिष्ठन् वीरेन्द्रोऽवसीदति । अन्यतः सौवर्णी-विवाह-चिन्ता-ग्रस्तौ रामसिंहालुलोकयिषा-लोलुप-लोल-लोचनौ गौरश्यामौ विषीदतः, परतो रघुवीराय लज्जया विरहय्य

वीक्ष्य । वरिष्यसि = स्वीकरिष्यसि । च्योतद्रक्ताभ्यामिव = प्रवहल्लोहिताभ्यामिव । निरगात् = निष्क्रान्तः ।

सान्त्वयित्वा=प्रशाम्य । स्वसादिसमूहेन=निजाश्वारोहिव्रातेन । आधिः= मानसिकी व्यथा । "पुंस्याधिर्मानसी व्यथा" इत्यमरः ।

साधनविशेषम् = मन्त्रानुष्ठानम् । अवसीदति=विलश्नाति । रामसिंहस्य, आलुलोकयिषया = द्रष्टुमिच्छया, लोलुपे = अभिलाषुके, लोले = चपले, च लोचने = नयने, ययोस्तौ । विषीदतः = विषादं कुरुतः । लज्जया=त्रपया ।

(कटा हुआ) देखकर मुझे वरण करोगी" यह कहकर रक्त टपकाती हुई सी आँखों से मेरा हृदय चीरता हुआ चला गया ।"

यह सुनकर दुःखी रघुवीर ने उसे देर तक सान्त्वना देकर क्रूर पर क्रुद्ध हो सिंहदुर्ग को प्रस्थान किया । एकाएक उसी दिन क्रूरसिंह को पूनानगर से पूर्व, सेना के पड़ाव पर अपने घुड़सवारों सहित रहने के लिये महाराज शिवाजी का आदेश मिला, उसने वैसा ही किया, और यहाँ (तोरणदुर्ग में) अश्वारोहियों सहित दूसरा रक्षक आ गया। अतः सौवर्णी की चिन्ता कुछ शान्त (कम) हो गई ।

ऐसी विचित्र दैवी घटना हुई कि एक ओर पुत्र के वियोग में दुःखी वीरेन्द्रसिंह उसकी पुनः प्राप्ति के लिये विशिष्ट उपाय करते हुये क्लेश झेल रहे हैं, और दूसरी ओर सौवर्णी के विवाह की चिन्ता से ग्रस्त रामसिंह को देखने की इच्छा से लोलुप चञ्चल नेत्रों वाले गौर और श्याम खिन्न हो रहे हैं । उधर हृदय से

वितीर्णेव, उत्कण्ठया समाकृष्य समर्पितेव, इन्द्रिय–गणेन कुसुमेषु–घातैर्वशंवदां विधाय विनिवेदितेव, मदनेन किङ्करीकृत्योपहृतेव, कामेन दुर्मद–मदन–मदैर्मामद्यमानाऽप्यधिकं सम्मदय्य प्रदत्तेव, अनुरागेण सकल–गुण–गुणान् विगणय्य विक्रीतेव, हृदयेन रघुवीरं चिन्तयन्ती कोशला दिवसान् गणयति। ततो रसनारी च महाराष्ट्रराजस्य मधुरालापैरिव क्रीता, मन्मथोन्मथितेन मनसेव विक्रीता—

"कथमेतेन परिणीता भवेयम्? कथमेनेन सह विहरेयम्? कथमेतस्य चिर–विहार–विसृमरान् स्वेद-कणानात्मनः शाटीप्रान्तेन परिहरेयम्? कथमेतस्य "प्रिये! पूर्णदृशाऽवलोक्याऽनुगृह्णीष्व माम्" इति

विरहय्य = वियोज्य। वितीर्णा = दत्ता। उत्कण्ठया = आध्यानेन। कुसुमेषुघातैः = पुष्पेषुताडनैः। वशंवदाम् = अधीनाम्। विनिवेदिता = नम्रतया प्रदत्ता। दुर्मदस्य = दुर्दमनीयस्य, मदनस्य मदैः। मामद्यमाना = अतितरां माद्यन्ती। सम्मदय्य = मत्तां विधाय। मन्मथोन्मथितेन = कामोत्पीडितेन।

परिणीता = विवाहिता। विहरेयम् = विहारं कुर्याम्। चिरविहारविसृमरान् = दीर्घकालक्रीडाप्रसृतान्। स्वेदकणान् = घर्मबिन्दून्, शाटीप्रान्तेन =

रघुवीर का चिन्तन करती हुई कोशला दिन गिन रही है। मानो लज्जा ने उसका परित्याग कर उसे रघुवीर को दे डाला हो, मानो उत्कण्ठा ने उसको आकृष्ट कर रघुवीर को समर्पित कर दिया हो, मानो इन्द्रियों ने पुष्पवाणों के प्रहार से अपने आधीन कर उसे रघुवीर को निवेदित कर दिया हो, मानो कामदेव ने उसे अपनी दासी बनाकर रघुवीर को उपहार में दे दिया हो, मानो कामना ने असह्य कामोन्माद से उन्मत्त उसे और भी अधिक मतवाली बनाकर रघुवीर को प्रदान कर दिया हो, मानो अनुराग ने उसके सारे गुणों की अवहेलना कर उसे रघुवीर के हाथ बेच दिया हो।

वहाँ रोशन आरा महाराष्ट्र नरेश के मधुर संभाषण से खरीद ली गई सी, काम पीड़ित मन द्वारा बेच दी गई सी—

"इनके साथ मेरा विवाह कैसे हो? कैसे इनके साथ विहार करूँ? किस प्रकार चिरकाल तक विहार करने से उत्पन्न इनके (शरीर के) पसीने की बूंदों को अपनी साड़ी के आँचल से पोछूं? कैसे इनकी "प्रिये! आँख भर देखकर

चाटु–वचन–रचनानि समाकर्णयेयम् ? कथमिव चाऽस्मै स्वमनोरथं सूचयेयम् ? एष वैदिक–धर्मानुष्ठानायैव दत्त–हस्तावलम्बनः, तत् कथमेष म्लेच्छराज–तनयां मामर्द्धाङ्गिनीं विधित्सिष्यति ? अहह ! हताऽहम्, किमिति म्लेच्छ–गर्भात् सम्भूताऽस्मि ? चक्रवर्तिनन्दिनीति व्यर्थो मेऽभिमानः। वरं राजपत्नी; न तु राजकन्या। न जाने, कस्मै दित्सते मां तातः ? अवश्यमनुचरायैवाऽनुगतायैव च कस्मैचन दास्यति, न तु स्वतन्त्रो महाराष्ट्रराज–सदृशो महाराजः कश्चन तस्य प्रेमपात्रम्। तत् किं लज्जया विरज्य, धैर्यमवधीर्य, गुणान् विगणय्य, वाचालतामूरीकृत्य, धृष्टतां शिरसि संस्थाप्य, अभिमानमवमान्य, चापलं चाऽवलम्ब्य, स्वयमेव किमप्यमुष्मिन् विषये प्रकटयामि ? परं

धौताञ्चलेन। परिहरेयम्=दूरयेयम्। चाटुवचनानां रचनानि। समाकर्णयेयम्=शृणुयाम्। सूचयेयम्=बोधयेयम्। दत्तहस्तावलम्बनः=कृतकराश्रयः। अर्द्धाङ्गिनीम्=अर्धशरीररूपिणीम्। भार्यामिति यावत्। विधित्सिष्यति=कर्तुमेष्यति। सन्नन्ताद् लृट्। म्लेच्छगर्भात्=यवनान्युदरात्। जातिविवक्षया पुंस्त्वम्। "कुक्कुटचादीनामण्डादिष्वि"ति वार्तिकप्रत्याख्याने भाष्ये समाश्रितमिदमिति सन्तोष्टव्यम्, म्लेच्छ इत्यत्रैकशेषो वा। चक्रवर्त्तिनः=सम्राजः, नन्दिनी=तनया। दित्सते=दातुमिच्छति। अनुगताय=वचःपालकाय। विरज्य=विरागं कृत्वा। अवधीर्य=तिरस्कृत्य। अवमान्य=अपमानितं

मुझे अनुगृहीत करो" ये चाटुकारितापूर्ण बातें सुनूं ? और कैसे इन्हें अपनी अभिलाषाओं को बताऊँ ? यह वैदिक धर्म की साधना में सहायता करने वाला है फिर कैसे मुझ यवनराज की कन्या को अपनी पत्नी बनाना चाहेगा ? मैं अभागिन हूँ, मैं म्लेच्छ के गर्भ से क्यों उत्पन्न हुई ? मेरा चक्रवर्ती की कन्या होने का गर्व व्यर्थ है। राजकन्या होने से राजपत्नी होना अच्छा है। न जाने पिता जी मुझे किसे देना चाहते हैं ? अवश्य ही किसी अनुचर या अनुगामी को देंगे। महाराष्ट्र नरेश के समान कोई स्वतन्त्र राजा उनका स्नेह-भाजन नहीं है। तो क्या लज्जा छोड़कर, धैर्य की अवहेलना कर, गुणों का तिरस्कार कर, वाचाल बनकर, धृष्टता को अपना कर, अभिमान को अपमानित कर, चपलता का सहारा लेकर

न वेद्मि प्रकारमपीदृशे प्रेमाचारे स्वाभिलाष-प्रकाशनस्य। एतद्विषये एतस्य सत्कारोऽपि तिरस्कारः, आदरोऽपि न्यक्कारः, स्तवोऽपि परिभवः, आलापोऽपि विलापः, सेवनमपि परिदेवनम्, भाषणमपि च भषणम्, हा हताऽस्मि दुराचारेण मारेण !"

इति जल्पन्ती केनचन धवलिम्नेवाऽऽलिङ्ग्यमाना, पाण्डुरतयेव स्नप्यमाना, रोमपञ्जरेणेव निगृह्यमाणा, स्वेदबिन्दुसन्दोहैरिवाऽभिषिच्यमाना, प्रेम-निगड-बद्धा, अनुराग-कारागार-संयन्त्रिता, कदाचिदुच्छ्वसन्ती, कदाचिदश्रूणि मुञ्चन्ती, कदाचिच्छून्यं जगदाकलयन्ती, कदाचित् तदभिनिविष्टचेतना सम्मुख-स्थितमिव च महाराष्ट्रराजं

कृत्वा। चापलम् = चाञ्चल्यम्। अवलम्ब्य = आश्रित्य। प्रेमाचारे = स्नेहव्यवहारे। स्वाभिलाषप्रकाशनस्य = स्वमनीषितप्रकटीकरणस्य। परिभवः = अनादरः, "परिभवः परीभावस्तिरस्क्रिया" इत्यमरः। विलापः = रोदनम्। परिदेवनम् = कृतस्य कर्मणोऽनुचितत्वबुद्धयाऽनुतापः। "विलापः परिदेवनम्" इत्यमरः। भषणम्=कुक्कुररवः। दुराचारेण=कुव्यवहारेण। मारेण=मन्मथेन।

धवलिम्ना = श्वैत्येन। आलिङ्ग्यमाना = आश्लिष्यमाणा। पाण्डुरतया = ईषत्पीतवर्णतया। रोमाण्येव पञ्जरम् = शुकादिबन्धनस्थानम्, तेन। निगृह्यमाणा = बध्यमाना। अभिषिच्यमाना=स्नप्यमाना। प्रेमैव निगडम्= लोहदाम, तेन बद्धा। अनुराग एव कारागारम् = चारकम्, तस्मिन् संयन्त्रिता= नियमिता। आकलयन्ती = अवधारयन्ती। तदभिनिविष्टचेतना = शिवमयी-

---

स्वयं ही कुछ इस विषय में प्रकट करूँ ? परन्तु मैं तो इस प्रकार के प्रेम के व्यवहार में अपनी इच्छाओं को व्यक्त करने का ढंग भी नहीं जानती। इस विषय में इनका सत्कार भी तिरस्कार है, आदर भी अपमान है, स्तुति भी निन्दा है, कहना भी दीनता प्रकट करना है, सेवा भी दैन्य है, बोलना भी भूँकना है। हाय ! दुष्ट कामदेव द्वारा मारी गई।"

इस प्रकार प्रलाप करती हुई, किसी धवलिमा से आलिङ्गित की गयी सी, पीलेपन से नहलाई गई सी, रोमपञ्जर से जकड़ी-सी, पसीने के बिन्दुसमूह से अभिषिक्त-सी, प्रेम के पाश में बँधी, अनुराग के कारागार में कैद की गई, कभी दीर्घ निःश्वास लेती, कभी आँसू बहाती, कभी संसार को सूना समझती, कभी

पश्यन्ती खिद्यते। इतः क्रूरतया रघौ क्रूरं कर्म चिकीर्षुः कोशला–कामनया क्लिश्यति। ततो रघुवीरोऽपि क्रूर–क्रूरतामाकलय्य ग्लायति, इति बहूनां हृदये चिन्तासन्तान–विताना ज्वालामुखपर्वता इव जाज्वल्यन्ते।

× × ×

इतश्च माया–भवने सादरं संस्थापितोऽपि मायाजिह्मो नतरां केनाऽपि सह सम्भाषते, नतमां वा कमपि पूर्णदृशाऽवलोकयति। एवं चिर-चिन्ता-पूर-पूरितः "अद्य हन्ये, श्वो विनाश्ये" इति स्वस्मिन् नृशंसं कर्माऽऽशङ्कमान एवैकदा कैश्चित् सहचरैः सह समायान्तं महाराष्ट्रराज-मद्राक्षीत्। यावदेष तत्प्रभाधर्षित उत्थाय किमपि विमृशति स्म; तावत् स स्वयमेव सादरमुवाच यद् "भद्रं भवतु राजकुमारस्य। न

भूतचैतन्या। क्रूरः = तन्नामा। रघौ = रघुवीरे। क्रूरम् = अमानुषम्। क्रूरतया = कठोरतया। ज्वालामुखपर्वता इव = वह्न्युद्गिरका गिरय इव। जाज्वल्यन्ते = अतितरां ज्वलन्ति।

× × ×

नतराम् = सर्वथा नैव। सम्भाषते = वक्ति। पूर्णदृशा = समस्तचक्षुषा, द्रष्टव्यरूपेणेति यावत्। चिर-चिन्तापूर-पूरितः = दीर्घानुचिन्तनप्रवाहपूर्णः। हन्ये, विनाश्ये, अहमिति शेषः, कर्म। नृशंसम् = क्रूरम्। अद्राक्षीत् = अवालोकयत्। तस्य प्रभया = कान्त्या, धर्षितः। विमृशति स्म = व्यचारयत्।

शिवाजी का ध्यान करती हुई उन्हें सामने खड़ा सा देखती हुई व्यथित हो रही है। इधर क्रूरता से रघुवीर के प्रति निर्दय काम करने की इच्छा से क्रूरसिंह कोशला की चाह में क्लेश पा रहा है। उधर रघुवीर भी क्रूर के प्रति क्रोध धारण कर दुःखी है। इस प्रकार बहुतों के हृदय में चिन्ता की लहरों के विस्तार ज्वाला-मुखी पर्वतों की भाँति अत्यधिक जल रहे हैं।

इधर मायामहल में सम्मान पूर्वक ठहराया गया भी मुआज़म न तो किसी के साथ अधिक बोलता ही था और न तो किसी को पूरी दृष्टि से देखता ही था। इस प्रकार चिरकाल तक चिन्ता मग्न होकर "आज मारा जाऊँगा, कल मारा जाऊँगा" इस प्रकार अपने विषय में नृशंस कार्य की आशंका करते हुए ही उसने एक बार अपने कुछ सहयोगियों के साथ महाराष्ट्र राज शिवाजी को आते देखा। उनके तेज से दबा हुआ सा वह उठकर अभी कुछ सोच ही रहा था कि उन्होंने

मां पूर्वमपश्यद् भवान्, इति सूचयामि, मां जनाः 'शिवराज' इति कथयन्ति। कुमारस्याऽपि पित्रा सह मम बहूनि युद्धानि जातानि, भवन्ति च। श्रूयते, श्रीमानपि मया योद्धुमेव प्रेषित इति, परं स्वच्छतया वा, साधुतया वा, मुग्धतया वा अल्पवयस्कतया वा, सङ्ग्राममननुष्ठायैव मम गृहमायातः, इति स्वागतम्। कच्चिद् यथासमयं यथोचिताचारैरुपतिष्ठन्ते दासेराः? कच्चित् प्रसीदति वा भवान्? उपविश्यतामुपविश्यताम्" इत्युक्त्वा, तमुपवेश्य स्वयमप्युपविष्टः। एवं साम्रेडमापृच्छ्यमान कुमारोऽपि ह्रीपरवशः कथमपि सम्मुखं मुखं विधायोक्तवान्—"राजन्! अहं शत्रुपुत्रोऽस्मि, योद्धुं चाऽऽयातोऽस्मि इति निगृहीतश्चेद्धन्तव्यः,

---

भद्रम् = कल्याणम्। स्वच्छतया = निर्मलतया। साधुतया = परोपकृतिपटुतया। मुग्धतया = सरलतया। अल्पवयस्कतया = न्यूनावस्थाकतया। अननुष्ठाय = अविधाय। स्वागतम् = शुभागमनम्। दासेराः = भृत्याः। उपतिष्ठन्ते = सेवां कुर्वन्ति, "उपाद् देवपूजासङ्गतिकरणे" त्यादिनाऽऽत्मनेपदम्। प्रसीदति = तुष्यति। साम्रेडम् = अनेकवारम्। ह्रीपरवशः = त्रपाधीनः।

स्वयं ही आदर पूर्वक कहाः "राजकुमार का कल्याण हो, आपने मुझे पहले नहीं देखा है। अतः मैं अपना परिचय दे रहा हूँ, मुझे लोग शिवाजी कहते हैं। आप के पिता जी के साथ मेरे बहुत से युद्ध हुए हैं और अब भी हो रहे हैं। सुना जाता है कि आप भी मुझसे लड़ने के लिए ही भेजे गये थे, परन्तु निर्मलता या सज्जनता या सरलता, या अवस्था कम होने से विना युद्ध किये ही मेरे घर आगए। अतः आप का स्वागत है। समयानुसार यथोचित आचार से नौकर आप की सेवा तो करते हैं न? आप प्रसन्न तो हैं? बैठिये, बैठिये" यह कह कर उसको बैठाकर शिवाजी स्वयं भी बैठ गए। इस प्रकार बार-बार पूछने पर कुमार ने भी लज्जित होते हुए किसी प्रकार मुख सामने करके कहा—"राजन्! मैं शत्रु का लड़का हूँ,

दण्डयितव्यश्च, न तु सत्कारैस्तिरस्करणीयः, स्वागत-वाणी-वाणैश्च मर्मसु वेधनीयः।

ततस्तावेवमालापिष्टाम्—

शिव०—कुमार ! केयं कथा? राज्ञां पारस्परिकाः सन्धिविरोध-रूपा भवन्त्येव सम्बन्धा इति दैवान्मे विरोधस्तव पित्रा। त्वं तु यथा दिल्लीनायकस्य लालनीयस्तथा ममापि, इति दर्शं दर्शं तव यौवनोद्भेद-सुभगान्यङ्गानि प्रीतिरेव मे वर्द्धतेतराम्।

कुमा०–एवं चेत् कथं निगृहीतोऽस्मि? स्वतन्त्रः कथं न क्रिये?

शिव०—कोऽत्र निग्रहः? केवलं मम साक्षात्कारायाऽत्र वासितो

सम्मुखम् = पुरः। निगृहीतः = चारके कृतः। दण्डयितव्यः = दण्डविषयी-कर्त्तव्यः। सत्कारैः = आदरैः। स्वागतवाण्य एव वाणाः = इषवः, तैः। मर्मसु = कोमलेषु रक्षणीयेषु स्थानेषु च। वेधनीयः = प्रहरणीयः।

आलापिष्टाम् = वार्त्तामकुरुताम्। लुङ-प्रथम-पुरुष-द्विवचनम्।

पारस्परिकाः = आन्योन्याः। दैवात् = अदृष्टात्। लालनीयः = सुखेन पालनीयः। यौवनोद्भेदसुभगानि = तारुण्योद्गमसुन्दराणि।

और युद्ध करने के लिये आया हूँ। अतः यदि पकड़ लिया गया हूँ, तो आप मुझे मार डालें और दण्ड दें, न कि सत्कारों से तिरस्कृत करें, और न स्वागत की वाणी के वाणों से मर्माहत करें।"

तदनन्तर उन दोनों ने इस प्रकार वार्तालाप किया––

शिवाजी—कुमार ! यह क्या बात है? राजाओं के परस्पर सन्धि और विग्रह के सम्बन्ध तो होते ही हैं, और संयोग से हमारा आपके पिता से विरोध है। आप तो जैसे दिल्ली के बादशाह के लिए स्नेहपात्र हैं वैसे ही मेरे भी, इसलिए यौवन के स्फुटित होने से सुन्दर लगने वाले आपके अंगों को देख-देख कर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है।

कुमार—यदि ऐसा ही है तो मैं कैद क्यों किया गया हूँ? स्वतन्त्र क्यों नहीं कर दिया जाता हूँ?

शिवाजी—यहाँ बन्धन क्या है? केवल मुझसे भेंट करने के लिये आप

भवान्। अधुना तु यथा रोचेत ; तथा विधातुं शक्यते। अस्मिन् देशे न कदाऽप्यायातो भवान्, इति कुतुहलं चेदवलोक्यन्तां विविधानि दुर्गाणां पर्वतानां वनानां च रामणीयकानि। निविवर्त्तिषते चेत्, सुखेन गम्यतां स्वदेशे, निर्विघ्नमास्माकीनाः सादिनः प्रतियापयिष्यन्ति आयुष्मन्तम्।

कुमा०—[तदौदार्येण चकित इव] महाराष्ट्रराज ! किमिव व्यामोहयसि ? न भवति मे निश्चयो यन्महत्या वाहिन्या सह भवतो राज्यमात्मसात्कर्तुमायाते मादृशे श्रीमानेवं दयिष्यते इति।

शिव०–आः ! कोऽत्र संशयः ? नैतद् भवतस्तातचरणानां राज्यम्; यत्र विश्वासघातो विध्वंसो लुण्ठनं दाहश्च वशंवदानामपि क्रियते।

निग्रहः = वन्धनम्। साक्षात्काराय=अवलोकनाय। अवलोक्यन्ताम्= दृश्यन्ताम्। रामणीयकानि = सौन्दर्याणि। निविवर्त्तिषते=निर्वर्तितुमिच्छति। प्रतियापयिष्यन्ति = तत्र प्रापयिष्यन्ति। आयुष्मन्तम् = चिरायुषम्।

व्यामोहयसि = बुद्धिभेदं जनयसि। वाहिन्या = सेनया। आत्मसात्कर्तुम् = स्ववशीकर्तुम्। दयिष्यते = दयां करिष्यते।

यहाँ ठहराये गये हैं। अव आप जो चाहें कर सकते हैं। इस प्रदेश में आप कभी नहीं आये हैं। अतः यदि उत्सुकता हो तो विविध दुर्गों, पर्वतों और वनों की शोभा देखिये। यदि लौटने की इच्छा हो, तो सुख पूर्वक अपने देश चले जाइये। हमारे घुड़सवार आपको निर्विघ्न पहुँचा देंगे।

कुमार—[उनकी उदारता से आश्चर्य में पड़ा हुआ सा] महाराष्ट्र नरेश ! भ्रम में क्यों डाल रहे हैं ? मुझे विश्वास नहीं हो रहा है, कि वहुत वड़ी सेना के साथ आपके राज्य पर अधिकार करने के लिये आये हुये मुझ जैसे व्यक्ति पर आप इस प्रकार दया करेंगे।

शिवाजी—आः ! इसमें क्या सन्देह है ? यह आपके पिताजी का राज्य नहीं है; जहाँ आधीन लोगों के साथ भी विश्वासघात, विध्वंस, लूटपाट और

राज्यमिदं महाराष्ट्राणाम्। नाऽत्र दारापहरणम्, नाऽत्र 'रक्ष रक्षेति' व्याहरमाणानां वधः, न चाऽत्र वशमागतैः सह विश्वासघात–व्यापारः। सुखेन स्वगृहे इव यथेच्छं विहरतु भवान्।

तदखिलमिदं सदाचार–सौष्ठवाधिक–मधुरं वचनामृतं कर्ण–पुटाभ्यां पीत्वा स्वपितुर्दौरात्म्ये घृणामावहन्, महाराष्ट्रराजस्य निगृही-तेष्वपि सदाचारं वहु मानयन् चिरमालपत् शिवराजेन मायाजिह्मः।

ततः "अद्य सपदि समायास्यति कश्चिन्मया प्रेषितोऽधिकृतः, भवन्तं च पुण्यनगरं कानिच्चिच्च दुर्गादीनि दर्शयिष्यति" इत्यभि-धाय प्रस्थिते महाराष्ट्र-राष्ट्र-त्रिविष्टपनाथे, कैश्चिन्नर्तितकाम्बोजै–

वशंवदानाम् = अधीनानाम्। व्याहरमाणानाम् = कथयताम्। यथे-च्छम् = यथाभिलषितम्। विहरतु=क्रीडतु, 'शेषे प्रथमः' इति प्रथमपुरुषत्वम्।

सदाचारसौष्ठवेन, अधिकम्, मधुरं यद् वचनामृतम् = उक्तिपीयूषम्। दौरात्म्ये = दुष्टतायाम्। आवहन् = धारयन्। मानयन् = मानितं कुर्वन्।

अधिकृतः = नियुक्तः। महाराष्ट्राणां राष्ट्रम् = राज्यम्, तदेव त्रिवि-ष्टपम् = सुरलोकः, तन्नाथे = तदधीशे। नर्तिताः = सुगत्या चालिताः,

---

आग लगा देने आदि के दुष्कर्म किये जाते हैं। यह मराठों का राज्य है। यहाँ स्त्रियों का अपहरण नहीं होता, यहाँ 'रक्षा करो, रक्षा करो' कहकर शरण में आए लोगों का वध और अपने वश में कर लिये गये लोगों के साथ विश्वासघात का काम नहीं होता है। आप यहाँ अपने घर की भाँति सुखपूर्वक विहार करिए।"

तब सदाचार के सौष्ठव से अत्यधिक मधुर शिवाजी के वचनामृत को कर्ण-पुटों से पीकर अपने पिता की दुष्टता पर घृणा करता हुआ, शिवाजी के कैदियों किये गये अच्छे व्यवहार की मन ही मन प्रशंसा करता हुआ मुआज़्ज़म शिवाजी से देरतक वार्तालाप करता रहा।

तदनन्तर, "आज अभी मेरा भेजा हुआ कोई अधिकारी आयेगा, और वह आपको पूना नगर तथा कुछ दुर्गों को दिखाएगा" यह कहकर महाराष्ट्र देश-

रश्वारोहैरनुसृतः, श्यामेनैकेन सुवर्ण–वल्गेन राजत–खलीनेन मौक्तिक–स्तवक–राजि–राजित–निगालेन रत्न–निचय–रुचिर–रोचिःप्रचय–च्छुरित—वालधिना सुवर्ण–सूत्र—ग्रथित—प्रान्त-पीत-कौशेयो–पवेशनिकाऽऽच्छन्न–मध्येन कशाङ्कितकक्षेण धृतरश्मिनैकेन नियन्त्रा मन्दं मन्दमानीयमानेन वनायुजेन सहितः श्यामसिंहः समुपतस्थे ।

मायाजिह्मश्च तेनाऽऽलप्य हयमेनमारुह्य श्यामेन सह प्रथमं पुण्यनगरं प्राविक्षत् । तत्र च गृहे गृहे गीतानि द्वारि द्वारि रम्भा–

काम्बोजाः = कम्बोजदेशोद्भवा अश्वा यैस्तैः अनुसृतः = अनुगतः । सुवर्ण-वल्गेन = हिरण्यरश्मिना । राजतखलीनेन = रौप्य-कविकेन । मौक्तिकस्तब-कानाम् = मणिगुच्छानाम्, राज्या = श्रेण्या, राजितः = शोभितः, निगालः= गलोद्देशो यस्य तेन । रत्ननिचयस्य = हीरकादिसमूहस्य, रुचिरेण = मनो-हारिणा, रोचिःप्रचयेन = तेजोव्रातेन, छुरितः = रुषितः, वालधिः = पुच्छं यस्य तेन । सुवर्णसूत्रग्रथिता = हिरण्यतन्तुस्यूता । प्रान्ते=चरमेंऽशे, पीता := पीतवर्णाः, 'गुणे शुक्लादयः पुंसि गुणिलिङ्गास्तु तद्वति" इत्यभिधानात् शुक्लादीना गुणगुण्युभयवाचकत्वं घटते । या कौशेयस्य = पट्टवस्त्रस्य, उपवेशनिका=आस-निकाः, "चारजामा" इति हिन्दी । तया, आच्छन्नं मध्यं यस्य तेन । कशया = अश्व-ताडन्या, "कोडा चाबुक" इति हिन्दी । अङ्कितः = चिह्नितः, कक्षः = बाहुमूलं यस्य तेन । धृतरश्मिना = गृहीतप्रग्रहेण, नियन्त्रा = सारथिना, "नियन्ता प्राजिता यन्ता सूतः क्षत्ता च सारथिः" इत्यमरः । आनीयमानेन = प्राप्यमाणेन, वनायुजेन = वनायुदेशे जातेन सदश्वेन । "अरबी घोड़ा" इति हिन्दी ।

रूपी स्वर्ग के अधीश के चले जाने पर कम्बोजदेश के घोड़ों को नचा रहे कुछ घुड़सवारों से अनुगत, सुवर्णसूत्र निर्मित रास वाले, चाँदी की लगाम (खलीन) वाले, मोती के गुच्छों की माला से सुशोभित गले वाले, रत्नों के समूह की मनोहर कान्ति के पुञ्ज से अङ्कित पुच्छ वाले, सोने के तारों से कढ़े हुए किनारे वाले पीले रेशमी चारजामा (गद्दी) से आच्छादित मध्यभाग वाले, काले रंग के एक अरबी घोड़े को, जिसे अपनी काँख में चाबुक दबाये हुये एक साईस रास पकड़े हुये धीरे धीरे ला रहा था, साथ लेकर श्यामसिंह उपस्थित हुआ ।

मुआज़िम ने श्यामसिंह से बात करके उसके द्वारा लाये गये घोड़े पर सवार होकर उसके साथ पहले पूना नगर में प्रवेश किया । वहाँ पर घर-घर में गीतों

स्तम्भान् कुट्टिमे कुट्टिमेऽवलम्बित-माणिक्य-दीपिकानुल्लोचान् वीक्षमाणः, ग्रैवेयकालङ्कृतकन्धरान् सिन्धुरान् , उच्चैःश्रवस इव बान्धवान् सैन्धवान् , धारिताभिनववस्त्रान् पौरान्, समुद्धूत-विजयध्वजांश्चाऽखिलान् गेहान् उपलभमानः, भेरी-पटह-झर्झरादि-नादांश्चाऽऽकर्णयन्, "अप्यस्ति कोऽप्यद्य उत्सवविशेषः ?" इति श्याममपृच्छत् । स च "अद्य एकपदमेव महाराजो दिल्लीश्वरं सौरतान् विद्रोहिणः पोतयोधिनः सामुद्रांश्च पराजितवान् इति महोत्सवोऽस्मिन् राज्ये" इति समुदतारीत् , मायाजिह्मश्च सलज्जमश्रौषीत् ।

अथ ततो निवृत्तः सिंहदुर्गमायातस्तत्रत्यान् विजयध्वजानालोक्य

एनम् = पूर्वोक्तगुणगणयुतम् । प्राविक्षत् = प्रविवेश । कुट्टिमे कुट्टिमे = प्रतिनिबद्धभूमि । अवलम्बितमाणिक्यदीपिकान् = धारितमणिप्रदीपान् । उल्लोचान् = मण्डपानि । ग्रैवेयकालङ्कृतकन्धरान् = ग्रीवाभूषणभूपितग्रीवान् । सिन्धुः = मदजलम्, अस्ति येषां तान् सिन्धुरान् = करिणः । उच्चैःश्रवसः = इन्द्रघोटकस्य । बान्धवानिव = भ्रातृनिवेत्युपमा । सैन्धवान् = हयान् । धारिताऽभिनववस्त्रान् = परिहितनूतनवसनान् । पौरान् = नागरिकान् । समुद्धूतविजयध्वजान् = समुच्छलितजय-वैजयन्तीकान् । उपलभमानः=समवलोकयन् । आकर्णयन् = शृण्वन् । उत्सवविशेषः = महोद्भवः । एकपदमेव = एकदैव । सौरतान् = सूरतदेशीयान् । पोतयोधिनः=नौसङ्ग्रामकारिणः । सामुद्रान् = उदधिसम्बन्धिनः । पराजितवान् = परास्तवान् ।

की ध्वनि सुनकर, द्वारों पर केले के खम्भों और फर्शों पर जिनमें मणिमय दीप लटक रहे थे ऐसे तम्बुओं, गले के आभूषण से अलंकृत गर्दन वाले हाथियों, उच्चैःश्रवा के बन्धु-बान्धवों के समान अश्वों, नूतन वस्त्र धारण किये पुरवासियों और फहराती हुई विजय-पताकाओं से सुशोभित घरों को देखकर, भेरी, नगाड़े, झाँझ आदि के शब्दों को, सुनकर श्यामसिंह से पूछा, 'आज कोई विशेष उत्सव है क्या ?' उसने उत्तर दिया : "आज एक साथ ही महाराज ने दिल्लीश्वर को, सूरत के विद्रोहियों को, और समुद्री लुटेरों (नौका से संग्राम करने वाले समुद्रियों) को पराजित किया है; इसलिये इस राज्य में महोत्सव है।" मुआजिम ने लज्जापूर्वक यह उत्तर सुना । तदनन्तर मुआजिम वहाँ से सिंह दुर्ग लौट आया । वहाँ की (सिंह दुर्ग

किञ्चिदन्तर्गत्वा च शास्तिखान-शिरोभूषणादीनि बहूनि विजित्याऽऽच्छिद्याऽऽनीतानि वस्तूनि दृष्ट्वा ह्रीण इव हतोत्साह इव चकित इव च ततोऽपि निवृत्तः, पथि महदेकं महाप्रघण-शारद-घन-घनाघन-विडम्बनं भवनमद्राक्षीत् : तत्र प्रविश्य च रजतेन कनकेन च निर्मीयमाणाः शिवराजनामाङ्किता मुद्रा निष्काणि च दृष्ट्वा ततः प्रचलितो राजदुर्गमाससाद । दूरादेव दुर्गस्य समीपवर्त्तिनि प्रशस्ते शाद्वले च परस्सहस्रानश्वारोहान् उन्मुखयन्तं भ्रामयन्तं च महान्तं कर्कमारूढं युवानमेकं समलूलोकत् । कोऽसाविति पृष्टश्च श्यामसिंहः "कुमार ! एष मे ज्येष्ठो भ्राता, महाराष्ट्र-राजस्यान्यतमः सेनापतिरस्ति इति व्याहार्षीत् ।

विजयध्वजान् = विजयवैजयन्तीः । ह्रीण इव = सलज्ज इव । महाप्रघणः = बृहद्बहिर्द्वारप्रकोष्ठकम्, यस्मिस्तादृशम्, "प्रघाणप्रघणालिन्दा बहिर्द्वारप्रकोष्ठके" इत्यमरः । शारदस्य=शरदि भवस्य, घनस्य=सान्द्रस्य, घनाघनस्य= वर्षुकमेघस्य, "वर्षुकाब्दो घनाघनः" इत्यमरः । विडम्बना = अनुकृतिर्यस्य तत्, अभूतोपमालङ्कारः । निर्मीयमाणाः =विरच्यमानाः । निष्काणि=सुवर्णमुद्राः । उन्मुखयन्तम् = अभिमुखयन्तम् , भ्रामयन्तम् = चालयन्तम् । "कवायद करानेवाले" इति हिन्दी । यूनो विशेषणम् । कर्कम् = श्वेतमश्वम् । "शुक्लोऽश्वः कर्क उच्यते" इत्यभिधानम् ।

की) विजय-पताकाओं को देखकर और कुछ अन्दर जाकर शाइस्ता खाँ के मुकुट आदि बहुत सी जीतकर छीनकर लाई गई वस्तुओं को देखकर वह लज्जित सा, हतोत्साह सा, और चकित सा वहाँ से भी लौट पड़ा और रास्ते में उसने शरत्काल के घनी वर्षा करने वाले मेघ की विडम्बना करने वाले एक विशाल भवन को देखा, जिसके बरामदे बहुत बड़े थे । उस भवन में जाकर चाँदी और सोने से बनाई जा रही शिवाजी के नाम से अङ्कित मुहरों और सिक्कों को देखकर, वहाँ से चलकर राजदुर्ग पहुँचा । दूर से ही दुर्ग के पास वाले साफ़ सुथरे घास के मैदान (नीव) में सहस्राधिक (हजारों) अश्वारोहियों को कवायद कराते हुए एक विशालकाय श्वेत अश्व पर आरूढ़ एक युवक को देखा । 'यह कौन है' यह पूछने पर श्यामसिंह ने कहा—"कुमार ! ये मेरे बड़े भाई हैं, जो महाराष्ट्र नरेश के सेनापतियों में से एक हैं' ।"

तावदेकतो धौरितकेनाऽश्वारोह–शतकेनाऽनुगम्यमानः, स्वयमपि पारसीकमेकमारूढः तथैव धावमानोऽनिल-लोल-कुन्तलो नवीनैररुणैर्वासोभिरपरिचीयमानो रघुवीरसिंहः समागतः। समादर–मुद्रया कुमारं सम्भाव्य, श्यामेन भ्रूसञ्ज्ञयैव पृष्टो "मान्य! शास्तिखान-युद्धे मयि प्रसन्नेन प्रभुणा शतमश्वारोहान् ममाधिकारे निरूप्य, तदध्यक्षतायां नियोजितोऽस्मि" इति समस्तक-नमनमभ्यधात्। तेन "भद्रम्, दिष्टचा दिष्टचा" इति सप्रसादमुक्तश्च पुरतः प्रचलितः।

अथ मायाजिह्मो राजदुर्गं परितः परिक्राम्यन्, कुतश्चित् सेना-निवेशान्, कुतश्चित् पदाति–निकर–विरचिता व्यूह–रचनाः, कुत-

धौरितकेन=हयगतिविशेषेण। अश्वारोहाणाम्=सादिनाम्, शतकेन। पारसीकम्=पारस्यदेशोद्भवम्, अनिलेन लोलाः=चञ्चलाः, कुन्तलाः=चिकुराः, यस्य सः, अनिलवत् लोला इति वा, "चिकुरः कुन्तलो वालः" इत्यमरः। अरुणैः=ईषद्रक्तैः। अपरिचीयमानः=अनवबुध्यमानः। सद्यःप्राप्तस्वाधि-कारानुरूपनवीनवेषधारित्वादिति भावः। समादरमुद्रया=गौरवप्रदर्शनभङ्ग्या। कुमारम्=मायाजिह्मम्। समस्तकनमनम्=सशिरोनति। दिष्टचा=भागधेयेन।

सेनानिवेशान्=शिविराणि। पदातिनिकरेण=पदगसमूहेन, विरचिताः=

उसी समय एक ओर से दुल्की चाल से आ रहे सौ घुड़सवारों से अनुगत, स्वयं भी एक पारसी घोड़े पर सवार हो उसी प्रकार घोड़े को दौड़ाता हुआ, हवा से हिल रहे बालों वाला, नवीन हल्के लाल वस्त्रों के कारण पहचान में न आनेवाला रघुवीरसिंह आ गया। उसने आदर सूचक मुद्रा से कुमार को सम्मानित किया। श्याम ने भौंह के ईशारे से ही कुछ पूछा, उत्तर में उसने सिर झुका कर कहा—मान्य! शाइस्ता खाँ के साथ युद्ध में मुझ पर प्रसन्न होकर महाराज ने सौ घुड़सवारों को मेरे अधिकार में देकर मुझे उसका नायक नियुक्त किया। श्यामसिंह ने हर्ष पूर्वक कहा "वहुत अच्छा, सौभाग्य है सौभाग्य।" रघुवीर सामने की ओर ही चला गया।

तदनन्तर राजदुर्ग के चारों ओर घूमता हुआ, कहीं शिविरों को, कहीं पैदल

श्चित् धडद्धडद्ध्वनिपुरःसरं विहायसि प्रयुज्यमाना भुशुण्डिकाः, कुतश्चित् ह्लादिनी-निर्ह्लादं ह्लेपयतीः शतघ्नीः, कुतश्चिन्मिथ्यायुद्ध-रचनया चन्द्रहास–चालन-चातुरीं प्रासासन-साहसं पट्टिश-प्रयोग-पाटवं इषु–वर्षण–कौशलं च दर्शयतोऽनेकान् वीरान् कुतश्चिच्च ध्वजमुत्थाप्य भारतस्य सनातनधर्मस्य महाराष्ट्रराजस्य च जयमुद्घोषयतः प्रमोद-पूरप्रफुल्लान् पौरान् पश्यन्, विविध-विभावना-भङ्ग-भज्यमान–हृदयः पुनर्माया–प्रासादं निववृते ।

श्यामसिंहस्तु तं तत्र प्रवेश्य, स्वयमपि महाराष्ट्रराजस्य विजयो-

---

सङ्घटिताः । विहायसि=नभसि । ह्लादिनीनिर्ह्लादम्=वज्रगर्जनम् । "ह्लादिनी वज्रमस्त्री स्यादि"त्यमरः । ह्लेपयतीः=लज्जयतीः । शतघ्नीः= तोभान् । प्रासासनसाहसम्=कुन्तक्षेपणवलकर्म । पट्टिशस्य प्रयोगे=चालने, पाटवम्=कौशलम् । प्रमोदपूरप्रफुल्लान्=प्रसन्नताप्रवाहविकसितान् । विविधविभावनाभङ्गेन=अनेकविधविचारतरङ्गेण, "भङ्गस्तरङ्ग ऊमिर्वा" इत्यमरः । भज्यमानम्=त्रुटचमानम्, हृदयं यस्य सः । मायाप्रसादम्=माया दुर्गम् । मायाजिह्मवासार्थं निर्दिष्टं भवनम् ।

सैनिकों द्वारा वनाई गई व्यूह रचनाओं को कहीं धड़-धड़ शब्द के साथ आकाश में छोड़ी जा रही वन्दूकों को, कहीं वज्रपात की ध्वनि या विजली के गर्जन को लजाने वाली तोपों को, कहीं कृत्रिम युद्ध की रचना करके तलवार चलाने की निपुणता, भाला फेंकने का पराक्रम, पट्टिश के प्रयोग की पटुता और वाणों की वर्षा करने की कुशलता दिखा रहे अनेक वीरों को, कहीं झण्डा उठा-कर भारत की, सनातन धर्म की, महाराष्ट्र नरेश की जय का उद्घोष कर रहे हर्ष प्रवाह से खिले हुए नगरवासियों को देखता विभिन्न विचारों की तरङ्गों से टूटते हुये हृदय वाला मुआजिम पुनः माया-महल में लौट आया ।

श्यामसिंह उसे वहाँ पहुँचा कर स्वयं भी महाराष्ट्र नरेश के विजयो-

त्सवे राजदुर्गे समागतानां सम्भावित-मण्डलानां साकारे प्रतापइव महति स्वर्ण-सिंहासने समारूढं मूर्तिमता यशसेव च्छत्रमण्डलेन सुशोभितं प्रजाभिराद्रियमाणं महाराष्ट्रराजं द्रष्टुं राजदुर्गं प्रचलितः।

इत्यष्टमो निश्वासः

द्वितीयो विरामः च समाप्तः

सम्भावितमण्डलानाम् = पूजितमित्रवर्गाणाम्। साकारे=शरीरधारिणि। प्रताप इवेत्युत्प्रेक्षा। मूर्तिमता = आकृतिमता। यशसेव = कीर्त्येवेत्युत्प्रेक्षा। आद्रियमाणम् = सत्क्रियमाणम्। जयजय-ध्वनि-गोचरीक्रियमाणमिति यावत्।

अशेष-भूमीतल-विद्यमान-शब्दज्ञ - लोकार्चित - पादयुग्मः।
नारायणः श्रीहरशब्दपूर्वस्त्रिपाठिवर्यो गुरुरस्ति यस्य ॥ १ ॥
अध्यापिपच्छ्रीशिवदत्तमिश्रस्तर्कांश्च यं तार्किकमण्डलीशः।
सिपाहवासी भगवत्युदीतोवेदान्तविद् भागवतोद्भवो यः ॥ २ ॥
श्यामा-पद-द्वन्द्व-मरन्द-लुब्धः स रामजीशर्म-पद-प्रसिद्धः।
प्रादर्शयद् वीर-जये द्वितीये विरामके नूतनवैजयन्तीम् ॥ ३ ॥

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्याम् अष्टमनिश्वासविवरणं
द्वैतीयीकविरामविवरणं च समाप्तम्।

त्सव के अवसर पर राजदुर्ग में आये हुये सम्मानित वीरों के मूर्तिमान प्रताप के समान स्वर्ण सिंहासन पर बैठे हुये शरीरधारी यश के से छत्रमण्डल से सुशोभित, प्रजा द्वारा समादृत हो रहे महाराष्ट्र राज के दर्शन के लिये राजदुर्ग को चल पड़ा।

शिवराजविजय के आठवाँ निश्वास और द्वितीय विराम का
हिन्दी अनुवाद समाप्त।

संस्कृत-साहित्य-भाण्डागारे चतुर्थ-गद्य-महाकाव्यम्

महाकवि-व्यास-प्रणीतः

शिवराज-विजयः

ललित-मधुरः, सरस-सरलः, संस्कृतोपन्यास-सन्दर्भः, पुस्तक-मेतत् सर्वैरपि संस्कृतज्ञैरवश्यं संग्रहणीयम्, पठनीयम् पाठनीयम् ।

युक्तप्रान्त-विहार-पंजाव प्रभृतिपरीक्षासु पाठ्यत्वेन निर्धारितम् ।

शिवराजविजयः (निश्वासद्वयात्मकः) एक से दो निश्वास तक
संस्कृत टीका और हिन्दी अनुवाद सहित मूल्य ४)

शिवराजविजयः (प्रथमो विरामः) एक से चार निश्वास तक
संस्कृत टीका और हिन्दी अनुवाद सहित मूल्य ६)

शिवराजविजयः (पञ्चनिश्वासात्मकः) एक से पाँच निश्वास तक
संस्कृत टीका और हिन्दी अनुवाद सहित मूल्य ७)

शिवराजविजयः (द्वितीयो विरामः) पाँच से आठ निश्वास तक
संस्कृत टीका और हिन्दी अनुवाद सहित मूल्य ८)

शिवराजविजयः (तृतीयो विरामः) नौ से बारह निश्वास तक
संस्कृत टीका और हिन्दी अनुवाद सहित मूल्य १०)

शिवराजविजयः (संपूर्णः) एक से बारह निश्वास तक
संस्कृत टीका और हिन्दी अनुवाद सहित मूल्य २४)

हिन्दी शिवराजविजय—महाकवि श्रीमदम्बिकादत्त व्यास कृत
संस्कृत शिवराजविजय का मूलानुसारी हिन्दी अनुवाद मूल्य १०)

गुप्ताशुद्धि प्रदर्शनम् (पण्डित पछार) उत्तर मध्यमा में स्वीकृत
संशोधित, परिवर्द्धित, बहुत सुन्दर संस्करण मूल्य २)

मंत्र संहिता—कर्मकाण्डोपयोगी, मंत्र संख्या ५२३
हिन्दी में ९६ पृष्ठ की भूमिका,
अत्यन्त शुद्ध और बहुत सुन्दर संस्करण मूल्य ८)

स्व स्व नगरस्य विक्रेतॄणां समीपे गवेषणीयम् ।